आप्तवाणी

श्रेणी-३

दादा भगवान कथित

आप्तवाणी

श्रेणी-३

मूल गुजराती संकलन : डॉ. नीरूबहन अमीन

हिन्दी अनुवाद : महात्मागण

समर्पण

आधि-व्याधि-*उपाधि* के त्रिविध कलियुगी ताप में भयंकर रूप से तप्त, मात्र एक आत्मसमाधि सुख के तृषातुरों की परम तृप्ति के लिए प्रकट परमात्मस्वरूप में स्थित वात्सल्यमूर्ति दादा भगवान के जगत् कल्याण यज्ञ में आहूति स्वरूप, परम ऋणिय भाव से समर्पित।

आप्त-विज्ञापन

हे सुज्ञजन ! तेरा ही 'स्वरूप' आज मैं तेरे हाथों में आ रहा हूँ! उसका परम विनय करना, जिससे तू स्वयंम के द्वारा तेरे 'स्व' के ही परम विनय में रहकर स्व-सुखवाली, पराधीन नहीं हो ऐसी, स्वतंत्र आप्तता का अनुभव करेगा!

यही है सनातन आप्तता है। अलौकिक पुरुष की आप्तवाणी की!

यही सनातन धर्म है, अलौकिक आप्तता का!

जय सच्चिदानंद

– त्रिमंत्र –

नमो अरिहंताणं
नमो सिद्धाणं
नमो आयरियाणं
नमो उवज्झायाणं
नमो लोए सव्वसाहूणं
एसो पंच नमुक्कारो,
सव्व पावप्पणासणो
मंगलाणं च सव्वेसिं,
पढमं हवइ मंगलम्॥ १ ।।
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २ ।।
ॐ नमः शिवाय ॥ ३ ।।
जय सच्चिदानंद

दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

हिन्दी

१. ज्ञानी पुरुष की पहचान
२. सर्व दु:खों से मुक्ति
३. कर्म का सिद्धांत
४. आत्मबोध
५. मैं कौन हूँ ?
६. वर्तमान तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी
७. भुगते उसी की भूल
८. एडजस्ट एवरीव्हेयर
९. टकराव टालिए
१०. हुआ सो न्याय
११. चिंता
१२. क्रोध
१३. प्रतिक्रमण
१४. दादा भगवान कौन ?
१५. पैसों का व्यवहार
१६. अंत:करण का स्वरूप
१७. जगत कर्ता कौन ?
१८. त्रिमंत्र
१९. भावना से सुधरे जन्मोंजन्म
२०. प्रेम
२१. माता-पिता और बच्चों का व्यवहार
२२. समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य
२३. दान
२४. मानव धर्म
२५. सेवा-परोपकार
२६. मृत्यु समय, पहले और पश्चात
२७. निजदोष दर्शन से... निर्दोष
२८. पति-पत्नी का दिव्य व्यवहार
२९. क्लेश रहित जीवन
३०. गुरु-शिष्य
३१. अहिंसा
३२. सत्य-असत्य के रहस्य
३३. चमत्कार
३४. पाप-पुण्य
३५. वाणी, व्यवहार में...
३६. कर्म का विज्ञान
३७. आप्तवाणी - १
३८. आप्तवाणी - ४
३९. आप्तवाणी - ५
४०. आप्तवाणी - ८

★ **दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा गुजराती भाषा में भी ५५ पुस्तकें प्रकाशित हुई है। वेबसाइट www.dadabhagwan.org पर से भी आप ये सभी पुस्तकें प्राप्त कर सकते हैं।**

★ **दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा हर महीने हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी भाषा में ''दादावाणी'' मैगेज़ीन प्रकाशित होता है।**

'दादा भगवान' कौन ?

जून १९५८ की एक संध्या का करीब छ: बजे का समय, भीड़ से भरा सूरत शहर का रेल्वे स्टेशन, प्लेटफार्म नं. 3 की बेंच पर बैठे श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल रूपी देहमंदिर में कुदरती रूप से, अक्रम रूप में, कई जन्मों से व्यक्त होने के लिए आतुर 'दादा भगवान' पूर्ण रूप से प्रकट हुए। और कुदरत ने सर्जित किया अध्यात्म का अद्भुत आश्चर्य। एक घंटे में उन्हें विश्वदर्शन हुआ। 'मैं कौन? भगवान कौन? जगत् कौन चलाता है? कर्म क्या? मुक्ति क्या?' इत्यादि जगत् के सारे आध्यात्मिक प्रश्नों के संपूर्ण रहस्य प्रकट हुए। इस तरह कुदरत ने विश्व के सम्मुख एक अद्वितीय पूर्ण दर्शन प्रस्तुत किया और उसके माध्यम बने श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल, गुजरात के चरोतर क्षेत्र के भादरण गाँव के पाटीदार, कॉन्ट्रैक्ट का व्यवसाय करनेवाले, फिर भी पूर्णतया वीतराग पुरुष!

उन्हें प्राप्ति हुई, उसी प्रकार केवल दो ही घंटों में अन्य मुमुक्षु जनों को भी वे आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे, उनके अद्भुत सिद्ध हुए ज्ञानप्रयोग से। उसे अक्रम मार्ग कहा। अक्रम, अर्थात् बिना क्रम के, और क्रम अर्थात् सीढ़ी दर सीढ़ी, क्रमानुसार ऊपर चढ़ना। अक्रम अर्थात् लिफ्ट मार्ग, शॉर्ट कट।

वे स्वयं प्रत्येक को 'दादा भगवान कौन?' का रहस्य बताते हुए कहते थे कि ''यह जो आपको दिखते हैं वे दादा भगवान नहीं है, वे तो 'ए.एम.पटेल' है। हम ज्ञानी पुरुष हैं और भीतर प्रकट हुए हैं, वे 'दादा भगवान' हैं। दादा भगवान तो चौदह लोक के नाथ हैं। वे आप में भी हैं, सभी में हैं। आपमें अव्यक्त रूप में रहे हुए हैं और 'यहाँ' हमारे भीतर संपूर्ण रूप से व्यक्त हुए हैं। दादा भगवान को मैं भी नमस्कार करता हूँ।''

'व्यापार में धर्म होना चाहिए, धर्म में व्यापार नहीं', इस सिद्धांत से उन्होंने पूरा जीवन बिताया। जीवन में कभी भी उन्होंने किसीके पास से पैसा नहीं लिया, बल्कि अपनी कमाई से भक्तों को यात्रा करवाते थे।

आत्मज्ञान प्राप्ति की प्रत्यक्ष लिंक

'मैं तो कुछ लोगों को अपने हाथों सिद्धि प्रदान करनेवाला हूँ। बाद में अनुगामी चाहिए या नहीं चाहिए? बाद में लोगों को मार्ग तो चाहिए न?''

– दादाश्री

परम पूज्य दादाश्री गाँव-गाँव, देश-विदेश परिभ्रमण करके मुमुक्षुजनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे। आपश्री ने अपने जीवनकाल में ही पूज्य डॉ. नीरूबहन अमीन (नीरूमाँ) को आत्मज्ञान प्राप्त करवाने की ज्ञानसिद्धि प्रदान की थी। दादाश्री के देहविलय पश्चात् नीरूमाँ उसी प्रकार मुमुक्षुजनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति, निमित्त भाव से करवा रही थीं। पूज्य दीपकभाई देसाई को दादाश्री ने सत्संग करने की सिद्धि प्रदान की थी। नीरूमाँ की उपस्थिति में ही उनके आशीर्वाद से पूज्य दीपकभाई देश-विदेशो में कई जगहों पर जाकर मुमुक्षुओं को आत्मज्ञान करवा रहे थे, जो नीरूमाँ के देहविलय पश्चात् आज भी जारी है। इस आत्मज्ञान प्राप्ति के बाद हज़ारों मुमुक्षु संसार में रहते हुए, ज़िम्मेदारियाँ निभाते हुए भी मुक्त रहकर आत्मरमणता का अनुभव करते हैं।

ग्रंथ में मुद्रित वाणी मोक्षार्थी को मार्गदर्शन में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी, लेकिन मोक्षप्राप्ति हेतु आत्मज्ञान प्राप्त करना ज़रूरी है। अक्रम मार्ग के द्वारा आत्मज्ञान की प्राप्ति का मार्ग आज भी खुला है। जैसे प्रज्वलित दीपक ही दूसरा दीपक प्रज्वलित कर सकता है, उसी प्रकार प्रत्यक्ष आत्मज्ञानी से आत्मज्ञान प्राप्त कर के ही स्वयं का आत्मा जागृत हो सकता है।

निवेदन

आत्मविज्ञानी श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल, जिन्हें लोग 'दादा भगवान' के नाम से भी जानते हैं, उनके श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहार ज्ञान संबंधी जो वाणी निकली, उसको रिकॉर्ड करके , संकलन तथा संपादन करके पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जाता हैं।

ज्ञानी पुरुष संपूज्य दादा भगवान के श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहारज्ञान संबंधी विभिन्न विषयों पर निकली सरस्वती का अद्‌भुत संकलन इस आप्तवाणी में हुआ है, जो नये पाठकों के लिए वरदानरूप साबित होगी।

प्रस्तुत अनुवाद में यह विशेष ध्यान रखा गया है कि वाचक को दादाजी की ही वाणी सुनी जा रही है, ऐसा अनुभव हो, जिसके कारण शायद कुछ जगहों पर अनुवाद की वाक्य रचना हिन्दी व्यकरण के अनुसार त्रुटिपूर्ण लग सकती है, परन्तु यहाँ पर आशय को समझकर पढ़ा जाए तो अधिक लाभकारी होगा।

ज्ञानी की वाणी को हिन्दी भाषा में यथार्थ रूप से अनुवादित करने का प्रयत्न किया गया है किन्तु दादाश्री के आत्मज्ञान का सही आशय, ज्यों का त्यों तो, आपको गुजराती भाषा में ही अवगत होगा। जिन्हें ज्ञान की गहराई में जाना हो, ज्ञान का सही मर्म समझना हो, वह इस हेतु गुजराती भाषा सीखें, ऐसा हमारा अनुरोध है।

प्रस्तुत पुस्तक में कई जगहों पर कोष्ठक में दर्शाये गये शब्द या वाक्य परम पूज्य दादाश्री द्वारा बोले गये वाक्यों को अधिक स्पष्टतापूर्वक समझाने के लिए लिखे गये हैं। जबकि कुछ जगहों पर अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी अर्थ के रूप में रखे गये हैं। दादाश्री के श्रीमुख से निकले कुछ गुजराती शब्द ज्यों के त्यों रखे गये हैं, क्योंकि उन शब्दों के लिए हिन्दी में ऐसा कोई शब्द नहीं है, जो उसका पूर्ण अर्थ दे सके। हालांकि उन शब्दों के समानार्थी शब्द अर्थ के रूप में कोष्ठक में और पुस्तक के अंत में भी दिये गये हैं।

अनुवाद संबंधी कमियों के लिए आपसे क्षमाप्रार्थी हैं।

आप्तवाणियों के हिन्दी अनुवाद के लिए परम पूज्य दादाश्री की भावना

'ये आप्तवाणियाँ एक से आठ छप गई हैं। दूसरी चौदह तक तैयार होनेवाली हैं, चौदह भाग। ये आप्तवाणियाँ हिन्दी में छप जाएँ तो सारे हिन्दुस्तान में फैल जाएँगी।'

- दादाश्री

परम पूज्य दादा भगवान (दादाश्री) के श्रीमुख से आज से पच्चीस साल पहले निकली यह भावना अब फलित हो रही है। आप्तवाणी-३ का हिन्दी अनुवाद आपके हाथों में है। भविष्य में और भी आप्तवाणियों तथा ग्रंथों का हिन्दी अनुवाद उपलब्ध होगा, इसी भावना के साथ जय सच्चिदानंद।

पाठकों से...

- 'आप्तवाणी' में मुद्रित पाठ्यसामग्री मूलतः गुजराती 'आप्तवाणी' श्रेणी-८ का हिन्दी रुपांतर है।
- इस 'आप्तवाणी' में 'आत्मा' शब्द को संस्कृत और गुजराती भाषा की तरह पुल्लिंग में प्रयोग किया गया है।
- जहाँ-जहाँ 'चंदूलाल' नाम का प्रयोग किया गया है, वहाँ-वहाँ पाठक स्वयं का नाम समझकर पठन करें।
- 'आप्तवाणी' में अगर कोई बात आप समझ न पाएँ तो प्रत्यक्ष सत्संग में पधारकर समाधान प्राप्त करें।

संपादकीय

अवर्णनीय, अवक्तव्य, निःशब्द आत्मतत्व का वर्णन किस तरह से हो सकता है? ऐसी क्षमता है भी किसकी? वह तो जो निरंतर आत्मरमणता में स्थित हों, ऐसे 'ज्ञानीपुरुष' का काम है कि जो अपनी ज्ञानसिद्ध संज्ञा से मुमुक्षु को आत्मदर्शन करवा देते हैं! प्रस्तुत ग्रंथ में परम पूज्य 'दादा भगवान' के श्रीमुख से संज्ञाभाषा में निकली हुई वाणी का संकलन किया गया है। प्रत्यक्षरूप से सुननेवाले को तो तत्क्षण ही आत्मदर्शन हो जाता है। यहाँ तो परोक्षरूप से हैं फिर भी इस भावना से प्रकाशित किया जा रहा है कि कितने ही काल से जो तत्वज्ञान संबंधी स्पष्टीकरण अप्रकट रूप में थे, वे आज प्रत्यक्ष 'ज्ञानीपुरुष' परम पूज्य 'दादा भगवान' के योग से प्रकट हो रहे हैं। उसका लाभ मुमुक्षुओं को अवश्य होगा ही, परन्तु यदि (ज्ञानी) साक्षात हों तो संपूर्ण आत्मजागृति की उपलब्धि हो जाती है, वह भी एक घंटे में ही परम पूज्य 'दादा भगवान' के सानिध्य में, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सके ऐसी बात आज सेंकड़ों आत्मार्थियों द्वारा अनुभव की हुई हक़ीक़त है!

केवलज्ञान स्वरूपी मूल आत्मा के बारे में, एब्सोल्यूट आत्मविज्ञान के बारे में, हूबहू समझ तो 'केवल' तक पहुँचे हुए एब्सोल्यूट आत्मविज्ञानी ही दे सकते हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में प्रथम विभाग में आत्मविज्ञान और द्वितीय विभाग में व्यवहारज्ञान का संकलन किया गया है। आत्यंतिक मुक्ति तो तभी संभव है जब आत्मज्ञान और संपूर्ण आदर्श व्यवहारज्ञान, उन दोनों पंखों से उड़ा जाए। एक पंख की उड़ान अपूर्ण है। शुद्ध व्यवहारज्ञान रहित आत्मज्ञान, वह शुष्कज्ञान कहलाता है। शुद्ध व्यवहारज्ञान अर्थात् 'खुद के त्रिकरण द्वारा इस जगत् में किसी भी जीव को किंचित् मात्र दुःख नहीं हो।' जहाँ पर यथार्थ आत्मज्ञान है, वहाँ परिणाम स्वरूप में शुद्ध व्यवहार होता ही है। फिर वह व्यवहार त्यागीवाला हो या गृहस्थीवाला हो, उसके साथ ही मुक्ति के सोपान चढ़ने में कोई परेशानी नहीं होती। उसके लिए मात्र शुद्ध व्यवहार की ही आवश्यकता है। केवल आत्मा की गुह्य बातें होती हों, परन्तु व्यवहार में यदि रोज़ के टकराव में क्रोध-मान-माया-लोभ

का साम्राज्य हो तो वह ज्ञान बांझ ज्ञान कहलाएगा। परम पूज्य 'दादा भगवान' की ज्ञानवाणी संसार की हर एक मुश्किल का अत्यंत सीधा और सरल उपाय बताती है, जो कि स्वयं कार्यकारी होकर उलझनों को आसानी से सुलझा देती है। घर में, कामकाज में, नौकरी में, या कहीं भी जब ताला लग जाता है तब उसे एकाध चाबी स्वयं ही हाज़िर हो जाती है और ताला खुल जाता है! प्रस्तुत ग्रंथ में संभव हो उतनी चाबियों का संकलन करने का प्रयास किया है। जिज्ञासुओं के लिए वह क्रियाकारी बने, उसके लिए सुज्ञ पाठक शुद्ध भाव से खुद के अंदर विराजे हुए परमात्मा से प्रार्थना करके प्रस्तुत ग्रंथ का पठन, मनन करना चाहिए कि सर्व ज्ञानकला और बोधकला उसे खुद को उपलब्ध हो, जो अवश्य फलित होगी।

सामान्यरूप से 'ज्ञानीपुरुष' के बारे में ऐसा समझा जाता है कि वे कुछ शास्त्र संबंधी विशेष जानकारी रखते हैं। यर्थाथरूप से तो ऐसों को शास्त्रज्ञानी कहते हैं। आत्मज्ञानी और शास्त्रज्ञानी में आकाश-पाताल का अंतर है। शास्त्रज्ञानी मार्ग के शोधक कहलाते हैं, जब कि आत्मज्ञानी तो आत्म मंज़िल तक पहुँच चुके होते हैं और अनेको को पहुँचाते है संपूर्ण निर्‌अहंकारी पद को वरेला (प्राप्त करनेवाले) आत्मानुभवी पुरुष ही 'ज्ञानीपुरुष' कहलाते हैं। ऐसे 'ज्ञानीपुरुष' हज़ारों वर्षों में एक ही उत्पन्न होते हैं। तब उस काल में वे विश्व में बेजोड़ होते हैं। उन्हीं को अवतारी पुरुष कहते हैं। भयंकर कर्मोंवाले कलि मानवों के महापुण्य के भव्य उदय से इस काल में ऐसे 'ज्ञानीपुरुष' परम पूज्य 'दादा भगवान' हमें मिले हैं! उस पुण्य को भी धन्य है!

प्रकट परमात्मा को स्पर्श करके प्रकट हुई साक्षात सरस्वती को परोक्ष में ग्रंथ के रूप में रखना और, वह भी काल, निमित्त और संयोगों के अधीन निकली हुई वाणी को, वैसे ही हर किसीके लिए हृदयस्पर्शी बनी रहे, उसके लिए संकलन करने के प्रयत्नों में यदि कोई खामी है तो वह संकलन की शक्ति की मर्यादा के कारण ही संभव हैं, जिसके लिए क्षमा प्रार्थना!

- डॉ. नीरूबहन अमीन के जय सच्चिदानंद

उपोद्घात

खंड : १ आत्म विज्ञान

अनंत काल से अनंत लक्ष्य बींधे, किन्तु 'खुद कौन है' वही लक्ष्य नहीं साधा जा सका। सच्चा मार्ग ही 'मैं कौन हूँ' की शोध का है या फिर उस रास्ते को दिखानेवाले भी सच्चे मार्ग की ओर चलनेवाले कहे जा सकते हैं। पेपर पर बनाया हुआ दीया प्रकाश नहीं देता है, मात्र दीये की रूपरेखा ही दे सकता है। प्रकाश तो, प्रत्यक्ष दीया ही देता है! अर्थात् आत्मज्ञान की प्राप्ति प्रकट प्रत्यक्ष 'ज्ञानीपुरुष' के माध्यम से ही संभव है।

तमाम शास्त्र एक ही आवाज़ में बोल उठे, 'आत्मज्ञान जानो!' वह शास्त्र में नहीं समाया है, वह तो ज्ञानी के हृदय में समाया हुआ है।

अनंत प्राकृत अवस्थाओं में उलझे हुए निजछंद से, किस तरह उसमें से बाहर निकलकर आत्मरूप हो पाएगा?! जो-जो क्रिया करके, तप, जप, ध्यान, योग, सामायिक करके जो स्थिरता प्राप्त करने जाता है, वह तो स्वभाव से ही चंचल है, वह किस तरह से स्थिर हो सकेगा? 'मूल (निश्चय) आत्मा' स्वभाव से ही अचल है इतनी ही समझ फ़िट कर लेनी है! मरण के भय के कारण कोई खुद दवाई का मिक्स्चर बनाकर नहीं पीता। और आत्मा के बारे में तो खुद मिक्स्चर बनाना अनंत जन्मों के मरण को आमंत्रण देता है! यही स्वच्छंद है, अन्य क्या?

ज्ञानी की आज्ञा के बिना आत्मा की आराधना हो पाना असंभव है! 'ज्ञानी' तो संज्ञा से संकेत में समझा देने की क्षमता रखते हैं! जो शब्द स्वरूप नहीं, जहाँ शब्द की ज़रूरत नहीं, जहाँ कोई माध्यम नहीं है, जो मात्र स्वभाव स्वरूप है, केवलज्ञान स्वरूप है, ऐसे आत्मा का लक्ष्य अनंत भेदें से, आत्मविज्ञानी ऐसे 'ज्ञानीपुरुष' के अलावा अन्य कोई बैठा सके, ऐसा नहीं है।

आत्मा ज्ञानस्वरूप नहीं है, विज्ञान स्वरूप है। जो आत्मविज्ञान को जाने वह 'एब्सोल्यूट' आत्मा प्राप्त करता है। भौतिक विज्ञान बरसों बरस

बिता दे, फिर भी काम नहीं हो पाता और आत्मविज्ञान तो अंत:मुहूर्त में भी 'एब्सोल्यूट' बना देगा!

धातुओं के मिश्रण का विभाजन प्रत्येक के गुणधर्म के ज्ञान के आधार पर हो पाता है। उसी प्रकार आत्मा-अनात्मा के मिश्रण का विभाजन, जो दोनों के गुणधर्मों को जाने, वे पुरुष ही वैज्ञानिक प्रयोग द्वारा कर सकते है।

अनादि से विनाशी वस्तुओं की तरफ मुड़ी हुई दृष्टि को 'ज्ञानीपुरुष' निज के अविनाशी स्वरूप की तरफ मोड़ देते हैं, जो वापस कभी भी वहाँ से हटती नहीं है! दृष्टिफेर से ही संसार खड़ा है! ज्ञानी की दिव्यातिदिव्य देन है कि वे अंत:मुहूर्त में आत्मदृष्टि कर देते हैं, दिव्य दृष्टि दे देते हैं जो स्व-पर के आत्मस्वरूप को ही देखती है। दृष्टि-दृष्टा में स्थिर कर देते हैं। फिर खुद को यक़ीन हो जाता है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ!' दृष्टि भी बोलने लगती है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ' दोनों का भेद टूट जाता है और अभेद हो जाते हैं!

जहाँ दृष्टि दृष्टा में पड़े, वहाँ समग्र दर्शन खुल जाता है। दृष्टि दृष्टा में पड़े, दृष्टि स्वभावसन्मुख हो जाए तो खुद को खुद के ही वास्तविक शुद्ध स्वरूप की प्रतीति होती है, फिर दृष्टि और दृष्टा ऐक्यभाव में आ जाते हैं! जहाँ आत्मदृष्टि है वहीं निराकुलता है, आत्मदृष्टि से मोक्ष द्वार खुलते हैं! देहदृष्टि, मनोदृष्टि से संसार का सर्जन होता है।

शुद्ध ज्ञान, जो कि निरंतर विनाशी-अविनाशी वस्तुओं का भेदांकन करके यथार्थ को दिखाता है, और वही परमात्मा है!

संसार व्यवहार क्रियात्मक और आत्मव्यवहार ज्ञानात्मक होने के कारण दोनों सर्वकाल भिन्न रूप से ही बरतते हैं। एक की क्रिया है और दूसरे का जानपन (जानने का गुण) है। करनेवाला अहंकार और जाननेवाला शुद्धात्मा इतना ही भेद जिसने प्राप्त कर लिया, उसका संसार अस्त हो गया। जिसे यह भेद प्राप्त करना हो और 'ज्ञानीपुरुष' नहीं मिले हों तो 'हे भगवान! ज्ञान आपका और क्रिया मेरी', यदि यह प्रार्थना अंदरवाले भगवान से सतत करता रहे, तब भी एक न एक दिन भगवान उसे मिले बगैर रहेंगे नहीं।

खुद आत्मा हुए बिना ज्ञाता-दृष्टा किस तरह से कहलाएगा। जब तक निज स्वरूप का भान नहीं होता, तब तक ज्ञाता-दृष्टापन इन्द्रियज्ञान के आधार पर हैं, अतीन्द्रियज्ञान के आधार पर ही यथार्थ ज्ञाता-दृष्टा पद में आया जा सकता है।

ज्ञान और आत्मा अभेदस्वरूप से हैं, मिथ्यादृष्टि उठ जाए और सम्यक् दृष्टि हो जाए तब यथार्थ ज्ञान का स्वरूप समझ में आता है, जो बाद में 'ज्ञानीपुरुष' के सत्संग द्वारा फ़िट होते-होते ज्ञान-दर्शन बढ़ते-बढ़ते प्रवर्तन में आता है और जब केवल आत्मप्रवर्तन में आएगा, जहाँ पर ज्ञान-दर्शन के अलावा अन्य कुछ भी प्रवर्तन नहीं है, वह केवलज्ञान है।

जगत् में जो ज्ञान चल रहे हैं, मंत्र, जप, शास्त्रज्ञान, ध्यान, योग, कुंडलिनी, ये सभी इन्द्रियज्ञान हैं, भ्राँति ज्ञान हैं। इनसे संसार में ठंडक रहती है, मोक्ष तो अतीन्द्रियज्ञान से हैं!

शास्त्रज्ञान अर्थात् श्रुतज्ञान या स्मृतिज्ञान, आत्मज्ञान नहीं है। पुस्तक में या शब्द में चेतन नहीं है, हाँ, स्वंय परमात्मा जहाँ पर प्रकट हो गए हैं ऐसे ज्ञानी की या तीर्थंकरों की वाणी परमात्मा को स्पर्श करके निकली होने के कारण अपने सोए हुए चेतन को जगा देती है!

'सर्वधर्मान् परित्यजय, मामेकं शरणं व्रज।'- देह के धर्म, मन के धर्म, वाणी के धर्म या जो परधर्म हैं, वे भयावह हैं, उन सभी को छोड़कर सिर्फ मेरे यानी कि आत्मा के धर्म में आ जा। मेरे अर्थात् जो मुरलीवाले दिखते हैं, वे नहीं, परन्तु मेरे अंदर बैठे हुए परमात्मा स्वरूप की शरण में आने के लिए कहा है!!!

निज स्वरूप का अज्ञान, वही भ्रांति और वही माया है। 'खुद जो नहीं है' उसकी कल्पना होना, वही भ्रांति! जो शब्दप्रयोग नहीं है, अनुभवप्रयोग है ऐसे निज स्वरूप को जानना है। मूल बात को समझना है। समझ से ही मोक्ष है।

संयोगों के दबाव से भ्रांति उत्पन्न हो गई। वास्तव में आत्मा को भ्रांति नहीं है, आत्मा गुनहगार नहीं है। अज्ञानता से गुनहगार भासित होता है।

संपूर्ण ज्ञानी छुपे नहीं रह सकते। खुद जो सुख प्राप्त किया है, उसे दुनिया को बाँटने के लिए दुनिया के साथ ही रहते हैं। मुमुक्षु तो 'ज्ञानी' के नेत्र देखते ही परख लेते हैं।

कोई गालियाँ दे, जेब काटे, हाथ काटे, कान काटे, फिर भी राग-द्वेष नहीं हों, जहाँ अहंकार और ममता नहीं हैं वहाँ पर चैतन्य सत्ता का अनुभव है, ऐसा समझ में आता है!

पेरालिसिस में भी आत्मसुख नहीं जाए, दुःख को सुख बना दे, वही आत्मानुभव। जब 'मैं कौन हूँ' का भान होता है, तब आत्मानुभव होता है।

'थ्योरिटिकल' अर्थात् समझ, और अनुभव तो 'प्रेक्टिकल' वस्तु है। अक्रममार्ग से आत्मानुभव एक घंटे में ही हो जाता है!!! वर्ना उसका करोड़ों जन्मों तक भी, लाख साधना करने पर भी ठिकाना नहीं पड़े!!!

आत्मा का लक्ष्य निरंतर रहे, वही आत्मासाक्षात्कार। हर्ष-शोक के कैसे भी संयोगों में हाज़िर रहकर सेफसाइड में रखे, वही ज्ञान है।

कंकड़ को जो जान ले, वह गेहूँ को जान लेगा।

असत् को जो जान ले, वह सत् को जान लेगा।

अज्ञान को जो जान ले, वह ज्ञान को जान लेगा।

आत्मानुभव किसे होता है?

पहले जिसे 'मैं चंदूलाल हूँ' का भान था, उसे ही अब 'मैं शुद्धात्मा हूँ' का भान होता है, उसे ही आत्मानुभव होता है।

विचारों द्वारा उत्पन्न हुआ ज्ञान, वह शुद्ध आत्मज्ञान नहीं होता है, विचार स्वयं आवरणकारी हैं। आत्मा निर्विचार स्वरूप है। विचार और आत्मा बिल्कुल भिन्न हैं। आत्मा का स्वरूप मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार, शब्द और विचार के स्वरूप से न्यारा है। ज्ञान-दर्शन-चारित्र, ऐसा जिसका स्वरूप है और परमानंद जिसका स्वभाव है, ऐसा आत्मा जानना है।

'चंदूलाल' प्रयोग है और 'शुद्धात्मा' खुद प्रयोगी है। प्रयोग को ही प्रयोगी मानकर बैठने का परिणाम, चिंता और दुःख!

अज्ञाशक्ति से जगत् की अधिकरण क्रिया चलती है और प्रज्ञा से विराम पाती है। स्वरूप ज्ञान की प्राप्ति के बाद प्रज्ञा प्रकट होती है और अज्ञा विदाई ले लेती है। अज्ञा संसार में भटकाती है, प्रज्ञा मोक्ष के किनारे तक ले जाती है! प्रकट हो चुकी प्रज्ञा निरंतर आत्महित ही दिखाती रहती है– निरंतर सावधान करती रहती है, और संसार का हल ला देती है! केवल प्रकाश स्वरूप आत्मा संसार से बाहर किस तरह से निकलेगा? वह तो आत्मा के अंग रूपी प्रज्ञा ही सब कर लेती है! आत्मा की मूल कल्पशक्ति से अज्ञा का उद्भव होता है, उसमें फिर अहंकार मिल जाता है जिससे संसार निरंतर चलता रहता है! संयोगों के ज़बरदस्त दबाव से स्वाभाविक ज्ञान–दर्शन विभाविक बन गया। सिद्धगति में संयोग नहीं होते, संयोगों का दबाव नहीं होता, इसीलिए वहाँ पर विकल्प नहीं हैं।

कर्तापन में निःशंकता, वह अज्ञदशा है। कर्तापन में शंका पड़े, वह स्थितप्रज्ञदशा और जहाँ कर्तापद ही उड़ गया, वहाँ पर प्रज्ञा उत्पन्न होती है।

चित्त और प्रज्ञा में फर्क कितना? कि चित्त पहले का देखा हुआ ही देख सकता है जब कि प्रज्ञा सबकुछ नया ही देखती है, विशेष जानती है। खुद के दोषों को भी जो दिखाए, वह प्रज्ञा है। चित्त बाकी सबकुछ देख सकता है, लेकिन प्रज्ञा को नहीं देख सकता। जब कि आत्मा तो प्रज्ञा को भी देख सकता है! प्रज्ञा केवलज्ञान होने तक ही शुद्धात्मा की सेवा में रहती है।

आत्मा का एक विकल्प और *पुद्गल* ने बिछा दी पूरी बाज़ी, परिणाम स्वरूप संसार सर्जित हो गया! इसमें स्वतंत्र कर्ता कोई भी नहीं है। संयोगों के दबाव से इस परिस्थिति का सर्जन हुआ। इस *पुद्गल* का निरंतर परिवर्तन होता ही रहता है, अवस्थाओं के रूप में! तत्व स्वरूप से *पुद्गल* केवलज्ञान स्वरूप हैं जो कि अविनाशी है। पुर *गलन* अर्थात् *पुद्गल*। *पूरण–गलन* होता ही रहे, वह *पुद्गल*। रूप, रस, गंध और स्पर्श *पुद्गल* के मुख्य चार गुण हैं। *पुद्गल* में ज्ञान–दर्शन नहीं है, *लागणी* का अनुभव ही नहीं है, और क्षायकभाव भी नहीं है! जगत् में सक्रियता सिर्फ *पुद्गल* की ही है। बाकी के तत्व अक्रिय स्वभाववाले हैं। *पुद्गल* की सक्रियता के कारण ही जगत् में तरह–तरह के रूप दिखते हैं।

ज़रा-सा थोड़ा ज़हर चेतन को 'ऑन द मोमेन्ट' घर खाली करवा देता है! *पुद्गल* की कितनी अधिक शक्ति!!!

परमाणुओं की शुद्ध अवस्था अर्थात् विश्रसा। संयोगों के दबाव से 'मैं चंदूलाल हूँ, और मैंने यह किया!' जब ऐसा अज्ञान उत्पन्न होता है तब परमाणुओं का चार्ज प्रयोग होता है, इसलिए वह प्रयोगशा कहलाए। प्रयोगशा होने के बाद कारण देह बनता है जो अगले जन्म में मिश्रसा बन जाता है। वह कड़वे-मीठे फल देकर जाए, ठेठ तब तक मिश्रसा के रूप में रहता है। फल देते समय वापस बेभान अवस्था में नया 'चार्ज' कर देता है और साइकल (चक्र) चलती ही रहती है, जिसे लोग कर्म भोगा और सुख-दु:ख परिणाम कहते हैं, 'ज्ञान' उन्हें परमाणुओं की परिवर्तित होती हुई अवस्थाओं के रूप में 'देखता और जानता' रहता है! उससे नया प्रयोग नहीं होता है, और वह चक्र टूट जाता है!

देह तरह-तरह के परमाणुओं से खचाखच भरा हुआ हैं। उग्र परमाणुओं के उदय में तन्मयाकारपन क्रोध को जन्म देता है। वस्तु देखते ही आसक्ति के परमाणु फूटने से तन्मयाकार हो जाए, तब लोभ जन्म लेता है। मान मिलते ही तन्मयाकार होकर अंदर ठंडक का आनंद ले और 'उसमें' खुद एकाकार हो जाए, वहाँ पर अहंकार का जन्म हुआ! इन सभी अवस्थाओं में 'खुद' निर्तन्मय रहे तो क्रोध-मान-माया-लोभ की हस्ती रहेगी ही नहीं। सिर्फ परमाणुओं का इफेक्ट ही बाकी रहेगा, जिसकी *निर्जरा* हो जाएगी!!

क्रोध में 'प्रतिष्ठित आत्मा' एकाकार होता है, 'बिलीफ़ आत्मा' एकाकार होता है, मूल आत्मा एकाकार होता ही नहीं।

पूरण-गलन के विज्ञान को ज्ञानी और अधिक सूक्ष्मता से समझाते हैं कि भोजन किया, उसे लौकिक भाषा में *पूरण* किया कहते हैं। लेकिन वह *पूरण* 'फर्स्ट *गलन*' है और पखाना जाना वह 'सेकन्ड *गलन*' है। और वास्तव में जो *पूरण* होता है वह सूक्ष्म वस्तु है, जिसे 'ज्ञानी' ही देख सकते हैं, जान सकते हैं!

जिसे *पुद्गल* में पारिणामिक दृष्टि उत्पन्न हो जाती है, उसे विषयसुख फीके लगते हैं। जलेबी खाई, उसकी सुबह क्या दशा होगी, खीर की उल्टी होने के बाद वह कैसा लगेगा? ऐसी पारिणामिक दृष्टि रहनी चाहिए।

शरीर के परमाणु, मन के परमाणु प्रति क्षण बदलते ही रहते हैं। परमाणु परिवर्तित होते रहते हैं, फिर भी वे कम-ज़्यादा नहीं होते।

जिस तरह हर एक आत्मा का एक ही स्वभाव है, उसी तरह परमाणु भी एक ही स्वभाव के हैं। मात्र क्षेत्र परिवर्तन के कारण भाव परिवर्तन और भाव परिवर्तन के कारण होनेवाला हर एक का परिवर्तन बिल्कुल अलग-अलग लगता हैं। जिसके आधार पर जगत् का अस्तित्व है। परमाणु जड़ तत्व के ही होते हैं। परमाणु जड़ हैं परन्तु चेतनभाव को प्राप्त करके चेतनवाले बन जाते हैं, जिसे मिश्रचेतन कहते हैं। जब तक शरीर से बाहर हों तब तक परमाणुओं की अवस्था विश्रसा हैं, अंदर प्रविष्ट हो जाएँ, तब प्रयोगशा और फल देते समय मिश्रसा होती है।

सिर्फ आत्महेतु के लिए ग्रहित परमाणु ही सर्वोच्च होते हैं, जो मोक्ष जाने तक चक्रवर्ती (राजा) जैसी सुविधाएँ देते हैं।

जब तक प्रयोगशा की स्टेज हो, तब तक परिवर्तन संभव है, मिश्रसा होने के बाद किसीका चलन नहीं रहता। बाहर शुद्ध स्वरूप से रहे हुए परमाणु स्वाभाविक विश्रसा है। आत्मा के संयोग में आने के बाद विभाविक, प्रयोगशा बन जाता है। विभाविक *पुद्गल* विनाशी है, स्वभाविक *पुद्गल* अविनाशी है। विभाविक *पुद्गल* स्वतंत्र नहीं है, 'व्यवस्थित' के अधीन है।

परमाणु मूल स्वरूप से केवलज्ञान में ही दिखाई देते हैं।

जिस प्रकार आत्मा अनंत शक्तिवाला है उसी प्रकार *पुद्गल* भी अनंत शक्तिवाला है। आत्मा इस *पुद्गल* की शक्ति जानने गया और खुद ही उसमें बंदी बन गया! *पुद्गल* के धक्के से आत्मा में नैमित्तिक कर्तापन उत्पन्न हो गया है।

दो सनातन तत्वों के परस्पर साथ में आने से विशेष परिणाम उत्पन्न होता है।

'मैं करता हूँ' वह कर्ताभाव है और कर्ताभाव ही कर्म है। जहाँ कर्ताभाव नहीं है वहाँ पर कर्म नहीं हैं; इसलिए वहाँ न तो पाप है न ही पुण्य!

देह परमाणुओं का बना हुआ है। क्रोध और मान के परमाणुओं की मात्रा विशेष होने के कारण पुरुष देह मिलता है और माया और लोभ के परमाणुओं की मात्रा विशेष हो, तब स्त्रीदेह की प्राप्ति होती है। परमाणुओं की मात्रा में परिवर्तन हो जाए तो दूसरे जन्म में लिंगभेद हो जाता है, आत्मा में भेद नहीं है।

अच्छा-बुरा विकल्प से दिखता है। निर्विकल्पी के लिए अच्छा-बुरा होता ही नहीं।

जो आँख से दिखें, दूरबीन से दिखें-वे सभी स्थूल परमाणु हैं, मिश्रसा-वे सूक्ष्म हैं, प्रयोगशा-वे सूक्ष्मतर और विश्रसा-वे सूक्ष्मतम परमाणु हैं!

पुद्‌गल भी सत् यानी कि अविनाशी है। *पुद्‌गल* के भी पर्याय हैं जो खुद के प्रदेश में रहकर बदलते हैं, जो कि विनाशी हैं। *पुद्‌गल पूरण-गलन* स्वभाव का है!

आत्मा के अलावा सभी भाव *पुद्‌गल* भाव हैं। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, क्रोध, मान, माया, लोभ, वे सभी *पुद्‌गल* भाव हैं। उन्हें देखते रहना है। उनमें एकाकार हुए तो जोखिमदारी आएगी, और एकाकार नहीं हुए तो छूट जाएँगे! *पुद्‌गल*भाव को देखता और जानता है वह आत्मभाव है। मुँह बिगड़ जाए, मन बिगड़ जाए, ऐसा सब असर हो जाए तो उसे *पुद्‌गल* भाव में एकाकार हो गए, ऐसा कहा जाएगा।

जब तक स्वसत्ता को जाना नहीं, तब तक खुद परसत्ता में ही है। परसत्ता को स्वसत्ता माने, वही अहंकार है।

सत्ता का थोड़ा-सा भी दुरुपयोग हो, तो सत्ता चली जाती है।

तमाम क्रिया और क्रियावाला ज्ञान, वह सारा ही परसत्ता है। जो

अक्रिय, ज्ञाता-दृष्टा, परमानंदी है, जो क्रियावाले ज्ञान को जानता है, वही 'खुद की' स्वसत्ता है। जितना शुद्ध उपयोग रहा, उतनी स्वसत्ता प्रकट होगी। घोर अपमान में भी परसत्ता खुद पर नहीं चढ़ बैठे तो उसे आत्मा प्राप्त किया कहा जाएगा! एक घंटा स्व-स्वभाव में रहकर प्रतिक्रमण होंगे तो स्वसत्ता का अनुभव होगा।

करता है कोई और, और मानता है कि 'मैं कर रहा हूँ', वह परपरिणति है। 'व्यवस्थित' जो-जो करवाता है, उसे वीतरागभाव से देखता रहे, वह स्वपरिणति है। एक क्षण के लिए भी परपरिणति में प्रवेश नहीं करें, वे ज्ञानी! वे ही देहधारी परमात्मा! जो स्वपरिणति में रहता है, उसे परपरिणति स्पर्श ही नहीं करती।

''ज्ञान जब उपयोग में आता है, तब वह स्वपरिणति में आता है।''

ज्ञानी की आज्ञा, ज्ञानी के दर्शन स्वपरिणति में लाते हैं। जब तक किंचित् मात्र भी किसीका अवलंबन है, तब तक परपरिणति है।

'डिस्चार्ज' भाव को खुद के भाव मानता है, इसीलिए परपरिणति में जाता है। 'डिस्चार्ज' भाव को खुद के भाव नहीं माने तो वह स्वपरिणति में है। जो एक भी 'डिस्चार्ज' भाव को खुद का भाव नहीं मानते, वे 'ज्ञानीपुरुष'!

स्वपरिणाम और परपरिणाम जीवमात्र में होते ही हैं। जो परपरिणाम को स्वपरिणाम माने और 'करनेवाला मैं ही हूँ और जाननेवाला भी मैं ही हूँ', माने वह अज्ञान है।

पुद्गल और आत्मा दोनों परिणामी स्वभाव के हैं, इसलिए प्रति क्षण परिणाम बदलते हैं, इसके बावजूद भी खुद का स्वभाव कभी भी कोई नहीं छोड़ता, दोनों ऐसे हैं। *पुद्गल* के पारिणामिक भाव अर्थात् सांसारिक बाबतों में ज्ञान हाज़िर होता है कि आलू खाएँगे तो उससे वायु होगी। जब कि शुद्धात्मा के पारिणामिक भाव अर्थात् ज्ञाता-दृष्टा! क्रोध-मान-माया-लोभ, ये सारे भी *पुद्गल* के पारिणामिक भाव हैं। पारिणामिक भाव कि जिनमें बदलाव कभी भी नहीं हो सकता। अब यह जगत् इन्हें छोड़ने को

कहता है, जब कि वीतराग 'परीक्षा देनी' कहते हैं, 'परिणाम' अपने आप आएगा।

आत्मा का स्वभाव ऐसा है कि जैसी कल्पना करे, तुरन्त ही वैसा बन जाता है। आत्मा का प्रकाश बाहर गया इसलिए अहंकार खड़ा हो गया। मूल आत्मा चिंतवन नहीं करता, परन्तु जैसे ही 'अहंकार' के आरोपण से चिंतवन करता है, तब उसी रूप का विकल्प बन जाता है! चिंतवन अर्थात् जो सोचा करता है वह नहीं, परन्तु खुद मन में जो आशय निश्चित करता है, वह चिंतवन है।

'मैं दुःखी हूँ' ऐसा चिंतवन से दुःखी हो जाता है और 'सुखी हूँ' कहते ही सुखी हो जाता है, कोई पागल 'मैं समझदार हूँ' ऐसा चिंतवन करे तो वह समझदार हो जाएगा।

'मैं स्त्री हूँ, यह पुरुष है', जब तक वैसी बिलीफ़ है, तब तक मोक्ष नहीं है। 'खुद आत्मा है' ऐसा बरते तभी मोक्ष है!

पुद्‌गल अधोगामी स्वभाव का है, आत्मा ऊर्ध्वगामी स्वभाव का है। बुद्धिशालियों के टच में आने से खुद अधोगामी बनता है। परमाणुओं के आवरण जितने अधिक, उतनी गति नीची। आत्मा जब निरावरण हो जाए, तभी मोक्ष में जाता है।

आत्मा को जो गुणधर्मसहित जाने और तद्‌रूप परिणाम प्राप्त करे, उसीको आत्माज्ञान होता है। अनंतगुण का धर्ता आत्मा है-अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतशक्ति, अनंतसुख, अव्यबाध, अरूपी, असंग, अविनाशी......

आत्मा का शुद्धत्व अनंत ज्ञेयों को देखने-जानने के बावजूद भी जाता नहीं है, अनंतकाल से!!!

अक्रमज्ञानी के इस अद्‌भुत वाक्य को जो पूर्णतः समझ जाएगा, वही उस पद को प्राप्त करेगा।

''अनंत ज्ञेयों को जानने में परिणमित हुई अनंत अवस्थाओं में, मैं संपूर्ण शुद्ध हूँ, सर्वांग शुद्ध हूँ।'' - **दादा भगवान**

जैसे-जैसे *पुद्गल* पर्याय बदलते हैं, वैसे-वैसे ज्ञानपर्याय बदलते हैं। पर्यायों के निरंतर परिवर्तनों में भी ज्ञान संपूर्ण शुद्ध, सर्वांग शुद्ध रहता है!

ज्ञान में भेद नहीं होता। केवलज्ञान स्वरूपी आत्मा में तो ज्ञान और दर्शन का भेद भी नहीं है। गुण और वस्तु अभिन्न भाव से, अभेद भाव से ही होते हैं। जब कि शब्द में कहने जाएँ तो भेद भासित होता है!

अवस्था का ज्ञान विनाशी है, मूल स्वाभाविक ज्ञान सनातन है! सामने आनेवाले ज्ञेय के आकार जैसा हो जाने के बावजूद भी ज्ञान खुद की शुद्धता नहीं चूकता, किसी भी काल में!

आत्मा और *पुद्गल* दोनों ही द्रव्य, गुण और पर्याय सहित हैं। आत्मा के गुण अन्वय-सहचारी होते हैं और पर्याय परिवर्तनशील होते हैं। वस्तु की सूक्ष्म अवस्थाओं को पर्याय कहते हैं।

ज्ञेय जानने से राग-द्वेष होते हों तो बंधन है और यदि वीतराग रहे तो खुद मुक्त ही है!

दर्शन सामान्यभाव से होता है और ज्ञान विशेषभाव से होता है, जिसके कारण ज्ञेय अलग-अलग दिखते हैं और उसीसे ज्ञान पर्याय ज्ञेयाकार हो जाता हैं, परन्तु द्रश्याकार नहीं हो पाता। आत्मा स्वभाव से आकाश जैसा है, लाइट जैसा है। इस लाइट को डिब्बे में बंद किया हो, फिर भी उसे कुछ भी नहीं चिपकता, आत्मा का द्रव्य इस लाइट जैसा ही है, प्रकाशमान करने की शक्ति-वह ज्ञान-दर्शन है, गुण है, और उस प्रकाश में जो सारी चीज़ें दिखती हैं, उन्हें ज्ञेय कहते हैं।

चेतन के चेतन पर्याय और अचेतन के अचेतन पर्याय होते हैं।

यथार्थ आत्मा प्राप्त करने के बाद ही आत्मा का आनंद उत्पन्न होता है। चाहे कैसी भी स्थिति हो, फिर भी निरंतर परमानंद रहे, उसीको मोक्ष कहते हैं। बाह्य किसीभी आलंबन के बिना सहज उत्पन्न होनेवाला आनंद, वही आत्मानंद है। आनंद, वह आत्मा का अन्वय गुण है।

सिद्धगति में भी साथ में रहनेवाला गुण है! आत्मा जानने के बाद आत्मा का शुद्ध आनंद उत्पन्न होता है, जो क्रमशः बढ़ते-बढ़ते अंत में संपूर्णता तक पहुँचता है।

जीवमात्र में आत्मा की अनंत शक्तियाँ है, परन्तु वे आवृत हैं। अहंकार और ममता चले जाएँ, तब वे शक्तियाँ प्रकट होती है! 'भगवान' से तो ज्ञानशक्ति और स्थिरताशक्ति ही माँगने जैसी है, *पुद्गल* शक्ति माँगने योग्य नहीं है! आत्मशक्ति अर्थात् आत्मवीर्य। अहंकार से आत्मवीर्य आवरित हो जाता है। जब आत्मवीर्य कम होता हुआ लगे तब 'मैं अनंत शक्तिवाला हूँ', ऊँची आवाज़ में २५-५० बार बोलने से आत्मवीर्य प्रकट हो जाता है! 'मोक्ष में जाने तक ही, उस रास्ते में आनेवाले विघ्नों के समक्ष खुद अनंत शक्तिवाला है।' ऐसा बोलने की ज़रूरत है, मोक्ष में जाने के बाद इसकी ज़रूरत नहीं है। ज्ञाता-दृष्टा रहने से तमाम विघ्न नष्ट हो जाते हैं और आत्मा की शक्तियाँ प्रकट होती है। विनाशी वस्तु की मूर्च्छा से आत्मा की चैतन्यशक्ति आवृत होती है।

छहों तत्व शुद्ध स्वरूप में अगुरु-लघु स्वभाव के हैं। आत्मा टंकोत्कीर्ण है, ऐसा उसके अगुरु-लघु स्वभाव के कारण है।

क्रोध-मान-माया-लोभ, वे न तो आत्मा के गुण हैं, न ही जड़ के गुण हैं। वे अन्वय गुण नहीं हैं, लेकिन आत्मा की हाज़िरी से उत्पन्न होनेवाले *पुद्गल* के गुण-व्यतिरेक गुण हैं। जिस प्रकार सूर्य की उपस्थिति से पत्थर में गरमी का गुण उत्पन्न हो जाता है, वैसे।

आत्मा अरूपी है। अरूपी के साथ रूपी चिपक गया, वही आश्चर्य है न! भ्रांति से लिपटा हुआ लगता है। हकीकत में वैसा है नहीं।

टंकोत्कीर्ण अर्थात् आत्मा और *पुद्गल* का मिक्स्चर जैसा बन गया है। कम्पाउन्ड नहीं! दो तत्व साथ में हैं फिर भी एक-दूसरे में एकाकार कभी भी नहीं होते, वह आत्मा के टंकोत्कीर्ण स्वभाव के कारण है! मिक्स्चर के रूप में होता है, कम्पाउन्ड के रूप नहीं। तेल और पानी को

चाहे जितना भी मिलाएँ फिर भी उन दोनों के परमाणु कभी भी एकाकार नहीं हो पाते। दोनों भिन्न-भिन्न ही रहते हैं-इनके जैसा ही आत्मा-अनात्मा के बारे में कहा जा सकता है! छहों तत्व मूल स्वरूप से टंकोत्कीर्ण स्वभाव के हैं! टंकोत्कीर्ण का यथार्थ अर्थ तो ज्ञानी ही कर सकते हैं! वीतरागों का यह ग़ज़ब का शब्द है!

अव्याबाध स्वरूप से अर्थात् आत्मा का ऐसा गुण है कि जिसके कारण वह कभी भी किसी जीव को किंचित् मात्र भी दु:ख नहीं पहुँचा सकता! उसी प्रकार से उसे खुद को भी कभी भी दु:ख नहीं हो सकता!!! खुद से सामनेवाले को दु:ख हो रहा है, वैसी थोड़ी-सी भी शंका पड़े, तो उसका प्रतिक्रमण करने की ज़रूरत है। दु:ख, पीड़ा 'माने हुए आत्मा' को होता है, मूल आत्मा को नहीं। मूल आत्मा अव्याबाध स्वरूपी है।

आत्मा अव्यय है, फिर भी भाजन के अनुसार उसका संकोच और विकास हो सके, वैसा है। आत्मा निरंजन निराकार है। फिर भी देहाकारी है, उसका खुद का स्वाभाविक आकार है।

जब तक खुद के निराकार परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो जाती तब तक जिस देह में परमात्मा प्रकट हो चुके हैं, ऐसे प्रत्यक्ष 'ज्ञानीपुरुष' की भजना करने से खुद का परमात्मापन प्रकट होता है।

आत्मा अमूर्त है और मूर्ति के अंदर है। ज्ञानी, जिनमें अमूर्त भगवान व्यक्त हो चुके हैं, उन्हें मूर्तामूर्त भगवान कहा जाता है।

आत्मा परम ज्योति स्वरूप है, आंतर-बाह्य सभी वस्तुओं को जानता है, वस्तु को वस्तु के रूप से और अवस्था को अवस्था के रूप से जानता है। आत्मा स्व-पर प्रकाशक अर्थात् खुद खुद को ही प्रकाशित करता है और अन्य तत्वों को भी जानता है।

आत्मा को सुगंध-दुर्गंध स्पर्श नहीं करती। जिस प्रकार प्रकाश को सुगंध या खाड़ी की गंध स्पर्श नहीं करती, वैसे!

अंतिम देह से आत्मा जब मोक्ष जाने के लिए मुक्त होता है, तब उसका प्रकाश पूरे ब्रह्मांड में व्याप्त हो जाता है। ज्ञानभाव से व्याप्त होता है, उस अपेक्षा से सर्वव्यापक कहा है।

सभी आत्मा स्वभाव से एक ही हैं, परन्तु अस्तित्व हर एक का स्वतंत्र है। आत्मा संसार की किसी भी चीज़ का कर्ता नहीं है। मात्र ज्ञानक्रिया और दर्शनक्रिया का कर्ता है, अन्य कहीं भी उसकी सक्रियता नहीं है। हाँ, आत्मा की उपस्थिति से दूसरे तत्वों में सक्रियता उत्पन्न हो जाती है।

ज्ञान + दर्शन अर्थात् चैतन्य। अनंतज्ञान, अनंतदर्शन आत्मा में होने से उसे चैतन्यघन कहा है।

अनंत प्रदेशी आत्मा के प्रत्येक प्रदेश में ज्ञायक शक्ति है। ज्ञेय को ज्ञाता मानने से आत्मा प्रदेश कर्म-मल से ढक जाते हैं। आत्मा अकर्ता है, संसार की क्रिया का कर्ता आत्मा नहीं है। खुद की स्वाभाविक ज्ञानक्रिया का, दर्शनक्रिया का कर्ता है- इसके अलावा उसकी सक्रियता कहीं भी नहीं है।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, इस तरह से मुख्य आठ कर्मरूपी आवरणों से आत्मप्रकाश ढका हुआ है। आत्मज्ञान होने के बाद वे आवरण टूटते जाते हैं, फलतः आनंद प्रकट होता जाता है। जीवमात्र आवरण सहित होता है। जिसके जितने प्रदेशों के आवरण खुले, उतना उसका प्रकाश बाहर आता है।

''खुद खुद की पूरी ब्रह्मांड को प्रकाशमान करने की जो स्वसंवेदन शक्ति है, उसे केवलज्ञान कहा जाता है।'' – **दादा भगवान**

अज्ञानी दुःख को वेदता है।

स्वरूपज्ञानी-आत्मा के अस्पष्ट वेदनवाले दुःख का ज्ञाता-दृष्टा रहने के प्रयत्न में रहता है। दुःख नहीं भोगता लेकिन बोझा लगता है उसे, और आत्मा के स्पष्ट वेदनवाले 'ज्ञानीपुरुष' दुःख को वेदते नहीं है, जानते हैं।

भोगता कौन है? अहंकार। आत्मा नहीं।

आत्मा के चार उपयोग हैं:

अशुद्ध, अशुभ, शुभ और शुद्ध उपयोग। शुद्ध उपयोगी को मोक्ष मिलता है। 'खुद शुद्धात्मा है' ऐसा निरंतर भान रहे, पूरा जगत् निर्दोष दिखे, सभी में शुद्धात्मा दिखे, वह शुद्ध उपयोग है। मन में, वाणी में और वर्तन में तन्मयाकार परिणाम नहीं रहे, उसे शुद्ध उपयोग कहते हैं। ज्ञानी का संपूर्ण शुद्ध उपयोग होता है। ज्ञानी को उपयोग में उपयोग रहता है।

"शुद्ध उपयोग– वह ज्ञान स्वरूप कहलाता है और उपयोग में उपयोग–वह विज्ञान स्वरूप कहलाता है।" – **दादा भगवान**

केवलज्ञान अर्थात् केवल आत्मप्रवर्तन। 'एब्सोल्यूट' ज्ञान का मतलब ही केवलज्ञान है। और सिर्फ वही आनंद दे सकता है। निरंतर निज परिणति, जहाँ *पुद्गल* परिणति है ही नहीं–वह केवलज्ञान है।

"निज परिणति–वह आत्मभावना है, 'मैं शुद्धात्मा हूँ'–वह आत्मभावना नहीं है।" – **दादा भगवान**

केवलज्ञान होने तक पिंड के ज्ञेय देखने हैं और केवलज्ञान होने के बाद ब्रह्मांड के ज्ञेय झलकते हैं।

"केवलज्ञान आकाश जैसा सूक्ष्म है, जब कि अग्नि स्थूल है। स्थूल सूक्ष्म को नहीं जला सकता। मारो, काटो, जलाओ तो भी खुद के केवलज्ञान स्वरूप को कोई भी असर हो सके ऐसा नहीं है।" – **दादा भगवान**

उपयोग में उपयोग बरते, वह केवलज्ञान है। खुद शुद्ध है, वह भी देखे; सामनेवाले को शुद्ध देखे, वह शुद्ध उपयोग कहलाता है और उस पर भी उपयोग रहे तो उसे उपयोग पर उपयोग कहा जाता है।

"केवलज्ञान स्वरूप कैसा दिखता है? पूरे देह में आकाश जितना जो भाग खुद का दिखे, आकाश ही दिखे अन्य कुछ भी नहीं दिखता। कोई मूर्त वस्तु उसमें नहीं होती।" – **दादा भगवान**

''इस जगत् में जो कुछ भी किया जाता है, वह जगत् को पुसाए या नहीं पुसाए फिर भी मैं कुछ भी नहीं करता हूँ, ऐसा सतत ख़्याल में रहना-वह केवलदर्शन है। ऐसी समझ रहना-वह केवलज्ञान है!''

- **दादा भगवान**

मन-वचन-काया की तमाम संगी क्रियाओं में शुद्ध चेतन बिल्कुल असंग ही है। - **दादा भगवान**

''मन-वचन-काया के जो तमाम लेपायमान भाव आते हैं, उनसे 'शुद्ध चेतन' सर्वथा निर्लेप ही है।'' - **दादा भगवान**

मन में जो भाव, विचार आते हैं-वे, वचन और काया-वे सभी अज्ञानदशा के स्पंदन हैं, ज्ञानदशा के कोई स्पदंन नहीं होते।

स्वरूपज्ञान के बाद मन के जो भाव उठते हैं, वे लेपायमान करने जाते हैं, वहाँ पर यदि जागृति रहे कि यह 'मेरा स्वरूप नहीं है, इनसे मैं मुक्त ही हूँ' तभी निर्लेप रहा जा सकता है।

''मन-वचन-काया की आदतें और उनके स्वभाव को 'शुद्ध चेतन' जानता है और खुद के स्व-स्वभाव को भी वह जानता है। क्योंकि वह स्व-पर प्रकाशक है।'' - **दादा भगवान**

मन की, वाणी की, काया की आदतों को खुद जानता है और आदतों के स्वभाव को भी खुद जानता है। आदतों का स्वभाव अर्थात् यह आदत मज़बूत है, यह कमज़ोर है, यह गाढ़ है, यह गहरी है, यह छिछली है, ऐसा सबकुछ ही वह खुद जानता है। आदतें मृत्यु पर्यंत नहीं जातीं, लेकिन आदतों का स्वभाव आत्मज्ञान के बाद धीरे-धीरे चला जाता है।

''स्थूल संयोग, सूक्ष्म संयोग, वाणी के संयोग पर हैं और पराधीन हैं, और शुद्ध चेतन उनका ज्ञाता-दृष्टा मात्र है।'' - **दादा भगवान**

अंदर के, मन के, बुद्धि के, चित्त के, अहंकार के संयोग, वे सभी सूक्ष्म संयोग हैं। वाणी के संयोग सूक्ष्म-स्थूल हैं और व्यवहार के संयोग स्थूल हैं। ये सभी संयोग पर हैं और पराधीन हैं।

‘‘प्रकृति का एक भी गुण ‘शुद्ध चेतन’ में नहीं है और ‘शुद्ध चेतन’ का एक भी गुण प्रकृति में नहीं है। गुणों को लेकर वे दोनों सर्वथा भिन्न ही हैं।’’ – **दादा भगवान**

पहले अज्ञान से मुक्ति और बाद में अज्ञान से खड़े होनेवाले ‘इफेक्ट्स’ से मुक्ति प्राप्त करनी है।

आत्मद्रव्य नहीं बदलता परन्तु ‘व्यवहार आत्मा’ को संसारी भाव से जो द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव स्पर्श किए हुए हैं, वे सभी एक–दूसरे के आधार पर बदलते रहते हैं।

राग–द्वेष, वे ‘रोंग बिलीफ़’ से उत्पन्न होते हैं। वह आत्मा का स्वभाव या गुण नहीं है।

‘रिलेटिव’ में आत्मा और ‘रियल’ में परमात्मा। ‘रिलेटिव’ की भजना करे तो ‘खुद’ विनाशी है और ‘रियल’ की भजना करे ‘वह’ ‘परमात्मा’ है!

जीवमात्र में चेतन एक स्वभावी ही है। परन्तु आवरण में फर्क है।

अविनाशी की चिंतवना से अंतर्मुखी हुआ जाता है और विनाशी की चिंतवना से बहिर्मुखी हुआ जाता है।

मोक्ष जाने का सरल रास्ता अर्थात् मोक्ष के राहबर के पीछे–पीछे चलते जाना, वह।

जब तक मन–वचन–काया की ममता है, तब तक समता कहाँ से आएगी?

बाह्य किसी भी निमित्त से, पंचेन्द्रियों से, मान–तान, लक्ष्मी, विषयों से सुख नहीं हो, फिर भी अंदर का जो सुख बरते, वह आत्मा का सुख है। जब तक विषयों का सेवन है तब तक आत्मा का स्पष्ट सुख वेदन में नहीं आ सकता।

जिस तरह लिफ्ट में रहनेवाला व्यक्ति और लिफ्ट दोनों भिन्न हैं। उसी प्रकार आत्मा और देह बिल्कुल भिन्न ही हैं। कार्य तो सारा लिफ्ट कर लेती है, और खुद को तो बटन ही दबाना होता है। उसी प्रकार जिसे भौतिक की वांछना है उसे अहंकार का बटन दबाना चाहिए और जिसे केवल मोक्ष की ही इच्छा है, उसे आत्मा भाव से बटन दबाना है।

जो स्वसत्ता में आ जाए, पुरुष बनकर पुरुषार्थ में आए-वह भगवान। जो प्रकृति की सत्ता में खेलता है-वह जीव है।

आत्मा ने दैहिक रूप धारण किया ही नहीं है। सिर्फ 'बिलीफ़' ही उल्टी बैठ गई है।

मोक्ष न तो देह का होता है, न ही आत्मा का होता है। मोक्ष तो होता है, अहंकार का-अहंकार की दृष्टि बदलने से 'जो नहीं है उसे मैं हूँ' मान बैठता है।

'मैं हूँ' कहता है, इस वजह से खुद आत्मा से जुदा पड़ जाता है। वह अज्ञान जाएगा तो अभेदस्वरूप हो जाएगा। खुद की जितनी भूले दिखेंगी, उतना अहंकार जाएगा।

जीवमात्र में सूझ होती ही है। सूझ-वह कुदरती देन है। जब आवरण आता है तब सूझ नहीं पड़ती, आवरण हटते ही सूझ पड़ जाती है। एकाग्रता हुई कि झट से सूझ पड़ जाती है। सूझ को जगत् पुरुषार्थ मानता है, भ्रांति से! हर एक की सूझ पर से पता चल जाता है कि यह समसरण मार्ग के कितने मील पर है! मनुष्य में सिर्फ सूझ ही एक वस्तु 'डिस्चार्ज' नहीं है, बाकी सबकुछ ही 'डिस्चार्ज' है। सूझ को दर्शन कहते हैं। समसरण मार्ग में सूझ बढ़ते-बढ़ते अंत में 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसी सूझ पड़ी कि दर्शन निरावरण हो जाता है।

अहंकार के कारण सूझ का लाभ नहीं उठा पाते, वर्ना सूझ तो हर एक को पड़ती ही रहती है। जैसे-जैसे अहंकार कम होता जाता है, वैसे-वैसे सूझ बढ़ती जाती है।

आत्मज्ञान के बाद सर्व प्रथम तो सब तरफ से उदासीनता और फिर वीतरागता प्राप्त होती है। उदासीनता तो वीतरागता की जननी है। उदासीनता अर्थात् रुचि भी नहीं और अरुचि भी नहीं। वीतरागता अर्थात् राग-द्वेष से परे।

"प्रतिष्ठित आत्मा-वह जगत् का अधिष्ठान है।" - **दादा भगवान**

'मैं चंदूलाल हूँ, यह मेरी देह है, मन मेरा है' ऐसी प्रतिष्ठा करने से नया प्रतिष्ठित आत्मा उत्पन्न होता है। इसका मूल कारण अज्ञान है। प्रतिष्ठित आत्मा है तो *पुद्गल,* लेकिन चेतनभाव को प्राप्त किए हुए है, मिश्रचेतन है। क्रोध-मान-माया-लोभ की प्रतिष्ठा प्रतिष्ठित आत्मा में हो चुकी है। वह फल देती रहती है।

जो शुभाशुभ भाव करता है, वह व्यवहार आत्मा कहलाता है। स्वरूपज्ञान से पहले तो प्रतिष्ठित आत्मा कहा ही नहीं जा सकता। स्वरूपज्ञान के बाद जो बाकी बचता है, वह प्रतिष्ठित आत्मा है।

मूल आत्मा में भावाभाव नहीं होते। उसकी उपस्थिति से भावाभाव उत्पन्न होते हैं।

जो अचल आत्मा है, वही 'दादा भगवान' हैं। जो चंचल है, वह सारा मिकेनिकल भाग है। जो ज्ञान के वाक्य बोलें, वे व्यवहार में ज्ञानी और जो भीतर प्रकट हुए हैं, वे 'दादा भगवान' हैं। 'ज्ञानीपरुष' खुद भी भीतरवाले 'दादा भगवान' को नमस्कार करते हैं। अमुक समय पर 'दादा भगवान' के साथ अभेद रहते हैं, तन्मय रहते हैं और वाणी बोलते समय भीतर भगवान जुदा होते हैं, और खुद जुदा, अद्भुत दशा है ज्ञानीपुरुष की!

खंड : २

जगत् का कोई स्वतंत्र कर्ता नहीं है। कोई बाप भी *ऊपरी* नहीं है, भगवान भी नहीं। जो शक्ति जगत् को चलाती है, वह 'मिकेनिकल एडजस्टमेन्ट' है, कम्प्युटर जैसा है और 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स' से हैं। लेकिन अज्ञानता से ऐसा माना जाता है कि खुद चलाता है या भगवान चलाते हैं। स्वरूप का भान होने के बाद में फिर खुद इन सभी से मुक्त हो जाता है। मोक्ष के पंथ पर प्रयाण करते-करते जीवन जीने की कला की कुशलता भी अनिवार्य हो जाती है। सिर्फ 'अक्रम विज्ञान' ही ऐसा है कि जहाँ पर संसार की सभी ज़िम्मेदारियाँ संपूर्ण, आदर्शमय रूप से अदा करते-करते सहजता से मोक्षमार्ग पूरा किया जा सकता है। अक्रममार्ग में त्याग का नहीं लेकिन 'समभाव से *निकाल*' का जीवनसूत्र अपनाना होता है। और इसके लिए तमाम प्रकार की बोधकला और ज्ञानकला अक्रमविज्ञानी श्री 'दादा भगवान' के श्रीमुख से निकली है। संसार के क्लेशों का विलय करानेवाली यह वाणी, आत्मजागृति को प्रकट करनेवाली वाणी जितनी ही क्रियाकारी सिद्ध होती है। क्योंकि अंत में तो व्यवहार ही शुद्ध करना है न! संसार में पति-पत्नी के बीच में, माँ-बाप बच्चों के बीच में, गुरु-शिष्य के बीच में, अड़ोसी-पड़ोसी, नौकर-सेठ, व्यापारी-ग्राहक के बीच में होनेवाले तमाम प्रकार के घर्षणों का अंत लाने की चाबी पूज्यश्री हँसते-हँसाते कह देते हैं, इस अद्भुत अनुभवपूर्वक के व्यवहार-दर्शन का लाभ उठाकर धरती पर स्वर्ग उतारा जा सके, ऐसा है!

जीवन जीने का हेतु क्या है? नाम करना है? नाम तो जब अर्थी निकले, उसी दिन वापस ले लिया जाता है। साथ में क्या जाएगा? मोक्ष के लिए धर्म बाद में करना, लेकिन पहले जीवन जीने की कला जानना ज़रूरी है। इन्जन चले लेकिन कुछ उत्पादन नहीं करे, उसका क्या करना? मोक्षप्राप्ति-वह तो मनुष्यपन का सार है! वकील बने, डॉक्टर बने उससे क्या जीवन जीने की कला आ गई? उसके कलाधार मिल जाए तो वह कला सीखी जा सकती है। जीवन जीने की कला सीख जाए तो जीवन सरलता से चलेगा। जिसे जीवन जीने की कला आ गई, उसे सारा व्यवहार, धर्म आ गया। 'अक्रम विज्ञान' व्यवहार धर्म और निश्चय धर्म दोनों ही

पूर्णरूप से देता है।

वास्तव में दु:ख किसे कहते हैं? जीवन की आधारभूत ज़रूरतें-रोटी, कपड़े, मकान और पत्नी इतना नहीं मिले, फिर भी उसे दु:ख नहीं कहा जाता, अड़चन कहा जाता है। वास्तव में जो दु:ख है, वह अज्ञानता का ही है।

अपने पास कितनी संपत्ति है? करोड़ रुपये खर्च करने से भी ऐसी आँखें प्राप्त की जा सकती हैं? तब फिर दांत, नाक, हाथ, पैर, इन सबकी क़िमत कितनी अधिक होगी!!!

ज्ञानी ग़ैरज़रूरी चीज़ों में कभी भी नहीं उलझते। उनके पास से कोई घड़ी या रेडियो की कंपनी ने लाभ नहीं उठाया। ग़ैरज़रूरी चीज़ को खरीदना और ज़रूरत की चीज़ में कमी करना, ऐसी लोगों की दशा हो गई है! इस दुनिया में मुफ्त चीज़ ही सबसे महंगी पड़ती है! मुफ्त की आदत पड़ने के बाद यदि वह नहीं मिले तो कितनी परेशानी हो जाए?!

जो सुख की दुकान खोलता है उसे सुख ही मिलता है, और जो दु:ख की खोलता है उसे दु:ख ही मिलता है। 'ज्ञानी' की दुकान की तो बात ही क्या करनी?! सामनेवाला गालियाँ दे, फिर भी उसे आशीर्वाद देते हैं! सप्ताह में एक दिन भी यदि किसीको दु:ख नहीं देने में और किसीका दिया हुआ दु:ख स्वीकार नहीं करने में बीते, तब भी बहुत प्रगति की शुरूआत होगी। 'इस जगत् में किसी भी जीव को किंचित् मात्र भी मुझसे दु:ख नहीं हो, नहीं हो, नहीं हो।' यह भावना रोज़ होने लगे तो वही सबसे बड़ी कमाई है।

संसार यानी आमने-सामने हिसाब चुकाने का स्थल। इसमें कहीं भी किसीके साथ बैर नहीं बंधे, उतना ही देख लेना है। 'समभाव से *निकाल*' करना वही सबसे बड़ी चाबी है, निर्बैर रूप से निकल जाने के लिए!

थाली में जो आया, वह अपने ही 'व्यवस्थित' के नियम के आधार पर हमें आ मिलता है। इस तरह से जो सहज रहे, उसे कोई परेशानी नहीं होती।

समुद्र में इतने सारे जीव हैं, फिर भी कोई शिकायत करता है कि मुझे यह दुःख है? और सिर्फ ये मनुष्य ही रात-दिन 'मुझे यह दुःख है, और वह दुःख है' की शिकायत करते रहते हैं! किसी पक्षी का अस्पताल देखा है? किसी जानवर को नींद की गोली खानी पड़ती है? और सिर्फ इन मनुष्यों की ही नींद हराम हो गई है कि नींद के लिए गोलियाँ खानी पड़ती हैं!

मनुष्य अवतार मोक्ष प्राप्त करने के लिए ही है और वह यदि नहीं मिले तो यह मन-वचन-काया का उपयोग औरों के लिए करने का है, 'योग-उपयोग परोपकाराय' जिसका जीवन परोपकार में बीता, उसे कोई कमी नहीं पड़ती। खुद का सुख जो दूसरों को दे देता है, उसका तो कुदरत संभाल लेती है, ऐसा नियम है।

तमाम दुःखों का मूल कारण अज्ञानता है। स्वयं नामरूप बन बैठा है, इसलिए दुःख की परंपरा सर्जित हुई है। जो खुद आत्मरूप है उसे कोई दुःख नहीं है। वास्तव में दुःख है या नहीं वह यदि बुद्धि से सोचे, तो भी समझ में आए ऐसा है कि दुःख जैसा कुछ है ही नहीं।

दूसरों का सुख देखकर, खुद के पास वह नहीं है-ऐसा करके नया दुःख मोल लेता है, उसके जैसी नासमझी और कोई नहीं है। सचमुच में दुःख तो यदि भोजन नहीं मिले, पानी नहीं मिले, संडास-पेशाब करने को नहीं मिले, उसे कहते हैं। जीवन जीने की चाबी ही जैसे खो नहीं गई हो, उस तरह से जीवन जीते हैं!

भारत में तो 'फेमिली ऑर्गेनाइज़ेशन', वह एक बड़ा ज्ञान है। घर में, बाहर सभी जगह क्लेश किसलिए होते हैं, यह जानना ज़रूरी है। बच्चों को किस बारे में 'ऐन्करेजमेन्ट' देना चाहिए और किसमें नहीं, माँ-बाप को यह जानना ज़रूरी नहीं है? बच्चा बाप की मूँछ खींचे, उससे बाप खुश होकर सभी के सामने बच्चे की तारीफ़ करे, तो क्या इसे योग्य कहा जाएगा? माँ-बाप बनने से पहले, माँ-बाप बनने का योग्यता पत्र प्राप्त करना ज़रूरी होना चाहिए। शादी करने से पहले पति या पत्नी बनने का सर्टीफिकेट प्राप्त करना ज़रूरी होना चाहिए, क्योंकि माँ-बाप बनना बहुत बड़ी

'रिस्पोन्सिबिलिटी' है, प्रधानमंत्री से भी अधिक!

इस काल में बच्चों को छेड़ने जाएँ तो विरोध करें, ऐसे हैं।

शिक्षक और माँ-बाप मॉडर्न ज़माने के बच्चों की मनःस्थिति को पहचानकर एडजस्ट होकर चलें, फिर तो बच्चे विरोध करेगें ही नहीं! बाकी खुद सुधरेंगे तभी तो दूसरे को सुधार सकेंगे।

घर में, बाहर सभी जगह व्यवहार सभी करना है, कहना-करना सभी कुछ, लेकिन वह कषाय रहित होना चाहिए। और यही कला 'ज्ञानीपुरुष' से सीखने जैसी है!

सुधारने के लिए किच-किच करने से तो बल्कि सब बिगड़ता है, उसके बजाय किच-किच करना ही बंद हो जाए, तभी से सामनेवाला व्यक्ति सुधरने लगेगा।

किसीके साथ बखेड़ा हो जाए, तो फिर उसके मन में गाँठ पड़ जाती है। तब 'मौन' पकड़कर उसे विश्वास में लेना, वही श्रेष्ठ उपाय है। बच्चों को सुधारना हो तो घर में ६-१२ महीनों तक मौन ले लेना चाहिए। बच्चे पूछें, उतना ही उसका जवाब देना चाहिए। और अंदर उनके खूब-खूब प्रतिक्रमण करने चाहिए। सुधारने के बजाय अच्छी भावना करते रहना चाहिए। बाकी 'ज्ञानीपुरुष' के अलावा अन्य कोई किसीको सुधार नहीं सकता।

जो बिन माँगी सलाह देता है, वह मूर्ख माना जाता है। कोई माँगे तभी सलाह देनी चाहिए।

ये सभी 'रिलेटिव' संबंध हैं। उन्हें 'रियल' मानोगे तो मार खाने की बारी आएगी। बच्चों को तरीक़े से प्यार करना चाहिए, उन्हें छाती से दबाते नहीं रहना चाहिए! उससे तो बच्चा घबराकर काट लेगा! पैसे नल में से पानी की तरह खर्च करने हैं, बच्चों को ऐसा नहीं लगना चाहिए।

बच्चों का अहंकार जागृत होने के बाद माँ-बाप उसे कुछ भी नहीं कह सकते। फिर तो ठोकर खाकर जो भी सीखे वही ठीक। जहाँ सभी कुछ करना अनिवार्य है, ऐसे संसार में जिसे खुद का माना, उसीके

प्रतिक्रमण करके छूट जाने जैसा है। जहाँ पर राग है, वहाँ पर द्वेष होगा ही।

घर में बच्चों के साथ डीलिंग करते समय 'ग्लास विथ केयर' का लेबल पढ़ना चाहिए। उन्हें हथोड़े मारते रहेंगे तो क्या होगा? प्रेम से ही सामनेवाला सुधरता है। सामनेवाला चाहे जितना उल्टा करे फिर भी उसका उल्टा नहीं दिखे, वही सच्चा प्रेम है!

माँ-बाप अर्थात् बालकों के ट्रस्टी।

घर को बग़ीचे के रूप में देखना है। खेत के रूप में नहीं। जिस तरह बग़ीचे में कोई मोगरा, कोई गुलाब या कोई धतूरा भी होता है, वैसे ही घर में अलग-अलग प्राकृत फूलोंवाले होते हैं। बाप मोगरा होता है तो वह ऐसा आग्रह रखता है कि घर के सभी लोग मोगरे जैसे ही बनें, तो कैसे चलेगा? वह तो फिर खेत बन गया! बग़ीचे का मज़ा ही नहीं आएगा! गार्डनर बनना है।

जिसमें मन-वचन-काया की एकता हो, वही सामनेवाले को सुधार सकता है।

एक आँख में प्रेम और दूसरे में सख़्ती। इस तरह के व्यवहार से व्यवहार आदर्श रहेगा।

बच्चों को सुधारने के लिए उनके साथ मित्रता करनी चाहिए। बच्चे प्रेम ढूँढते हैं। वे प्रेम से ही सुधरते हैं। प्रेम से तो पूरा जगत् वश हो जाता है।

बालकों को हररोज़ सूर्यपूजा करना और प्रार्थना करना सिखाना चाहिए कि, 'मुझे तथा जगत् को सद्बुद्धि दो, जगत् का कल्याण करो।'

पति-पत्नी को एक-दूसरे को आमने-सामने समाधान देने के प्रयत्न हों तो मतभेद नहीं होंगे। मन में तय करना कि सामनेवाले को समाधान देना है और 'समभाव से *निकाल'* करना है, बाद में फिर हुआ सो न्याय।

'टकराव टालना' जिसके लिए हर एक जगह पर यह जीवनसूत्र बन जाएगा, उसका संसार पार हो जाएगा। सहन नहीं करना है, सहन करने

से स्प्रिंग की तरह वापस उछलेगा। सहन नहीं करना है, 'सोल्यूशन' लाना है।

जहाँ अपमान हो, वहाँ पर न्याय ढूँढने जाए तो मूर्खता होगी, वहाँ तो 'तप', वही एक उपाय है। संपूर्ण स्वतंत्र जगत् में कि जहाँ पर किसीमें किसीकी दख़ल नहीं है, वहाँ पर किसीको दोष देने का रहा ही कहाँ?

टकराव में मौन हितकारी। बाहर मौन और अंदर घमासान, वे दोनों साथ में होंगे, तो काम का नहीं है। पहले मन का मौन होना चाहिए।

'एडजस्ट एवरीव्हेर' इतनी ही आज्ञा यदि 'ज्ञानी' की पाली तो उसका हल आ जाएगा!

जो पत्नी पर अपना ज़ोर चलाने गए, वे नाचलणीया (खोटा सिक्का) बन गए। उसके बजाय पहले से ही खोटा सिक्का बन गए होते तो पूजा में तो बैठ पाते?!

सामनेवाले को समझाने की छूट है, डाँटने की नहीं।

मानव-स्वभाव अपने नीचेवालों को कुचलता रहता है और *ऊपरी* को साहब-साहब करता है। 'अन्डरहेन्ट' का रक्षण करना, वह तो ध्येय होना चाहिए।

दीवार से सिर टकरा जाए, वहाँ पर आपको क्या करना चाहिए? 'भूल किसकी है?' उसका पता लगाना हो तो देख लेना की भुगत कौन रहा है? 'भुगते उसकी भूल।'

घर में एक व्यक्ति के साथ एकता रही, तब भी बहुत हो गया! एकता अर्थात् कभी भी उसके साथ मतभेद नहीं पड़े।

जहाँ पर मतभेद हैं, वहाँ पर चिंता, दुःख और झगड़े है। जहाँ मनभेद है, वहाँ पर डायवोर्स। और तनभेद है वहाँ पर अर्थी।

बच्चों के सामने माँ-बाप को कभी भी झगड़ा नहीं करना चाहिए। मियांभाई बीबी को बहुत संभालकर रखते हैं। बाहर झगड़ आते हैं लेकिन घर में प्रेम से रहते हैं। घर में ही झगड़े करें तो अच्छा-अच्छा भोजन कहाँ

से मिलेगा? इसीलिए वे तो बीबी को झूला झुलाते हैं। 'पत्नी चढ़ बैठेगी' इस डर से पति पत्नी को दबाने जाता है और क्लेश करता है! ऐसे तो कहीं पत्नी चढ़ बैठती होगी?! स्त्रियों को क्या मूछें आ जाएँगी? भले ही कितनी भी कोशिश करें, फिर भी? पत्नी की माँग पूरी नहीं कर सके और पत्नी क्लेश करने जाए तब भी, 'यार, मेरी हालत मैं जानता हूँ, तू क्या जाने', करके पत्नी को पटा लेता है! और लोग तो 'तू मेरे सामने क्यों बोली?' करके विस्फोट कर देते हैं! किसी भी तरह से ऐसा कर देना कि विस्फोट नहीं हो।

आपमें कलुषित भाव नहीं रहे तो सामनेवाले का कलुषित भाव चला जाएगा! आप शांत हैं तो सामनेवाला भी शांत है! जहाँ क्लेश है वहाँ भगवान का वास नहीं है और लक्ष्मी भी वहाँ पर नहीं जाती, आज तो संस्कारी घरों में भी रोज़ सुबह नाश्ते में क्लेश होता है(!) जहाँ पर क्लेश है, वहाँ धर्म ही नहीं है! धर्म की शुरूआत क्लेश रहित जीवन से होती है।

वाइफ के साथ अविभक्त वाणी होनी चाहिए। 'मेरा-तेरा नहीं होना चाहिए।' 'अपना' होना चाहिए।

घर के लोग उल्टा करें, फिर भी खुद सीधा करे, वह समकित की निशानी है।

शादी करने में हर्ज नहीं है। संसार तो 'टेस्ट एक्ज़ामिनेशन' है। उसमें 'टेस्टेड' हो जाएगा तभी मोक्ष में जा पाएगा। भरत चक्रवर्ती की तो १३०० रानियाँ थीं, फिर भी वे मोक्ष में गए!

मतभेद होने का कारण घोर अज्ञानता है!

जब पुरुष में प्रभुत्व नहीं होता, तभी स्त्री पुरुष की नहीं सुनती। पहले पुरुष का प्रभाव पड़ना चाहिए। स्त्री की कितनी ही भूलों को वह समझदारी से चला ले तो उसका स्त्री पर प्रभाव पड़ेगा। यह तो दाल में नमक कम हो तो भी कलह करता है फिर प्रभाव कहाँ से रहेगा?!

स्त्रीप्रकृति को पूरी तरह से पहचानकर उसके बाद ही उसके साथ

व्यवहार करना चाहिए। मान भंग हो जाए तो स्त्रियों उसे मरते दम तक भी नहीं भूलतीं और रीस रखती हैं। और साथ ही स्त्रियाँ देवी भी हैं। बगैर स्त्रीवाले पुरुष का संसार सुशोभित नहीं होता।

स्त्री-पुरुषों को एक दूसरे के डिपार्टमेन्ट में ज़रा-सा भी हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। 'घर में किस चीज़ की कमी है, क्यों अधिक खर्च हो गया' पुरुष को स्त्री से ऐसा नहीं पूछना चाहिए। और स्त्री को भी पुरुष से 'व्यापार में क्यों घाटा हुआ', ऐसा नहीं पूछना चाहिए। और एक-दूसरे की भूलों को बड़ा मन रखकर निभा लेना चाहिए।

स्त्री को कभी भी मारना नहीं चाहिए, अनंत जन्मों तक भटकने का कारण है वह! अपने आश्रय में आए हुए को कैसे कुचल सकते हैं?!

घर के लोगों को थोड़ा-सा भी दुःख नहीं दे, वही सचमुच में समझदार है।

शादी करने के लिए योग्य पात्र को पसंद करने में आजकल के लड़के-लड़कियाँ जो चूंथामण(बारबार पसंद नापसंद करते हैं, मीनमेख निकालते हैं) करते हैं, उसे क्या शादी करने का तरीक़ा कहेंगे? वास्तव में तो लड़का और लड़की को देखते ही आकर्षण हो जाए तो अवश्य ही पक्का ऋणानुबंध है। और आकर्षण नहीं हो तो बंद रखना। उसमें ऊँची, नीची, मोटी, पतली, गोरी, काली का स्थान ही कहाँ रहता है?

पूज्य दादाश्री कॉमनसेन्स की परिभाषा देते हैं कि, 'एवरीव्हेर एप्लीकेबल, थ्योरिटिकली एज़ वेल एज़ प्रेक्टिकली!'

ताला भले ही कितना भी ज़ंग लगा हुआ हो फिर भी चाबी डालते ही खुल जाए उसका नाम 'कॉमनसेन्स'। 'कॉमनसेन्स'वाले कहीं भी, घर में या बाहर मतभेद नहीं पड़ने देते। ऐसा तो शायद ही कोई होगा।

पूरी ज़िन्दगी पत्नी को सीधी करने में बीत गई और जब मरने तक सीधी हुई, तब अगले जन्म में दूसरे के हिस्से में चली जाती है! कर्म अलग हैं इसलिए बिछड़ ही जाएँगे न! यह क्या हमेशा का साथ है?! एक जन्म जितना ही है न! इसलिए जो मिला उसके साथ 'एडजस्ट' कर लेना। जितने

'एडजस्टमेन्ट' लिए जाएँगे उतनी उसकी शक्ति विकसित होगी। सामनेवाले से सौ भूलें हो जाएँ, फिर भी वहाँ न्याय या नियम नहीं देखना है। किस तरह से समाधान हो, वही देखना है। कुदरत के न्याय से बाहर तो कुछ भी नहीं होनेवाला!

हर एक के विचारों की स्पीड अलग-अलग होती है। कम 'रिवोल्यूशन'वाले को अधिकवाले की बात नहीं पहुँच पाती। इसलिए अधिक रिवोल्यूशनवाले को बीच में 'काउन्टरपुली' डालना सीख लेना चाहिए। फिर टकराव नहीं होगा।

किच-किच करने से दोनों का बिगड़ता है! सम्यक् तरीक़े से कहना नहीं आए तो मौन बेहतर है! टोकना इस तरह से चाहिए की जिससे सामनेवाले को दुःख नहीं हो। नहीं तो टोकना बंद कर देना चाहिए। टकराव की जगह पर, टोकने के बदले प्रतिक्रमण करना, वह उत्तम उपाय है।

अबोला (बोलचाल बंद करना) से बात का सोल्यूशन नहीं हो पाता, लेकिन समभाव से *निकाल* करने से ही सोल्यूशन हो पाता है।

सरल के साथ में सरल तो हर कोई रहता है, लेकिन संपूर्ण असरल के सामने सरल हो जाए तो जग जीता जा सकता है!

कोई लाल झंडी दिखाए तो उसका दोष नहीं देखकर, मेरी क्या भूल हुई है, उसकी खोज में लग जाए तो नया दोष बँधना रुक जाएगा और खुद का पुराना दोष चला जाएगा। वास्तव में खुद अपनी ही भूल के कारण सामनेवाला लाल झंडी दिखाता है।

घर में झगड़ा करना ही नहीं चाहिए और सामनेवाला चाहे कितना भी झगड़ा करता हुआ आए, लेकिन हमें ऐसा 'झगड़ाप्रूफ' बन जाना चाहिए कि हमें कुछ भी झंझट ही नहीं हो। जिसके साथ झगड़ा हो जाए और यदि दो घंटे बाद वापस उसके साथ बोले बगैर चले नहीं, तो वहाँ पर झगड़ने का क्या अर्थ है?

आमने-सामने शंका करने से विस्फोट होता है!

'मेरी-मेरी' कहकर ममता से लपेटा है, उसे 'नहीं है मेरी, नहीं है

मेरी' कहता रहे तो लपेट खुलेंगी!

संसार में सभी के साथ 'लटकती सलाम' करके मोक्ष में चले जाने जैसा है। 'ज्ञानी' सभी व्यवहार करते हैं, लेकिन आत्मा में रहकर।

अपने यहाँ की भारतीय नारी के संस्कार तो देखो! पूरी ज़िन्दगी बूढ़ा बुढ़िया से झगड़ता हैं, मारता है और अस्सी वर्ष की उम्र में बूढ़ा चल बसे तब बुढ़िया तेरही का दान करती है और 'तुम्हारे चाचा को यह भाता था, यह भाता था' करके चारपाई पर रखती है! और 'हर जन्म में ऐसे ही पति मिलें' कहती है!!

जो संसार निभाएँ, वे आदर्श पति-पत्नी! ये तो विषयासक्ति से संसार चलाते हैं। प्रेम से नहीं। जहाँ पर प्रेम हो वहाँ सामनेवाला चाहे कुछ भी करे, गालियाँ दे, मारे तब भी प्रेम नहीं जाता। प्रेम में समर्पण होता है, बलिदान होता है, *पोतापणुं* (मैं हूँ और मेरा है-ऐसा आरोपण, मेरापन) नहीं होता।

पति-पत्नी के बीच में सुमेल रखने के लिए मन में सैंकड़ों प्रतिक्रमण रोज़ करते जाओ तो यह भव और परभव दोनों ही सुधर जाएँगे।

काम धंधे की कमाई को खर्च करनेवाले कितने हैं? और काम की चिंता, उपाधि करनेवाले कितने हैं? खुद अकेला!!! सुख में सभी हिस्सेदार और दु:ख के.......?

जिस धंधे में नुकसान हुआ, वही धंधा कमाकर देता है।

क़र्ज़दार को एक ही भाव रखना चाहिए की जल्दी से जल्दी से रुपये दूध से धोकर चुका देने हैं! उससे ज़रूर चुकाए जाएँगे। जिसकी दानत ख़राब हो उसका बिगड़ता है।

'व्यवस्थित' ग्राहक को भेजता है। ग्राहक की चिंता नहीं करनी चाहिए, वैसे ही अधिक कमाई को लालच में जल्दी दुकान खोलने से कुछ फ़ायदा हो जाएगा, ऐसा नहीं है। ग्राहक का इन्तज़ार करना, अंदर चिढ़ना, किसीसे छीन लेने का भाव रखना, वह सब आर्तध्यान और रौद्रध्यान कहलाता है।

प्रामाणिकता से एक प्रकार की मुश्किल आती है तो अप्रामाणिकता से दो प्रकार की आती है। प्रामाणिकता की मुश्किलों से छूटा जा सकता है, परन्तु अप्रामाणिकता की मुश्किलों से छूटना मुश्किल है। प्रामाणिक तो बहुत बड़ा धर्मिष्ठ कहलाता है।

व्यापार में मन बिगड़ेंगे तो भी उतना ही फायदा है और मन साफ रखेगा तो भी उतना ही फायदा मिलेगा, ऐसा है।

''व्यपार में धर्म रखना, नहीं तो अधर्म घुस जाएगा।''

''व्यापार में धर्म होना चाहिए, लेकिन धर्म में व्यापार नहीं होना चाहिए।''

''नोबल किफायत करो।'' – **दादा भगवान**

घर में किफायत ऐसी करनी चाहिए कि बाहर ख़राब नहीं दिखे।

उदार किफायत होनी चाहिए। रसोई में तो किफायत करनी ही नहीं चाहिए, बाकी सभी जगह कर सकते हैं!

हर एक जीव कुदरत का मेहमान है। मेहमान को कुछ चिंता-उपाधि करनी होती है? जहाँ जन्म से पहले ही डॉक्टर, दाई और दूध की व्यवस्था हो जाती है, वहाँ पर किसलिए हाय-हाय करनी? मेहमान को मात्र मेहमान जैसा विनय रखना चाहिए। भोजन में जो मिले, जैसा मिले, जब मिले, उसमें कमी निकाले बिना खा लेना चाहिए। सोने को कहे, उठने को कहे उसके अनुसार रहना चाहिए।

शुभमार्ग पर जाना हो या अशुभमार्ग पर, उन दोनों को ही कुदरत तो कहती है, 'आइ विल हेल्प यू!'

जहाँ पर सिन्सीयारिटी और मोरेलिटी होती है, वहाँ पर तमाम धर्मों का सार आ जाता है। मोरालिटी अर्थात् खुद के हक़ का और आसानी से मिल जाए वह सभी भोगने की छूट है। जो परायों के प्रति सिन्सियर रहा वह खुद अपने आप के प्रति सिन्सियर रह पाएगा। 'ज्ञानीपुरुष' का *राजीपा* और सिन्सियारिटी, बस इतना ही हो तो उसका काम निकल जाएगा।

पूरे जगत् के प्रति अन्सिन्सियर, परन्तु ज्ञानी प्रति सिन्सियर रहा तब भी वह मुक्त हो जाएगा।

व्यवहार आदर्श हो जाएगा, तभी मोक्ष में जाया जा सकेगा। आदर्श व्यवहार अर्थात् किसी भी जीव को किंचित् मात्र भी दुख नहीं हो। ज्ञानी का व्यवहार आदर्श होता है। सद्व्यवहार अहंकार सहित होता है। शुद्ध व्यवहार अहंकार रहित होता है। गच्छमत संप्रदाय, शुद्ध व्यवहार में नहीं होते। शुद्ध व्यवहार से ही मोक्ष है। 'ज्ञानी' के पास से बात को सही, समझपूर्वक समझकर 'स्वरूप ज्ञान' प्राप्त करके व्यवहार शुद्ध करके संसार जंजाल में से छूट जाने जैसा है।

वीतरागधर्म ही सर्व दुःखों से छुड़वाता है।

अनुक्रमणिका
खंड-1
आत्म विज्ञान

[१] 'मैं' कौन हूँ?

[२] अज्ञाशक्ति : प्रज्ञाशक्ति

[३] पुद्‌गल, तत्व के रूप में

[४] स्वसत्ता-परसत्ता

[५] स्वपरिणाम-परपरिणाम

[६] आत्मा, तत्वस्वरूपी

[७] आत्मा के बारे में प्रश्नानली

[८] सूझ, उदासीनता

[९] प्रतिष्ठित आत्मा:शुद्धात्मा

[१०] जगसंचालक की हकीकत

खंड-2

व्यवहार ज्ञान

[१] जीवन जीने की कला

[२] योग-उपयोग परोपकाराय

३] दुःख वास्तव में है?

[४] फैमिलि आर्गेनाइज़ेशन

[५] समझ से सोहे गृहसंसार

[६] व्यपार, धर्म समेत

[७] *ऊपरी* का व्यवहार

[८] कुदरत के वहाँ गेस्ट

[९] मनुष्यपन की क़ीमत

[१०] आदर्श व्यवहार

आप्तवाणी

श्रेणी-३

खंड : १

आत्म विज्ञान

[१]

'मैं' कौन हूँ?

दुनिया में जानने जैसा, मात्र...

जीवन का लक्ष्य क्या है?

'मैं खुद कौन हूँ' यही ढूँढने का लक्ष्य होना चाहिए, अन्य कोई लक्ष्य नहीं होना चाहिए।

यदि 'मैं कौन हूँ' की खोज कर रहे हों तो वह सही रास्ता है अथवा फिर जो लोग इस खोज में पड़े हुए हैं और औरों को भी 'यही' खोजना सिखा रहे हों, तो वे विचार सही रास्ते पर हैं, ऐसा कहा जाएगा। बाकी, सब तो जाना हुआ ही है न? और जानकर वापस छोड़ना ही है न? कितने ही जन्मों से जानने के ही प्रयत्न किए हैं, लेकिन जो जानना है, वही नहीं जाना।

तमाम शास्त्रों ने एक ही आवाज़ में कहा है कि आत्मज्ञान जानो। अब, आत्मज्ञान पुस्तकों में नहीं होता। आत्मज्ञान ही सिर्फ ऐसा ज्ञान है कि

जो पुस्तक में नहीं समा सकता। आत्मा अवर्णनीय, अवक्तव्य, निःशब्द है! वह शास्त्र में किस तरह से समाएगा? वह तो चार वेद और जैनों के चार अनुयोगों से आगे की बात है। चार वेद पूरे हो जाएँ, तब वेद इटसेल्फ कहते हैं कि, 'दिस इज़ नॉट देट, दिस इज़ नॉट देट। गो टु ज्ञानी।' जैनों के शास्त्र भी कहते हैं कि ज्ञान 'ज्ञानी' के हृदय में है। शास्त्रज्ञान से निबेड़ा नहीं है, अनुभवज्ञान से निबेड़ा है।

आत्मा जानने से जाना जा सके, ऐसा नहीं है। आत्मा तो इस पूरे वर्ल्ड की गुह्यतम् वस्तु है। जगत् जहाँ पर आत्मा को मान रहा है, वहाँ पर आत्मा की परछाई भी नहीं है। 'खुद' अनंत प्राकृत अवस्थाओं में से बाहर निकल ही नहीं पाता, तो वह आत्मा को किस तरह से प्राप्त कर सकेगा? आत्मा मिलना इतना आसान नहीं है। जगत् जिसे आत्मा मान रहा है, वह मिकेनिकल आत्मा है, जिस ज्ञान को ढूँढ रहा है, वह मिकेनिकल आत्मा का ढूँढ रहा है। मूल आत्मा का तो भान ही नहीं है। जप करके, तप करके, त्याग करके, ध्यान करके जिसे स्थिर करने जाता है, वह चंचल को ही स्थिर करने जाता है और आत्मा तो खुद स्वभाव से ही अचल है। स्वभाव से जो अचल है, उसे आत्मा की अचलता कहते हैं, लेकिन यह तो नासमझी से खुद की भाषा में ले जाते हैं, इसलिए अस्वाभाविक अचलता प्राप्त होती है!

आत्मा को जानें, किस तरह?

प्रश्नकर्ता : आत्मा की आराधना किस तरह करनी चाहिए?

दादाश्री : 'ज्ञानीपुरुष' से माँग लेना कि मुझसे आत्मा की आराधना हो सके, ऐसा कर दीजिए, तो 'ज्ञानीपुरुष' कर देंगे। 'ज्ञानीपुरुष' जो चाहें वह कर सकते हैं। क्योंकि वे खुद किसी भी चीज़ के कर्ता नहीं होते। भगवान भी जिनके वश में रहते हैं, वे 'ज्ञानीपुरुष' क्या नहीं कर सकते? फिर भी खुद संपूर्ण निर्‌अहंकारी पद में होते हैं, निमित्त पद में ही होते हैं।

आत्मा, शब्द से समझा जा सके वैसा नहीं है, संज्ञा से समझा जा सकता है। 'ज्ञानीपुरुष' आपका आत्मा संज्ञा से जागृत कर देते हैं। जैसे कि यदि दो गूंगे लोग हों, तो उनकी भाषा अलग ही होती है, एक ऐसे हाथ

करता है और दूसरा ऐसे हाथ करता है, तो दोनों स्टेशन पर पहुँच जाते हैं! वे दोनों अपनी संज्ञा से समझ जाते हैं। हमें उसमें पता नहीं चल सकता। उसी तरह 'ज्ञानी' की संज्ञा को ज्ञानी ही समझ सकते हैं। वह तो जब 'ज्ञानी' कृपा बरसाएँ और संज्ञा से समझाएँ, तभी आपका आत्मा जागृत हो सकता है। आत्मा शब्द-स्वरूप नहीं है, स्वभाव-स्वरूप है। अनंत भेद से आत्मा है, अनंत गुणधाम है, अनंत ज्ञानवाला हैं, अनंत दर्शनवाला है, अनंत सुख का धाम है और अनंत प्रदेशी है। लेकिन अभी आपमें यह सब आवृत है। 'ज्ञानीपुरुष' आवरण तोड़ देते हैं। उनके एक-एक शब्द में ऐसा वचनबल होता है कि सभी आवरण तोड़ देते हैं। उनका एक-एक शब्द पूरे शास्त्र बना दे!

आत्मा ज्ञान-स्वरूप नहीं है, विज्ञान-स्वरूप हैं। इसलिए विज्ञान को जानो। वीतराग विज्ञान मुश्किल नहीं है, लेकिन उनके ज्ञाता और दाता नहीं होते। कभी-कभी ही जब ऐसे 'ज्ञानीपुरुष' प्रकट होते हैं, तब इसका स्पष्टीकरण मिल जाता है। बाकी, अगर सबसे आसान चीज़ है तो वह वीतराग विज्ञान है, दूसरे सभी विज्ञान मुश्किल हैं। अन्य प्रकार के विज्ञान के लिए तो रिसर्च सेन्टर बनाने पड़ते हैं और पत्नी-बच्चों को तो बारह महीनों तक भूल जाए, तब रिसर्च हो पाती है! और यह वीतराग विज्ञान तो, 'ज्ञानीपुरुष' के पास गए, तो प्राप्त हो जाता है, आसानी से प्राप्त हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : 'मैं आत्मा हूँ' उसका ज्ञान किस तरह से होता है? खुद अनुभूति किस तरह से कर सकता है?

दादाश्री : वह अनुभूति करवाने के लिए ही तो 'हम' बैठे हैं। यहाँ पर जब हम 'ज्ञान' देते हैं, तब 'आत्मा' और 'अनात्मा' दोनों को जुदा कर देते हैं और फिर आपको घर भेजते हैं।

ज्ञान की प्राप्ति, 'ज्ञानी' के माध्यम से ही!

बाकी, यह खुद से हो सके ऐसा नहीं है। अगर खुद से हो सकता तो ये साधु, संन्यासी सभी करके बैठ चुके होते। लेकिन वहाँ तो 'ज्ञानीपुरुष' का ही काम है। 'ज्ञानीपुरुष' इसके निमित्त हैं।

जिस प्रकार इन दवाईयों के लिए डॉक्टर की ज़रूरत पड़ती है या नहीं पड़ती? या फिर आप खुद घर पर दवाईयाँ बना लेते हो? वहाँ पर कैसे जागृत रहते हो कि कुछ भूल हो जाएगी तो मर जाऊँगा! और यह आत्मा संबंधी तो खुद ही मि बना लेता है! शास्त्र खुद की ही अक्ल से, गुरुगम के बिना पढ़कर और मिक्स्चर बनाकर पी गए। इसे भगवान ने स्वच्छंद कहा है। इस स्वच्छंद से तो अनंत जन्मों का मरण हो गया! दवाई से तो एक ही जन्म का मरण था!!!

लोग टेम्परेरी आत्मा को आत्मा मानते हैं। पीतल को सोना मानकर सँभालकर रखते हैं और जब बेचने जाएँ तो चार आने भी नहीं मिलें! यह तो 'ज्ञानीपुरुष' ही कहें कि, 'फेंक दे न! यह सोना नहीं है, पीतल है बफिंग किया हुआ।' तब फिर सोना तो कब कहलाएगा? कि जब वह अपने गुणधर्म सहित हो, तब।

सोना, तांबा इनका मिक्स्चर हो गया हो और उसमें से यदि शुद्ध सोना निकालना हो तो उसका विभाजन करना पड़ेगा। सोना, तांबा, उन सभी के गुणधर्मों को जान लेगा, तभी उनका विभाजन किया जा सकेगा। उसी प्रकार आत्मा और अनात्मा के गुणों को जानना पड़ता है, उसके बाद ही उनका विभाजन हो सकता है। उनके गुणधर्मों को कौन जान सकता है? वह तो 'ज्ञानीपुरुष' ही कि जो वर्ल्ड के ग्रेटेस्ट साइन्टिस्ट हैं, वे ही जान सकते हैं, और वे ही दोनों को अलग कर सकते हैं। वे आत्मा-अनात्मा का विभाजन कर देते हैं इतना ही नहीं, लेकिन आपके पापों को जलाकर भस्मीभूत कर देते हैं, दिव्यचक्षु देते हैं और 'यह जगत् क्या है? किस तरह से चल रहा है? कौन चलाता है?' वगैरह सभी स्पष्ट कर देते हैं, तब जाकर अपना पूर्ण काम होता है।

आत्मज्ञान दिया जा सके या लिया जा सके, ऐसी चीज़ नहीं है। लेकिन यह तो 'अक्रम विज्ञान' है और यह आश्चर्य है, इसीलिए यह संभव हो सका है। तो हमारे माध्यम से आत्मा प्राप्त हो सकता है, ऐसा है। क्या भगवान को पहचाने बिना चल सकता है?

करोड़ों जन्मों के पुण्य जागें तब 'ज्ञानी' के दर्शन होते हैं, नहीं

तो दर्शन ही कहाँ से हो पाएँगे? ज्ञान की प्राप्ति करने के लिए 'ज्ञानी' को पहचान! और कोई रास्ता नहीं है। ढूँढनेवाले को मिल ही जाते हैं!

दृष्टि बदले, तभी काम होता है

प्रश्नकर्ता : किस तरह से आत्म-स्वभाव को प्राप्त करें, यही आराधना माँगते हैं।

दादाश्री : स्वभाव को प्राप्त करना, उसीको सम्यक् दर्शन कहते हैं। एक बार समकित प्राप्त किया तो दृष्टि बदल जाती है। 'जगत् की विनाशी चीज़ों में सुख है' जो ऐसे भाव दिखाती है, वह मिथ्यादृष्टि है। दृष्टि 'इस ओर' घूम जाए तो आत्मा का ही स्वभाव दिखता रहेगा, वह स्वभाव-दृष्टि कहलाती है। स्वभाव-दृष्टि अविनाशी पद को ही दिखाती रहती है! दृष्टिफेर से यह जगत् विद्यमान है। 'ज्ञानीपुरुष' के अलावा अन्य कोई आपकी दृष्टि नहीं बदल सकता। 'ज्ञानीपुरुष' दिव्यचक्षु देते हैं, प्रज्ञा जागृत कर देते हैं तब दृष्टि बदल जाती है। अपना खुद का आत्मा तो दिखता है, लेकिन दूसरों के भी आत्मा दिखते हैं, 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : दृष्टि, द्रश्य और दृष्टा के बारे में समझाइए।

दादाश्री : द्रश्य और दृष्टा, ये दोनों हमेशा अलग ही होते हैं। द्रश्य कहीं किसी दृष्टा से चिपक नहीं पड़ता। होली को देखें तो क्या उससे आँख जल जाएँगी? दुनिया में क्या-क्या है? द्रश्य और ज्ञेय, वैसे ही दृष्टा और ज्ञाता! इन पाँच इन्द्रियों से जो कुछ दिखता है, वे सभी ज्ञेय हैं, द्रश्य हैं, लेकिन इनमें दृष्टा कौन है?

जिस दिशा में आपका मुखारविंद होता है, उस तरफ का (बाह्य) दर्शन होता है, इसलिए फिर दूसरी तरफ (आत्मा की तरफ) का नहीं दिखता। जिस दिशा में दृष्टि होती है, उसी दिशा में ज्ञान-दर्शन-मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार सभी प्रवृत्त हो जाते हैं। जिस तरफ दृष्टि है, उस तरफ का ज्ञान प्रवर्तन में आ जाता है। उसे दर्शन-ज्ञान और चारित्र कहा है। अब जो यह देहदृष्टि, मनोदृष्टि, संसारदृष्टि थी, उसे यदि कोई आत्मा की तरफ

घुमा दे तो आत्मदृष्टि उत्पन्न हो जाएगी। और फिर उस तरफ का दर्शन शुरू हो जाता है, फिर ज्ञान शुरू हो जाता है और अंत में चारित्र शुरू हो जाता है।

'ज्ञानीपुरुष' सिर्फ इतना ही करते हैं कि जो दृष्टि जहाँ-तहाँ बाहर पड़ी हुई थी, उस दृष्टि को दृष्टा में डाल देते हैं। अर्थात् जब दृष्टि मूल जगह पर फ़िट हो जाए, तभी मुक्ति होती है। और जो कुछ हद तक के ही द्रश्यों को देख सकता था, वही सभी द्रश्यों को पूरी तरह से देख और जान सकता है। 'ज्ञानीपुरुष' दृष्टि को दृष्टा में डाल देते हैं, तब 'आपको' पक्का पता चल जाता है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ।' दृष्टि भी ऐसा बोलती है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ।' दोनों में अब जुदाई नहीं रही, ऐक्यभाव हो गया। पहले दृष्टि शुद्धात्मा को, खुद के स्वरूप को ढूँढ रही थी, लेकिन मिल नहीं रहा था। अब वह दृष्टि स्वभाव सम्मुख हो गई, इसलिए निराकुलता उत्पन्न होती है, वर्ना तब तक आकुल-व्याकुल रहता है।

देहदृष्टि और मनोदृष्टि से संसार मिलता है और आत्मदृष्टि से मोक्ष मिलता है। आत्मदृष्टि के सामने सभी मार्ग एक हो जाते हैं, वहाँ से आगे का रास्ता एक ही हैं। आत्मदृष्टि, वह मोक्ष का प्रथम दरवाज़ा है।

जहाँ पर लोकदृष्टि है, वहाँ पर परमात्मा नहीं है। जहाँ पर परमात्मा है, वहाँ पर लोकदृष्टि नहीं है।

संसार व्यवहार कैसा...

शुद्ध ज्ञान, वही परमात्मा है। 'जैसा है वैसा' यथार्थ दिखा दे, वह शुद्ध ज्ञान है। यथार्थ दिखाने का मतलब क्या है? सभी अविनाशी और विनाशी चीज़ों को दिखाए। और यह विपरीत ज्ञान तो सिर्फ विनाशी चीज़ों को ही दिखाता है। संसार में तो लोग जन्म लेते ही 'तू चंदूलाल है', ऐसा अज्ञान प्रदान करते हैं। उससे इस रोंग बिलीफ़ का उस पर असर हो जाता है कि 'मैं चंदूलाल ही हूँ।' यह विपरीत ज्ञान है। नियम ऐसा है कि जैसी बिलीफ़ होती है, वैसा ही ज्ञान मिल आता है, और फिर वैसा ही वर्तन में आ जाता है। संसार का मतलब क्या है? विपरीत ज्ञान में डुबकियाँ लगाना। अब इसमें से किस तरह से छूट भागे बेचारा!

. . . और आत्मव्यवहार कैसा!

प्रश्नकर्ता : संसारव्यवहार में और आत्मव्यवहार में फर्क क्या है?

दादाश्री : संसारव्यवहार क्रियात्मक है और आत्मव्यवहार ज्ञानात्मक है। एक क्रिया करता है और दूसरा 'देखता' रहता है। जो करता है, वह जानता नहीं है और जो जानता है, वह करता नहीं है। करनेवाला और जाननेवाला कभी भी एक नहीं होता, अलग ही होते हैं। अलग थे, अलग हैं और अलग रहेंगे। छह महीने तक लगातार यदि अंदरवाले भगवान को संबोधित करके कहे कि 'हे भगवान! ज्ञान आपका और क्रिया मेरी', तब भी वे भगवान मिल जाएँ, ऐसे हैं।

इन्द्रिय ज्ञान के अधीन देखना-जानना, वह राग-द्वेषवाला है। अतिन्द्रिय ज्ञान के अधीन जानने-देखने का अधिकार है, उसके बिना जानने-देखने का अधिकार नहीं है। कई लोग कहते हैं न कि, 'हम ज्ञाता-दृष्टा रहते हैं।' लेकिन किसका ज्ञाता-दृष्टा? तू अभी तक चंदूलाल है न? आत्मा हो जाने के बाद, आत्मा का लक्ष्य बैठने के बाद ज्ञाता-दृष्टापद शुरू होता है।

मुक्ति, मुक्ति का ज्ञान होने के बाद

प्रश्नकर्ता : मुक्ति किसे कहते हैं?

दादाश्री : अभी आपको कुछ ऐसा नहीं लगता कि आप बँधे हुए हो?

प्रश्नकर्ता : लगता है।

दादाश्री : सबसे पहले 'बंधन में हूँ', ऐसा ज्ञान होना चाहिए। बंधन है इसलिए मुक्ति का ज्ञान होना चाहिए। 'मैं मुक्त हूँ' ऐसा ज्ञान हो जाए तब मुक्ति होगी!

आत्मा का स्वरूप, 'ज्ञान' ही

प्रश्नकर्ता : ज्ञान का स्वरूप क्या है?

दादाश्री : ज्ञान का स्वरूप आत्मा है और आत्मा का स्वरूप ही ज्ञान है। ज्ञान ही आत्मा है। 'मैं चंदूलाल हूँ', ऐसी जो आपको श्रद्धा है, वह रोंग बिलीफ़ है। और इस श्रद्धा से ही यह जन्म-जन्म की भटकन शुरू हो गई है। 'ज्ञानीपुरुष' जब इस रोंग बिलीफ़ को फ्रेक्चर कर देते हैं, तब राइट बिलीफ़ हो जाती है, तब 'उसे' ज्ञान का स्वरूप समझ में आता है। ज्ञान का स्वरूप समझने के बाद एकदम प्रवर्तन में नहीं आता। समझने के बाद धीरे-धीरे सत्संग से ज्ञान-दर्शन बढ़ता जाता है और उसके बाद प्रवर्तन में आता जाता है। प्रतर्वन में आने पर जब 'केवल' आत्मप्रवर्तन में आ जाए, वही 'केवलज्ञान' कहलाता है। दर्शन-ज्ञान के अलावा अन्य कोई प्रवर्तन नहीं हो, उसे 'केवलज्ञान' कहते हैं।

प्रत्यक्ष के बिना बंधन नहीं टूटते

प्रश्नकर्ता : ज्ञान क्या है?

दादाश्री : ज्ञान खुद ही आत्मा है।

प्रश्नकर्ता : तो यह जो शास्त्रों का ज्ञान है, वह क्या है?

दादाश्री : वह श्रुतज्ञान कहलाता है या फिर स्मृतिज्ञान कहलाता है। वह आत्मज्ञान नहीं है। पुस्तकों में आया कि वह जड़ हो गया।

प्रश्नकर्ता : यदि शास्त्रों में भगवान की वाणी हो, तो भी वह जड़ कहलाएगी?

दादाश्री : भगवान की वाणी भी जब पुस्तक में उतरे, तब जड़ कहलाती है। सुनते हैं, तब वह चेतन कहलाती है। लेकिन वह दरअसल चेतन नहीं कहलाती। चेतनपर्याय को छूकर निकलने के कारण वह वाणी चेतन जैसा फल देती है, इसीलिए उसे प्रत्यक्ष वाणी, प्रकट वाणी कहते हैं। और इन शास्त्रों में जो उतर गया, वह जड़ हो गया, वह चेतन को जागृत नहीं कर सकता।

प्रश्नकर्ता : यह तो कितने ही काल से शास्त्रों के आधार पर ही चला आया है।

दादाश्री : वह तो ऐसे ही चलता है। जब तक 'ज्ञानी' होंगे, प्रकाश होगा, तब तक आपका दीया प्रकट होगा, नहीं तो ये क्रियाकांड चलते रहेंगे।

प्रश्नकर्ता : मंत्र-जाप से मोक्ष मिलता है या ज्ञानमार्ग से मोक्ष मिलता है?

दादाश्री : मंत्र-जाप आपको संसार में शांति देता है। मन को शांत करे, वह मंत्र। उससे भौतिक सुख मिलते हैं। और मोक्ष तो ज्ञानमार्ग के बिना नहीं हो सकता। अज्ञान से बंधन है और ज्ञान से मुक्ति है। इस जगत् में जो ज्ञान चल रहा है, वह इन्द्रिय ज्ञान है। वह भ्रांति है, अतिन्द्रय ज्ञान ही दरअसल ज्ञान है।

कहा क्या? और समझे क्या?

प्रश्नकर्ता : सभी धर्म कहते हैं, 'मेरी शरण में आ जा' तो जीव को किसकी शरण में जाना चाहिए?

दादाश्री : सभी धर्मों में तत्व क्या है? वह यह है कि, 'खुद शुद्धात्मा है', वह जानना। शुद्धात्मा ही कृष्ण है, शुद्धात्मा ही महावीर है, शुद्धात्मा ही भगवान है। 'सभी धर्मों को छोड़ दे और मेरी शरण में आ जा', ऐसा कहते हैं। यानी वे यह कहना चाहते हैं कि, 'तू इस देह धर्म को छोड़ दे, मनोधर्म को छोड़ दे, सभी इन्द्रिय धर्म को छोड़ दे और खुद के स्वाभाविक धर्म में आ जा, आत्मधर्म में आ जा।' अब, लोग इसे उल्टा समझे। मेरी शरण में अर्थात् कृष्ण भगवान की शरण में, ऐसा समझे। और ये लोग कृष्ण किसे समझते हैं? मुरलीवाले को! चुपड़ने की दवाई को पी जाए, उसमें डॉक्टर का क्या दोष? ऐसे ही ये पी गए और इसीलिए भटक रहे हैं!

भ्रांतिरहित ज्ञान, जानने जैसा है

अभी तक जो जाना है, पढ़ा है, वह सब भ्रांति है। भ्रांति में कब तक पड़े रहेंगे? कैसा लगता है आपको? जितनी भी आत्मा की बातें करते हैं, वे सभी बातें भ्रांति में रहकर करते रहते हैं। भ्रांति से बाहर निकला हुआ होना चाहिए। उसका फल क्या आता है? भ्रांतिरहित फल आएगा,

निराकुलता उत्पन्न होगी। पूरा जगत् आकुलता-व्याकुलता में फँसा हुआ है। निराकुलता तो सिद्ध भगवान के आठ गुणों में से एक है। यदि रियल वस्तु प्राप्त हो जाए तो निराकुलता उत्पन्न हो जाएगी, नहीं तो कभी भी अंत ही नहीं आएगा। अनंत जन्मों से इस भ्रांतज्ञान को तो जानते ही आए हैं न?

प्रश्नकर्ता : भ्रांति ही मायावाद है? भ्रांति के बारे में अधिक समझाइए?

दादाश्री : भ्रांति और मायावाद एक ही है। निज स्वरूप का अज्ञान ही पहले नंबर की भ्रांति है। भ्रांति अर्थात् जो नहीं है उसकी कल्पना होना, वह। आत्मज्ञान, वह कल्पित वस्तु नहीं है। वहाँ पर शब्द बोलने से नहीं चलता, वह अनुभवसहित होना चाहिए। सेल्फ का रियलाइज़ेशन होना चाहिए। जैसा इन पुस्तकों में लिखा हुआ है, आत्मा वैसा नहीं है। 'मैं कौन हूँ', उसे जानना, वह शब्दप्रयोग नहीं है, अनुभवप्रयोग है।

बात को समझना है। बात को समझे तो मोक्ष सहज ही है। नहीं तो कोटि उपाय करने से, उल्टा होकर जल मरे, तब भी मोक्ष हो सके ऐसा नहीं है। पुण्य का बंधन होगा, लेकिन बंधन तो होगा ही।

विभ्रांत दशा! लेकिन किसकी?

जब तक संबंध है, तब तक बंध है। खुद के स्वरूप में आ जाए तो संबंध से मुक्त हो जाता है। संबंध अर्थात् क्या? नाम, वह संबंध है। 'मैं पुष्पा हूँ, इनकी बेटी हूँ', वह संबंध है। खुद के स्वभाव में आ जाए तो खुद असंग ही है, निर्लेप ही है।

अनंतकाल से विभ्रांतदशा में ही है। आत्मा को विभ्रांति नहीं होती। यह तो मनुष्य को विभ्रांति होती है! यह तो कुछ कॉज़ेज़ उत्पन्न होने से, संयोगों के दबाव से विभाविक ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, इसलिए इसमें मनुष्य गुनहगार नहीं है। भ्रांति से गुनहगार दिखता है, और ज्ञान से तो निर्दोष ही है। 'ज्ञानी' को पूरा जगत् निर्दोष दिखता है।

'ज्ञानीपुरुष' तो, बेजोड़ ही!

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञानी' अर्थात् रियलाइज़्ड सोल (आत्मा)?

दादाश्री : 'ज्ञानीपुरुष' के अलावा कोई भी व्यक्ति सेल्फ रिअलाइज़ेशनवाला नहीं होता। आत्मज्ञानी, वह पद आसान नहीं है। बाकी ज्ञानी तो बहुत तरह के होते हैं। शास्त्रज्ञानी होते हैं, अन्य प्रकार के ज्ञानी होते हैं, यह तो हिन्दुस्तान है।

सामान्य ज्ञान : विशेष ज्ञान

प्रश्नकर्ता : 'आप्तवाणी' में एक वाक्य है- 'सामान्य ज्ञान में रहना, विशेष ज्ञान में मत जाना', इसे समझाइए।

दादाश्री : अभी जो विशेष ज्ञान है, वह बुद्धि में जाता है और बुद्धि के साथ हमेशा अहंकार होता ही है। सामान्य ज्ञान अर्थात् सभी में शुद्धात्मा 'देखते' रहना। यदि हम जंगल में गए हों और सभी पेड़ों के शुद्धात्मा स्वरूप से दर्शन करें, तो उसे सामान्य ज्ञान कहते हैं। और यह पेड़ नीम का है, यह आम का है, इस तरह से देखना, वह विशेष ज्ञान कहलाता है। सामान्य ज्ञान अर्थात् दर्शन उपयोग।

प्रश्नकर्ता : विशेष ज्ञान और संचित ज्ञान में क्या फर्क है?

दादाश्री : विशेष ज्ञान में बुद्धि का उपयोग होता है और संचित ज्ञान में चित्त का उपयोग होता है। बुद्धि कभी गलत सिद्ध हो सकती है कि, 'यह पेड़ मैंने कहीं पर देखा है, भूल गया हूँ', इस तरह बुद्धि को उल्ट-पलट करके याद करना पड़ता है।

अनुभवी को, पहचानें किस तरह?

प्रश्नकर्ता : हमें आत्मा पकड़ना है, पकड़ने जाते हैं, बहुत ही इच्छा होती है, लेकिन पकड़ में क्यों नहीं आता?

दादाश्री : वह ऐसे पकड़ में नहीं आ सकता। आत्मा तो क्या, आत्मा की परछाई तक पकड़ में आ सके, ऐसा नहीं है। आत्मा की परछाई को पकड़ ले न, तो भी कभी न कभी आत्मा मिल जाएगा।

प्रश्नकर्ता : स्व-पर प्रकाशक, ऐसी चैतन्य सत्ता का अनुभव हो गया है, वह कैसे समझ में आएगा?

दादाश्री : अपनी जेब काट ले तब भी राग-द्वेष नहीं हो, कोई गालियाँ दे तो भी राग-द्वेष नहीं हो, तब हमें समझना है कि चैतन्य सत्ता का हमें अनुभव है। उससे आगे यदि परीक्षा करनी हो तो हाथ काट दे, कान काट दे तब भी राग-द्वेष नहीं हो तो समझना की चैतन्य सत्ता का अनुभव है। चैतन्य सत्ता का अनुभव हो, तब निर्लेप भाव ही रहता है। समुद्र में रहने के बावजूद भी पानी छूता नहीं है।!

प्रश्नकर्ता : जिसे ऐसा अनुभव है, उस व्यक्ति को किस तरह से परखा जा सकता है?

दादाश्री : वह तो आप उसे दो गालियाँ दो तो पता चल जाएगा। जब उसे छेड़ो, तब वह फन फैलाता है या नहीं फैलाता, उसका पता नहीं चलेगा?

प्रश्नकर्ता : कई बार कुछ लोगों की ऐसी शांतदशा हो, तभी वे शांत रह सकेंगे न?

दादाश्री : हाँ, किसी-किसी की शांतदशा रह सकती है। इस प्रयोग में से वे बच जाए तो दूसरा उपाय करना पड़ेगा। जहाँ पर अहंकार, ममता नहीं है, वहाँ पर स्व-पर प्रकाशक आत्मा है।

प्रश्नकर्ता : इस चैतन्य सत्ता का जिसे अनुभव है, उसे तो ज्ञानी कहते हैं न?

दादाश्री : हाँ, वे ज्ञानी ही कहलाते हैं।

प्रश्नकर्ता : ऐसे ज्ञानी छिपे रहते हैं, उन्हें पहचानना मुश्किल है।

दादाश्री : छिपे हुए में ज्ञान होता ही नहीं। ज्ञानी तो संसार में घूमते रहते हैं। ज्ञानी छिपे हुए रह ही नहीं सकते। उन्होंने खुद ने जो सुख प्राप्त किया है, वही सुख सभीको देने की भावना ज्ञानी में होती है, इसलिए 'ज्ञानी' जंगल में नहीं मिलते।

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी संसार में भले ही हों, लेकिन जीव उन्हें पहचान नहीं पाते न, कि ये ज्ञानी हैं?

दादाश्री : ऐसे नहीं पहचान सकते, लेकिन उनके शब्दों पर से पता चल जाता है। अरे, उनकी आँखें देखकर ही पता चल जाता है। जिस तरह ये पुलिसवाले बदमाश की आँख देखकर जाँच करते हैं न, कि यह बदमाश लगता है। उसी तरह आँखें देखकर वीतरागी का भी पता चलता है।

अनुभव होता है, तब तो...

पेरालिसिस होने पर भी सुख नहीं जाए, वही आत्मानुभव कहलाता है। सिर दु:खे, भूख लगे, बाहर भले ही कितनी भी मुश्किलें आएँ, लेकिन अंदर की *शाता* (सुख परिणाम) नहीं जाती, उसे आत्मानुभव कहा है। आत्मानुभव तो दु:ख को भी सुख में बदल देता है और मिथ्यात्वी को तो सुख में भी दु:ख महसूस होता है। क्योंकि दृष्टि में फर्क है। यथार्थ, जैसा है वैसा नहीं दिखता, उल्टा दिखता है। मात्र दृष्टि बदलने की ज़रूरत है। बाकी, क्रियाएँ लाखों जन्मों तक करते रहोगे, फिर भी उसके फल स्वरूप संसार ही मिलेगा। दृष्टि बदलनी है। अज्ञान से उत्पन्न किए हुए का ज्ञान से छेदन करना है। *पुद्‌गल* (जो पूरण और गलन होता है) में जो खलबली है, वह बंद हो जाएगी, तब आत्मा का अनुभव होगा।

प्रश्नकर्ता : 'आत्मानुभव हुआ है', ऐसा कब कहा जा सकता है?

दादाश्री : 'खुद' की प्रतीति हो जाए, तब। 'खुद आत्मा है', ऐसी प्रतीति खुद को हो जाए और 'मैं चंदूलाल हूँ', वह बात गलत निकली, जब ऐसा अनुभव हो, तब जानना कि अज्ञान गया।

ज्ञानियों ने आत्मा का अनुभव किसे कहा है? कल तक जो दिखता था, वह खत्म हो गया और नई तरह का दिखने लगा। अनंत जन्मों से भटक रहे थे, और जो रिलेटिव दिख रहा था वह गया और नई ही तरह का रियल दिखना शुरू हो गया, यही आत्मा का अनुभव है! द्रश्य को अद्रश्य किया और अद्रश्य था, वह द्रश्य हो गया!!

जो थ्योरिटिकल है, वह अनुभव नहीं कहलाता। वह तो समझ कहलाती है। और प्रेक्टिकल, वह अनुभव कहलाता है।

जिसे आत्मा का संपूर्ण अनुभव हो चुका है, वे 'ज्ञानीपुरुष' कहलाते

हैं। वे पूरे ब्रह्मांड का वर्णन कर सकते हैं। सभी जवाब दे सकते हैं। चाहे कुछ भी पूछे, खुदा का पूछे, क्राइस्ट का पूछे, कृष्ण का पूछे या महावीर का पूछे, तो भी 'ज्ञानी' उसके जवाब दे सकते हैं। इस 'अक्रम विज्ञान' के माध्यम से आपको भी आत्मानुभव ही प्राप्त हुआ है। लेकिन वह आपको आसानी से प्राप्त हो गया है, इसलिए आपको खुद को लाभ होता है, प्रगति की जा सकती है। विशेष रूप से 'ज्ञानी' के परिचय में रहकर समझ लेना है। करना कुछ भी नहीं है। क्रमिक मार्ग में तो कितना अधिक प्रयत्न करने पर आत्मा ख़्याल में आता है, वह भी बहुत अस्पष्ट और लक्ष्य तो बैठता ही नहीं। उसे लक्ष्य में रखना पड़ता है कि आत्मा ऐसा है। और आपको तो अक्रम मार्ग में सीधा आत्मानुभव ही हो जाता है।

जो साक्षात् हुआ, वही 'ज्ञान'

दादाश्री : शुद्धात्मा का लक्ष्य रहता है आपको।

प्रश्नकर्ता : हाँ जी।

दादाश्री : कितने समय तक रहता है?

प्रश्नकर्ता : निरंतर। आपने ज्ञान दिया तब से ही निरंतर रहता है।

दादाश्री : आत्मानुभव के बिना लक्ष्य रह ही नहीं सकता। नींद में से जागो तो तुरन्त लक्ष्य आ जाता है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, तुरन्त ही। अपने आप ही, आँख खुलते ही सबसे पहले 'मैं शुद्धात्मा हूँ', लक्ष्य में आ जाता है।

दादाश्री : इसीको साक्षात्कार कहते हैं, इसे ज्ञान कहते हैं। और जो ज्ञान साक्षात् नहीं होता, उसे अज्ञान कहते हैं।

आत्मा की प्रतीति बैठनी ही बहुत मुश्किल है तो लक्ष्य और अनुभव की तो बात ही क्या करनी? आत्मा की प्रतीति अर्थात् निःशंकता, 'यही आत्मा है' ऐसा पक्का पता चल जाना, वह। ऐसा हम आपको करवा देते हैं। इसीलिए तो अंदर आपके भीतर मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार सब निःशंक हो जाते हैं।

ज्ञान तो उसे कहते हैं कि किसी भी संयोग में हाज़िर हो जाए। हर एक समय में, जहाँ जाओ वहाँ हाज़िर हो जाए। हाज़िर होकर वापस समाधान दे। अपना यह ज्ञान सर्वसमाधानकारी ज्ञान है। किसी भी द्रव्य में समाधान रहता है, किसी भी क्षेत्र में समाधान रहता है और किसी भी समय पर समाधान रहता है, ऐसा यह विज्ञान है। कोई गाली दे, जेब काट ले तो भी उस घड़ी यह ज्ञान समाधान देगा। ज्ञान सावधान करता रहता है, निरंतर।

प्रश्नकर्ता : 'मुझे ज्ञान का रियलाइज़ेशन चाहिए', ऐसा किसे कहते हैं?

दादाश्री : सिर्फ रियलाइज़ेशन ही नहीं, लेकिन जो हमेशा आपके साथ रहे, वही ज्ञान है।

'ज्ञान', अनादि से वही प्रकाश

दुषमकाल, सुषमकाल, कलियुग, सत्युग सबकुछ बदलता है, लेकिन ज्ञान तो अनादिकाल से यही का यही है। वीतरागों का अमर ज्ञान है। ज्ञान अर्थात् प्रकाश। प्रकाश में एक भी ठोकर नहीं लगती, चिंता नहीं होती।

'यह' वीतरागों का ज्ञान है। जैन, वैष्णव वगैरह तो वीतराग ज्ञान लाने के साधन हैं। ज्ञान 'ज्ञानी' के पास से ही मिला हुआ होना चाहिए, तभी एक्ज़ेक्ट टाइम पर हाज़िर होगा। यों ही गप्प नहीं चलेगी। जो खुद का कल्याण करें और औरों का भी कल्याण करें, वे 'ज्ञानी'!

आत्मज्ञान के बिना सिद्धि नहीं है। दूसरे सभी उपाय हठयोग हैं। ज्ञान अन्य किसी भी तरह से प्राप्त नहीं होता। अज्ञान गया तब से ही मुक्ति का अनुभव होता है। अज्ञान से बंधन है। किसका अज्ञान? खुद खुद का ही अज्ञान है। कृष्ण भगवान ने इसे गुह्यतम विज्ञान कहा है, गुह्य को ही कोई नहीं समझ सकता, तो गुह्यतर और गुह्यतम कब समझ में आएगा?

पौद्गलिक लेन-देन का व्यवहार जिसका बंद हो चुका है, उसे नि:शंक आत्मा प्राप्त हो गया, ऐसा कहा जाएगा। उसे क्षायक समकित कहा

जाता है कि जो कृष्ण भगवान को था। संपूर्ण भीख जाने के बाद ही जगत् 'जैसा है वैसा' दिखता है।

आत्मज्ञान हो जाए, तब खुद ब्रह्मांड का स्वामी बन जाता है! तब तक भक्त कहलाता है। आत्मज्ञान होने के बाद खुद भक्त भी है और भगवान भी है। फिर खुद, खुद की ही भक्ति करता है।

सत्-असत् का विवेक, ज्ञानी की भाषा में

सत् और असत् का संपूर्ण विवेक तो 'ज्ञानीपुरुष' को ही होता है। जगत् असत् को सत् मानता है। 'यह सत् ऐसा है और असत् ऐसा है', ऐसा जानना, उसे सम्यक् दर्शन कहा है। कुछ लोग स्थूल असत् को सत् कहते हैं। कुछ लोग सूक्ष्म असत् को सत कहते हैं। कुछ लोग सूक्ष्मतर असत् को सत् कहते हैं। कुछ लोग सूक्ष्मतम असत् को सत् कहते हैं। संपूर्ण असत् को जो जानता है, वह सत् को जानता है। संपूर्ण अज्ञान को जान ले, तो उसके उस पार ज्ञान है। कंकड़ को पहचानना आ गया तो गेहूँ को जाना जा सकता है अथवा गेहूँ को जान ले तो कंकड़ को जाना जा सकता है।

अवस्थाएँ असत् हैं, नाशवंत हैं। आत्मा सत् है, अविनाशी है। अविनाशी को विनाशी की चिंता नहीं करनी होती।

आत्मानुभव किसे हुआ?

प्रश्नकर्ता : आत्मानुभव किसे होता है? अनुभव करनेवाला कौन है?

दादाश्री : 'खुद' को ही होता है। अज्ञान से जो भ्रांति खड़ी हुई थी, वह चली जाती है और अस्तित्वपन वापस ठिकाने पर आ जाता है। 'मैं चंदूभाई हूँ' ऐसा 'जिसे' भान था, उसे उसका वह भान मैं छुड़वा देता हूँ और उसीको 'मैं शुद्धात्मा हूँ' का भान होता है। जो सूक्ष्मतम अहंकार है कि जिसका फोटो नहीं लिया जा सकता, जो आकाश जैसा है, उसे अनुभव होता है। 'मैं चंदूभाई हूँ', वह स्थूल अहंकार छूट गया, फिर सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और अंत में सूक्ष्मतम अहंकार रहता है। सूक्ष्मतम अहंकार को

अनुभव होता है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ'। जो आज तक उल्टा चला था, वह वापस पलटता है। 'इस' ज्ञान के बाद में आपमें अब स्थूल अहंकार बचता है, कि जो निर्जिव है, सजीव भाग खिंच गया। स्थूल अहंकार का फोटो लिया जा सकता है। फिर बचता है सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम अहंकार, कि जिसे अनुभव होता है। यह किसके जैसी बात है? बातचीत करते समय डोज़िंग हो जाए और वापस बातचीत करे। इसमें 'किसे डोज़िंग हुआ और किसने जाना' उसके जैसा है!

विचार करके आत्मा जाना जा सकता है?

प्रश्नकर्ता : विचार करके क्या आत्मज्ञान प्राप्त हो सकता है?

दादाश्री : विचार, वह बहुत आवरणवाला ज्ञान है, वह रिलेटिव ज्ञान कहलाता है। निर्विचार, वह रियल ज्ञान माना जाता है। निर्विचार दशा, वह ज्ञान की 'एब्सोल्यूट' दशा है।

विचार करके आप यदि भगवान को ढूँढ रहे हो, तब तो अभी तक आप स्थूल में ही हो। उसके बाद सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम में जाओगे, तब खुदा दिखेंगे। बाकी, विचार तो उस तरफ ले जानेवाली चीज़ है। विचार और शब्द आवरणवाले हैं। जब तक शब्द हैं, तब तक आवरण हैं। जहाँ पर शब्द नहीं पहुँचता, विचार नहीं पहुँचता, वहाँ पर खुदा बैठे हुए हैं।

प्रश्नकर्ता : आत्मा को अलग किया, तो क्या उसकी उत्पत्ति विचार में से नहीं होती?

दादाश्री : विचार बहुत अलग चीज़ है। आत्मा उससे बिल्कुल अलग ही वस्तु है, लेकिन भ्रांति से ऐसा लगता है कि 'मुझे विचार आ रहे हैं।' भ्रांति की वह गांठ टूट जानी चाहिए। 'मैं चंदूलाल हूँ', वह भ्रांतिभाव टूट जाएगा तो हल आ जाएगा।

प्रश्नकर्ता : आत्म स्थिति सतत रहती है या विचार की माफ़िक क्षणिक रहती है?

दादाश्री : जो क्षणिक रहे, वह आत्मा ही नहीं कहलाता। निरंतर रहे तभी 'आत्मा प्राप्त हुआ है', ऐसा कहा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : हमारे अंदर तो निरंतर संसार के विचार रहते हैं।

दादाश्री : इस जगत् को एक क्षण के लिए भी विस्मृत करना हो तो नहीं हो पाता। वह तो ज्ञान हो जाए तभी जगत् निरंतर विस्मृत रहेगा, निरंतर समाधि रहेगी।

सूर्य को और चंद्र को भेदकर उससे भी आगे की बात है। वहाँ हम आपको ले जाते हैं। सूर्य अर्थात् बुद्धि और चंद्र अर्थात् मन। आत्मा इनसे भी ऊपर है। टॉप पर है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा, वह मन की कल्पना नहीं है?

दादाश्री : मन की चाहे कितनी भी कल्पना करो फिर भी वह काम नहीं आएगी। आत्मा निर्विकल्प है और मन की कल्पना विकल्पी है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा को मन-स्मृति द्वारा नहीं जाना जा सकता?

दादाश्री : यह बात उससे परे है। अर्थात् कोई भी व्यक्ति खुद अपने आप आत्मा को नहीं जान सकता। विकल्पी कभी भी निर्विकल्पी नहीं हो सकता। वह तो निर्विकल्पी तरण-तारण ऐसे 'ज्ञानीपुरुष' ही निर्विकल्प दशा तक पहुँचा सकते हैं।

आत्म मन स्वरूप नहीं है, चित्त स्वरूप नहीं है, बुद्धि स्वरूप नहीं है, अहंकार स्वरूप नहीं है, शब्द स्वरूप नहीं है, विचार स्वरूप नहीं है, निर्विचार है।

'आत्मा', स्वरूप ही ग़ज़ब का

"*जेणे आत्मा जाण्यो तेणे सर्व जाण्यु।*"- श्रीमद् राजचंद्र।

जगत् के तमाम शास्त्र सिर्फ आत्मा को जानने के लिए ही लिखे गए हैं। दुनिया में जानने जैसी कोई चीज़ हो तो वह आत्मा ही है। जाननेवाले को जानो। इन्द्र, महेन्द्र तक का भोगकर आने के बावजूद अनंत जन्मों की भटकन रुकी नहीं है। शुद्धात्मा के अलावा दूसरे सभी परमाणु हैं, वे अनंत हैं, फिज़िकल हैं, उनके अंदर भगवान फँसे हुए हैं।

प्रश्नकर्ता : आत्मा का स्वरूप है?

दादाश्री : जो भी वस्तु के रूप में है, उसका स्वरूप होता ही है। आत्मा भी वस्तु है और उसका भी स्वरूप है। उसका तो ग़ज़ब का स्वरूप है। और वही जानना है। ज्ञान-दर्शन-चारित्र जिसका स्वरूप है, और परमानंद जिसका स्वभाव है, उसे जानना है।

यह दुनिया जिस प्रकार के आत्मा को जानती है, आत्मा वैसा नहीं है। आत्मा खुद ही परमात्मा है, जिसके गुणधर्णों के सामने इस दुनिया की किसी भी चीज़ की गिनती नहीं है।

लेकिन इस जड़ की भी कितनी अधिक शक्ति है कि इसने भगवान को भी रोका है!

संसार, समसरण मार्ग के संयोग

संसार स्वभाव से ही विकल्पी है। सबकुछ बनाया है मूल *पुद्गल* ने। और इसमें आत्मा का तो मात्र विकल्प ही है और कुछ भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : इसमें आत्मभाव नहीं है?

दादाश्री : नहीं। सारी *पुद्गल* की ही बाज़ी है। साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स मिलने से आत्मा को विकल्प हुआ और यह सब उत्पन्न हो गया!

प्रश्नकर्ता : यह विकल्प किस आधार पर होता है?

दादाश्री : बाहर के संयोगों के दबाव से।

प्रश्नकर्ता : बाहर का दबाव अर्थात् किसका? *पुद्गल* का?

दादाश्री : हाँ। संसार प्रवाह है न, उस प्रवाह में जाते समय संयोगों के दबाव बहुत आते हैं। और वैसा अनिवार्यत: है ही (नियम से होता ही है)। संसार अर्थात् समसरण मार्ग। उसमें निरंतर समसरण की क्रिया हो रही है, निरंतर परिवर्तन हो रहा है। कोई ११ मील पर, कोई १६ मील पर, कोई १७ मील पर तो कोई ७० मील पर होता है। उसमें भी ७० मील के पहले फर्लांग पर कोई, दूसरे फर्लांग पर कोई, ऐसे अलग-अलग जगह पर होते हैं। क्षेत्र अलग इसलिए भाव भी अलग, और इसीलिए सबके

अलग-अलग हिसाब बँधते रहते हैं। इसमें आत्मा जुदा ही है, मात्र भ्रांति उत्पन्न हुई है, उसी कारण से विभाविक दशा में एकता लगती है।

'प्रयोगी' अलग! प्रयोग अलग!

प्रयोग और प्रयोगी दोनों अलग होते हैं या एक होते हैं? 'चंदूलाल', वह प्रयोग है और 'खुद' शुद्धात्मा है, वह प्रयोगी है। अब प्रयोग को ही प्रयोगी मान बैठे हैं। प्रयोग में वस्तुएँ निकालनी पड़ती है, डालनी पड़ती है, जब कि प्रयोगी में *पूरण-गलन* (चार्ज होना-डिस्चार्ज होना) नहीं होता। इस 'प्रयोग' में खाने-पीने का डालना पड़ता है और संडास-बाथरूम में *गलन* करना पड़ता है।

''पोते ज प्रयोगी छे, प्रोयगी नी मूर्छनामां'' - नवनीत।

प्रयोगी खुद ही प्रयोगों की मूर्छना में पड़ा हुआ है, इसलिए खुद के स्वरूप का भान भूल गया। अभी अगर कोई प्रयोग चल रहा हो, उबलता हुआ पानी हो, उसमें हाथ डालने जाए तो क्या होगा? इसमें पता चल जाता है और आत्मा के संदर्भ में पता ही नहीं चलता इसलिए हाथ डालता ही रहता है। फिर भिन्नता नहीं रह पाती। 'मैं जुदा हूँ', इस प्रकार से बरतता ही नहीं है न फिर?!

प्रश्नकर्ता : इसमें मूल प्रयोगी कौन है?

दादाश्री : आत्मा ही प्रयोगी है। यह तो आपको समझाने के लिए शब्द रखा है। यह देह प्रयोग है और जो उससे अलग है, वह आत्मा है, इसलिए प्रयोग में दख़लंदाज़ी मत करना।

[२]

अज्ञाशक्ति : प्रज्ञाशक्ति

बंधन, अज्ञा से : मुक्ति, प्रज्ञा से

सिर्फ एक अज्ञाशक्ति से इस जगत् की अधिकरण क्रिया चलती रहती है। ठेठ मोक्ष में जाने तक यह अज्ञाशक्ति मंद हो ऐसी नहीं है। 'क्रमिक मार्ग' में अंतिम स्टेशन पर जब अज्ञाशक्ति विदाई लेती है, तब प्रज्ञाशक्ति हाज़िर हो जाती है, और यहाँ पर इस 'अक्रम मार्ग' में जब हम ज्ञान देते हैं, तब पहले प्रज्ञाशक्ति उत्पन्न हो जाती है और अज्ञाशक्ति विदाई ले लेती है। यह प्रज्ञाशक्ति ही आपको मोक्ष में ले जाएगी। इसमें आत्मा तो वही का वही है। वहाँ पर भी वीतराग है और यहाँ पर भी वीतराग है। मात्र ये शक्तियाँ ही सब कार्य करती रहती हैं।

अज्ञाशक्ति किस तरह से उत्पन्न होती है? आत्मा पर संयोगों का ज़बरदस्त दबाव आ गया, इसलिए फिर, जो ज्ञान-दर्शन स्वाभाविक था, वह विभाविक हो गया, उससे अज्ञाशक्ति उत्पन्न हो गई। यह अज्ञाशक्ति मूल आत्मा की कल्पशक्ति में से उत्पन्न होती है। जैसी कल्पना करे, वैसा हो जाता है। फिर अहंकार साथ में ही रहता है इसलिए फिर आगे बढ़ता है... एक ही जगह ऐसी है कि जहाँ पर संयोग नहीं हैं, और वह है सिद्ध गति! अतः वहीं पर समसरण मार्ग का अंत आता है।

जब 'ज्ञानीपुरुष' मिल जाते हैं, तब प्रज्ञादेवी हाज़िर हो जाती हैं। अज्ञादेवी संसार से बाहर निकलने नहीं देती, और प्रज्ञादेवी संसार में घुसने नहीं देती। इन दोनों का झगड़ा चलता रहता है! दोनों में से जिसका बल अधिक होता है, वह जीत जाती है। 'हम' 'शुद्धात्मा' हुए यानी प्रज्ञादेवी के पक्षकार हो गए और इसीलिए उसकी जीत होगी ही।

एक बार आत्मा प्रकट हुआ, तब अंदर जो चेतावनी देती रहती है, वह प्रज्ञा है। प्रज्ञा निरंतर आत्महित ही देखती रहती है। फिर सबकुछ प्रज्ञा ही कर लेती है। ठेठ मोक्ष में जाने तक। बाकी, आत्मा को कुछ भी करना नहीं पड़ता।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञाशक्ति ही आत्मा है या अलग?

दादाश्री : आत्मा और प्रज्ञा दोनों अलग चीज़ें हैं। आत्मा प्रकट होने के बाद में प्रज्ञा उत्पन्न होती है। आत्मा का अंग है वह।

अज्ञ, स्थितप्रज्ञ, प्रज्ञा-भेद क्या?

प्रश्नकर्ता : स्थितप्रज्ञ दशा का मतलब क्या है? क्या वही प्रज्ञा है?

दादाश्री : स्थितप्रज्ञ दशा तो सबसे छोटा पद है। उसे लोग बहुत बड़ा पद मानते हैं। प्रज्ञाशक्ति का उत्पन्न होना तो बहुत बड़ी चीज़ है, वह निरंतर चेतावनी देती है। आत्मा का ऐश्वर्य है वह।

'मैं करता हूँ' यदि उसमें नि:शंक है, तो वह अज्ञदशा। 'मैं करता हूँ' अगर उसमें शंका होती है तो वह स्थितप्रज्ञ दशा है और 'मैं-पन' छूट गया तो प्रज्ञा उत्पन्न होती है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा की अनंत शक्ति है। *पुद्गल* की अनंत शक्ति है, तो उन दोनों को अलग करनेवाला कौन है?

दादाश्री : प्रज्ञाशक्ति ही दोनों को अलग करती है। लेकिन 'ज्ञानीपुरुष' मिल जाएँ तभी प्रज्ञाशक्ति उत्पन्न होती है।

प्रश्नकर्ता : चित्त और प्रज्ञा में क्या फर्क है?

दादाश्री : चित्त तो, जो पहले से देखा हुआ होता है, वही दिखाता है और प्रज्ञा तो नया ही देखती है। खुद के दोष दिखाए, वह प्रज्ञा है। चित्त सभी को देखता है लेकिन प्रज्ञा को नहीं देख सकता। प्रज्ञा को तो हम देख सकते हैं। चित्त देखे हुए को देखता है, जब कि प्रज्ञा उससे अधिक जानती है।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा और दिव्यचक्षु दोनों एक ही हैं?

दादाश्री : नहीं, दिव्यचक्षु तो चक्षु हैं और प्रज्ञा तो एक शक्ति है। दिव्यचक्षु का तो आप यदि उपयोग नहीं करोगे तो उपयोग में नहीं आएँगे, लेकिन एक बार प्रज्ञा जागृत हो जाए तो फिर वह निरंतर चेतावनी देती ही रहती है।

प्रश्नकर्ता : क्या प्रज्ञा *पुद्‌गल* है?

दादाश्री : नहीं, वह *पुद्‌गल* नहीं है, वह बीच का भाग है। आत्मा के मोक्ष में जाने तक वह रहती है। स्टीमर में चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ रखते हैं न और फिर उठा लेते हैं, उसके जैसा है।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा मोक्ष में जाने तक रहती है या केवलज्ञान में जाने तक?

दादाश्री : केवलज्ञान होने तक ही प्रज्ञा रहती है, फिर वह हट जाती है। हम जो यह मोक्ष में जाने तक कह रहे हैं, उसका अर्थ केवलज्ञान तक, प्रज्ञा के बारे में ऐसा अर्थ करना।

प्रश्नकर्ता : जगत् कल्याण की भावना कौन करता है?

दादाश्री : यह प्रज्ञाशक्ति के कारण है। वास्तव में जगत् कल्याण की भावना करने का प्रज्ञा का काम नहीं है, लेकिन एकाध-दो जन्म बाकी रह जाते हैं, उस वजह से प्रज्ञाशक्ति के साथ एक सहायक शक्ति काम करती है, हालांकि दोनों एक जैसे ही हैं लगभग।

[३]

पुद्गल, तत्व के रूप में

पुद्गल की गुणशक्ति कौन-सी?

प्रश्नकर्ता : जिस तरह अपने आत्मा में अनंत शक्तियाँ हैं, अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन है, उसी तरह *पुद्गल* परमाणुओं के जो स्वाभाविक गुण हैं, उनकी शक्ति कौन-सी है?

दादाश्री : इस *पुद्गल* की शक्ति से तो यह पूरा जगत् दिखता है। आत्मा किसी जगह पर दिखता ही नहीं। इस *पुद्गल* की भी कितनी अधिक शक्ति है! यह तत्व कितना अद्‌भुत है! वह भी भयंकर शक्ति सहित है। वह निरंतर परिवर्तित होता ही रहता है। *पुद्गल,* वह अनंत प्रकार से परिवर्तित होता ही रहता है। इस चाय में अगर आप थोड़ा पानी ज़्यादा डालो तो स्वाद अलग आता है। पानी ज़रा कम डालो तो अलग स्वाद आता है। एक घंटे बाद पीओ तो अलग स्वाद आता है। यह एक ही *पुद्गल* है, लेकिन इसके अनंत पर्याय, अनंत प्रकार से परिवर्तित होते ही रहते हैं! आत्मा तत्व स्वरूप से है और *पुद्गल* भी तत्व स्वरूप से है। चाहे कितनी भी अवस्थाएँ बदल जाएँ, इसके बावजूद भी कोई भी चीज़ राई जितनी भी न घटती है, न बढ़ती है।

पुद्गल अर्थात् पूर + गल। जो *पूरण-गलन* होता है, वह सभी पुद्‌लग कहलाता है। यह जगत् कितना सुंदर लगता है। इसीसे तो फँसाव खड़ा हुआ है। सुंदर भी लगता है और बद्‌सूरत भी लगता है! क्योंकि सापेक्ष है। *पुद्गल* तो स्वतंत्र गुणोंवाला है। रूप, रस, स्पर्श और गंध इसके गुण हैं, लेकिन इसमें ज्ञायकभाव नहीं है। *पुद्गल* खुद जान नहीं सकता। उसे *लागणी* (भावुकतावाला प्रेम, लगाव) का अनुभव भी नहीं होता।

करामात सारी *पुद्‌गल* की ही

ज्ञान आत्मा का है और करामात सभी *पुद्‌गल* की है। आत्मा ऐसी करामात नहीं करता। हिमालय में बर्फ़ गिर रही हो तो एकदम महावीर का 'स्टेच्यू' जैसा बन जाए! वह *पुद्‌गल* की करामात है, टेम्परेरी है। *पुद्‌गल* ऐसा सक्रिय है कि जिसके कारण तरह-तरह के परिवर्तन होते रहते हैं।

यहाँ अंदर अगर छौंक लगाया हो तो सब छींकने लगते हैं। यह किसकी करामात है? आपकी तो छींक खाने की इच्छा नहीं है। यदि तू कर्ता है तो बंद कर दे न ये छींकें! लेकिन नहीं। यह तो *पुद्‌गल* की करामात है। यह *पुद्‌गल* की करामात, बहुत गूढ़ वस्तु है।

इस जगत् के लोग ऐसे पुरुषार्थी हैं कि लोहे की मोटी-मोटी साँकलों के बंधन तोड़ डालते हैं। लेकिन ये सूक्ष्म बंधन, आत्मा और *पुद्‌गल* का, उसे नहीं तोड़ सकते, और यदि उन्हें तोड़ने जाएँगे तो बल्कि और अधिक उलझ जाएँगे।

पुद्‌गल तो कितना शक्तिशाली है!! खुद परमात्मा ही उसमें फँस गए हैं न!!! एक प्याले में ज़रा-सा ज़हर घोलकर पिलाओ तो क्या होगा? चेतन फटाक से भाग जाएगा! अरे, ज़हर की शक्ति तो बहुत बड़ी है, लेकिन यदि इन्कमटैक्स की एक छोटी-सी चिट्‌ठी आई हो तो अंदर घबराहट हो जाती है। साहब को गालियाँ देने लगता है। खोलकर देखे तो रिफन्ड आया हो, ऐसा होता है! *पुद्‌गल* भी चेतन को हिला देता है। सुबह उठ जाते हैं, चिंता हो जाती है, क्रोध हो जाता है, यह सब क्या है? खेत में बीज डालकर आएँ तो वह अनेक गुना होकर वापस आता है। त्यागी त्याग करते हैं, वह अनेक गुना होकर आता है।

राग से त्याग करो या द्वेष से त्याग करो, उसका 'रिएक्शन' आए बगैर रहेगा ही नहीं। *पुद्‌गल* की करामात ऐसी है कि आप जिस वस्तु का घृणापूर्वक तिरस्कार करोगे, वह वापस कभी भी नहीं मिलेगी। इस जन्म में तो शायद मिल जाए, लेकिन अलगे जन्म में नहीं मिलेगी।

परमाणुओं की अवस्था, कौन कौन-सी?

पूरा जगत् *पुद्गल* परमाणुओं से भरा हुआ है। शुद्ध स्वरूप में रहे हुए परमाणुओं को तीर्थंकर भगवान ने विश्रसा कहा है। अब संयोगों के दबाव से किसी पर गुस्सा आ जाए, तब उस समय 'मैं चंदूलाल हूँ और मैंने यह किया' ऐसा जो ज्ञान है, उसके कारण बाहर के परमाणु खिंचते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो भ्रांति से आत्मा *पुद्गल* की अवस्था में तन्मयाकार हो जाता है, उन भास्यमान परिणामों को खुद के मानता है, उससे परमाणु 'चार्ज' होते हैं। प्रयोग हुआ इसलिए इसे प्रयोगसा कहा जाता है। यह प्रयोगसा 'कॉज़ल बॉडी' के रूप में रहता है। वह अगले जन्म में फिर मिश्रसा बन जाता है अर्थात् इफेक्टिव बॉडी बन जाता है। अब 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स' के आधार पर जब यह प्रयोगसा परमाणु डिस्चार्ज होते हैं, तब कड़वे-मीठे फल देकर जाते हैं, उस समय वे मिश्रसा कहलाते हैं। डिस्चार्ज हो जाने के बाद में वापस शुद्ध होकर विश्रसा हो जाते हैं।

दान देते समय 'मैं दान दे रहा हूँ' ऐसा भाव रहता है, उस समय पुण्य के परमाणु खिंचते हैं। और खराब काम करते समय पाप के खिंचते हैं। वे फिर फल देते समय *शाता* फल देते हैं या *अशाता* (दु:ख परिणाम) फल देते हैं। जब तक अज्ञानी है तब तक फल भोगता है, सुख-दु:ख भोगता है, जब कि ज्ञानी इसे भोगते नहीं हैं, सिर्फ 'जानते' ही हैं।

पुद्गल अवस्था में आत्मा अज्ञानभाव से अवस्थित हुआ, वह प्रयोगसा है। बाद में 'व्यवस्थित' उसका फल देता है, तब मिश्रसा कहलाता है। प्रयोगसा होने के बाद में फल देना व्यवस्थित के ताबे में चला जाता है। फिर टाइमिंग, क्षेत्र, इन सभी 'साइन्टिफिक सरमकस्टेन्शियल एविडन्स' के मिलने पर रूपक में आता है। 'स्वरूप का ज्ञान' हो जाए तो खुद इस *पुद्गल* की करामात में तन्मयाकार नहीं होता, अत: नया प्रयोगसा नहीं होता। जो पुराने हैं, उनका समभाव से *निकाल* (निपटारा) करना बाकी बचता है।

परमाणु : असर अलग, कषाय अलग

यह शरीर परमाणुओं का बना हुआ है। कितने ही गरम, कितने ही ठंडे, ऐसे तरह-तरह के परमाणु हैं। गरम परमाणु उग्रता लाते हैं। ये उग्र परमाणु जब फूटते हैं, तब अज्ञान के कारण खुद उनमें तन्मयाकार हो जाता है, इसे क्रोध कहा है। लोभ कब होता है? किसी भी वस्तु को देखकर आसक्ति के परमाणु उठते हैं और उसमें आत्मा तन्मयाकार हो जाए, तब लोभ उत्पन्न होता है। किसीने 'नमस्ते-नमस्ते' किया तो मिठास, ठंडक उत्पन्न होती है और उसमें आत्मा तन्मयाकार हो जाए तो उसे मान कहते हैं। और यदि इन सभी परमाणुओं की अवस्था में आत्मा तन्मयाकार नहीं हो और अलग ही रहे तो उसे क्रोध-मान-माय-लोभ नहीं कहते। वह तो सिर्फ उग्रता कहलाती है। जिस क्रोध में *तांता* (तंत) और हिंसकभाव नहीं होते, उसे क्रोध नहीं कहते। और जहाँ पर मुहँ से कुछ बोलते-करते नहीं, लेकिन अंदर तंत और हिंसकभाव है, उसे भगवान ने क्रोध कहा है। इस तंत से ही दुनिया विद्यमान है। क्रोध का तंत, मान का तंत, कपट का तंत, लोभ का तंत- ये तंत जाएँ तो कषाय मृतपाय हो जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : 'क्रोध में आत्मा तन्मयाकार होता है', यह समझ में नहीं आया।

दादाश्री : क्रोध में प्रतिष्ठित आत्मा तन्मयाकार होता है। मूल आत्मा तन्मयाकार नहीं होता, बिलीफ़ आत्मा तन्मयाकार होता है। यह तो परमाणुओं का साइन्स है। भाना (पसंद) और नहीं भाना (नापसंद) ये परमाणुओं का इफेक्ट है। कुछ लोगों को चाय देखते ही पीने की इच्छा होती है और कुछ को तो ज़रा भी इच्छा नहीं होती, वह क्या है? अंदर से परमाणु माँगते हैं, इसलिए।

फर्स्ट *गलन*, सेकन्ड *गलन*

ये खाना-पीना वगैरह जो-जो दिखता है, वे सब पर-परिणाम हैं और फिर *गलन* के रूप में है। *गलन* के रूप को लोग ऐसा समझते हैं कि, 'मैंने खाया, मैंने पीया।'

प्रश्नकर्ता : खाया, उसे तो *पूरण* नहीं कहते?

दादाश्री : लौकिक भाषा में *पूरण* कहते हैं, लेकिन यथार्थ रूप से वह *गलन* है। खाया, वह *पूरण* किया, लेकिन वह *पूरण* वास्तव में तो फर्स्ट *गलन* है और संडास गए, वह सेकन्ड *गलन* कहलाता है। सिटी में गए तो फर्स्ट *गलन* और वहाँ से वापस आए तो वह सेकन्ड *गलन*। जो दिखता है दुनिया उसे सत्य मानती है, लेकिन इन्द्रिय ज्ञान से सत्य मानने के कारण ही तो यह जगत् चल रहा है। 'मूल स्वरूप' से तो 'ज्ञानीपुरुष' ही देख सकते हैं। जो *पूरण* होता है, उसे तो सिर्फ 'ज्ञानी' ही उनके ज्ञान में देख सकते हैं। बाकी यह पूरा जगत् *गलन* के रूप में ही है।

पुद्गल का पारिणामिक स्वरूप

पूरण-गलन सभी में होता ही रहेगा। *पूरण-गलन* में भेद नहीं है। अहंकार में भेद है। 'मैं गाँववाला हूँ, मैं साहूकार हूँ, मैं गृहस्थी हूँ, मैं त्यागी हूँ', ये अहंकार के भेद हैं। भगवान कहते हैं कि जिसने जैसा *पूरण* किया होगा, वैसा उसका *गलन* होगा। 'तू' शुद्धात्मा, उसमें किसलिए उठापटक करता है? अब रख न एक ओर! अपने किसी महात्मा का ऐसा उदय आया हो और वह पागलपन करने लगे तो हम समझ जाते हैं कि, ओहोहो! इनका कैसा *पूरण* किया हुआ है कि जिससे उसका ऐसा *गलन* आया! अतः अपने को उस पर करुणा रखनी चाहिए। सिर्फ करुणा ही उपाय है इसका।

जिसे यह *पूरण-गलन* का 'साइन्स' समझ में आ जाए, उसे विषय सुख फीके लगते हैं। यह जलेबी धूल में पड़ी हुई हो तो भी झाड़कर खा लेता है। उस घड़ी क्या उसे यह भान रहता है कि सुबह इस जलेबी की क्या दशा होगी? नहीं। क्योंकि अशुचि का भान नहीं है। यह खीर खाई हो, लेकिन उल्टी करे तो कैसा दिखेगा? अंदर यह सारा अशुचि का ही संग्रहस्थान है। लेकिन ऐसी पारिणामिक दृष्टि उत्पन्न होनी चाहिए न?

पुद्गल, परमाणु के रूप में कैसा है?

प्रश्नकर्ता : विज्ञान ऐसा कहता है कि शरीर के परमाणु प्रति क्षण बदलते रहते हैं।

दादाश्री : सही बात है। मन के परमाणु भी बदलते रहते हैं। 'डिस्चार्ज' अर्थात् हर सेकन्ड पर बदलना और फिर नया घुस जाता है। लेकिन जो चार्ज हो चुका है, वही निकलता है। परमाणु कम या ज़्यादा नहीं होते। जो इकट्ठे हो चुके थे, वही बिखरते हैं, और वापस नये इकट्ठे होते जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : आत्मा की अनंत शक्तियाँ हैं। अनंत सुखधाम है, वे शक्तियाँ *पुद्गल* के अधीन हैं या स्वतंत्र हैं?

दादाश्री : आत्मा की जो शक्तियाँ हैं, वे स्वतंत्र शक्तियाँ हैं।

प्रश्नकर्ता : मोक्ष में जाने के लिए *पुद्गल* की शक्तियों की ज़रूरत पड़ती है क्या?

दादाश्री : *पुद्गल* के माध्यम से आत्मा का ज्ञान प्रकट होता है। श्रुतज्ञान, मतिज्ञान, अवधिज्ञान-ये सभी ज्ञान *पुद्गल* के माध्यम से प्रकट होते हैं। जैसे कि ३ नंबर के काँच में से अलग दिखता है, ४ नंबर के काँच में से अलग दिखता है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी की स्थिति में *पुद्गल* कैसा कार्य करता है?

दादाश्री : *पुद्गल* शब्द है, उसी रूप में कार्य करता है। आपके और हमारे *पूरण-गलन* में कोई फर्क नहीं है। जिस प्रकार का आपको बताता हूँ, वही तरीक़ा मेरा भी रहता है। मात्र इतना ही फर्क है कि आपको आपके अंतराय बाधा डालते हैं।

प्रश्नकर्ता : परमाणु अलग-अलग हैं या एक ही प्रकार के?

दादाश्री : जिस प्रकार आत्मा एक ही प्रकार के हैं, उसी प्रकार परमाणु एक ही प्रकार के हैं। यह जो फर्क दिखता है, वह स्थान बदलने के कारण है। स्थान बदलने के कारण भाव में परिवर्तन हो जाता है और भाव बदलने के कारण यह सारा जगत् उत्पन्न हुआ है।

जैसा ज्ञान जिन संयोगों में देखता है वैसा ही सीखता है। जैसा चान्स मिले, उसके अनुसार सीखता है। और यह चान्स एक्सिडेन्टली नहीं मिलता।

वह तो 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स' के आधार पर मिलता है। ऐक्सिडेन्स जैसा इस जगत् में कुछ है ही नहीं। लोगों को लगता है कि यह ऐक्सिडेन्ट है।

प्रश्नकर्ता : परमाणु वही के वही रहते हैं या बदल जाते हैं?

दादाश्री : परमाणु बदल जाते हैं। वर्ना आप श्याम वर्ण के किस तरह से हो गए! परमाणु ही हमारा सब खुला कर देते हैं कि यह लुच्चा है, बदमाश है, चोर है, क्योंकि परमाणु उसी रूपवाले हो जाते हैं। जैसे भाव 'उसे' होते हैं, वे परमाणु उसी रूपवाले हो जाते हैं। क्रोध करते समय शरीर ऐसे काँप जाता है। उस समय पूरे शरीर से परमाणु अंदर खिंचते हैं। ज़बरदस्त रूप से खिंचते हैं।

प्रश्नकर्ता : *पुद्‌गल* के अलावा और किसीके परमाणु हैं क्या?

दादाश्री : *पुद्‌गल* के अलावा और किसीके परमाणु नहीं हैं। यह जो दिखता है, अनुभव में आता है, वह सब *पुद्‌गल* का खेल है।

प्रश्नकर्ता : परमाणुओं में चेतन स्वरूप है क्या?

दादाश्री : परमाणु चेतनवाले हो गए हैं, चेतनभाव को प्राप्त करके चेतनवाले हो जाते हैं। जैसा *पूरण* हुआ है, वैसा *गलन* होगा। जैसे भाव करेगा वैसा *गलन* होगा। *गलन* होते समय आपको कुछ करना नहीं पड़ेगा, अपने आप ही होता रहेगा। इस देह में जो परमाणु हैं, वे सभी चेतनभाव को प्राप्त हैं, मिश्रचेतन हो चुके हैं।

प्रश्नकर्ता : जब बाहर रहते हैं, तब तक चेतनभाव सहित होते हैं या अंदर घुसने के बाद?

दादाश्री : जब तक बाहर हैं, तब तक विश्रसा परमाणु कहलाते हैं। अंदर घुसने के बाद वे प्रयोगसा, और जब फल देते हैं तब मिश्रसा कहलाते हैं।

प्रश्नकर्ता : आत्महेतु के लिए जो साधन होते हैं, उनसे शुद्ध परमाणु ही प्रविष्ट होते हैं न?

दादाश्री : हाँ, वे बहुत उच्च परमाणु होते हैं। जो आत्मा का ठेठ तक का हेतु पूरा कर देते हैं। और अन्य सभी सहूलियतें भी पूरी कर देते हैं। आत्महेतु के लिए जो-जो किया जाता है, उसे चक्रवर्ती जैसी सहूलियतें मिलती है।

इसमें आत्मा का कर्तापन है?

प्रश्नकर्ता : यह जो जगत् चल रहा है, उसमें *पुद्गल* का क्या स्थान है?

दादाश्री : *पुद्गल* की खुद की ऐसी अलग-अलग शक्तियाँ हैं कि वे आत्मा को आकर्षित करती हैं। उन शक्तियों से ही मार खाई है न हमने और 'हम' आत्मा हैं, और इस *पुद्गल* की शक्ति को समझने निकले हैं कि यह क्या है? कौन-सी शक्ति है? अब इसमें वही खुद फँस गए! परमात्मा खुद ही फँस गए। परमात्मा अरूपी हैं और रूपी परमाणुओं की अधातु ज़ंजीरों में बंदी हो गए हैं!!! अब किस तरह से छूटेंगे? खुद के स्वरूप का भान हो जाए, तब छूटेंगे।

प्रश्नकर्ता : आत्मा फँसा है, वह भी नैमित्तिक फँसा है न?

दादाश्री : हाँ! *पुद्गल* कर्ता स्वभाव का है, क्रियाकारी है, लेकिन वह स्वतंत्र रूप से कर्ता माना ही नहीं जा सकता न! उसके साथ चैतन्य की उपस्थिति होनी चाहिए। *पुद्गल* के धक्के से आत्मा कर्ता हो गया। *पुद्गल* का दख़ल नहीं होता तो कुछ भी नहीं था। अत: आत्मा को नैमित्तिक कर्ता कहा है।

'डिस्चार्ज', परसत्ता के अधीन

प्रश्नकर्ता : खाते समय खाने में कंट्रोल नहीं रहता।

दादाश्री : खाते समय खाता रहता है, वह *पुद्गल* का स्वभाव है। *पुद्गल, पुद्गल* को खींचता है। पाँच सौ लोग खाने बैठें और उसमें कोई एटिकेटवाला साहब हो, और उसे यदि कहें कि 'भोजन के लिए बैठिए' तो वह 'ना, ना' करता है। लेकिन बैठने के बाद यदि चावल देने में थोड़ी

देर लग जाए तो भी दाल में हाथ डालता रहता है, सब्ज़ी में हाथ डालता रहता है! क्योंकि वह *पुद्गल* का स्वभाव है।

प्रश्नकर्ता : *पुद्गल* की सत्ता है न?

दादाश्री : *पुद्गल* की सत्ता नहीं है। *पुद्गल* 'व्यवस्थित' के अधीन है।

प्रश्नकर्ता : फिर तो कर्म जैसा कुछ रहा ही नहीं न? पाप-पुण्य भी नहीं रहा न?

दादाश्री : सही बात है। 'मैं करता हूँ', ऐसा आरोपित भाव ही कर्म है, उसीमें से पुण्य-पाप है। कर्ताभाव गया तो कर्म गए।

प्रश्नकर्ता : परमाणु विज़िबल हैं?

दादाश्री : परमाणु केवलज्ञान से विज़िबल हैं।

प्रश्नकर्ता : कर्म का जो *भोगवटा* (सुख-दुःख का असर) आता है, वह 'व्यवस्थित' के ताबे में है?

दादाश्री : हाँ, वह 'व्यवस्थित' के ताबे में है। *पुद्गल* की सत्ता भी 'व्यवस्थित' के अधीन है। *पुद्गल* की स्वाभाविक सत्ता नहीं है। यदि *पुद्गल* स्वतंत्र रूप से सत्ताधीश होता, तब तो किसीको भूख लगती ही नहीं न!

जब अविरत स्थिरता रहे, तब शुद्ध विश्रसा होती है। जब तक प्रयोगसा परमाणु हैं, तब तक वाणी बदलने की सत्ता है। लेकिन मिश्रसा होने के बाद किसीका भी नहीं चलता।

प्रश्नकर्ता : बदलने की वह सत्ता किस तरह काम करती है?

दादाश्री : हमने किसीको गाली दी हो तो उसके परमाणु अंदर बंध जाते हैं। जैसे भाव से बंधे हों, उन परमाणुओं के हिसाब से फिर अंदर बैटरियाँ तैयार हो जाती हैं। ये तो बैटरियाँ ही चार्ज होती हैं, लेकिन हम अगर थोड़ी देर बाद ऐसा बोलें कि, 'भाई मैंने यह गाली दे दी, वह मेरी बहुत बड़ी भूल हो गई।' तो पहलेवाला मिट जाएगा। लेकिन प्रयोगसा से

मिश्रसा हो जाने के बाद में किसीका नहीं चलता, फिर उसे भोगना ही पड़ता है।

विभाविक *पुद्गल* से जग ऐसा दिखे

आत्मा से जिस-जिस *पुद्गल* का स्पर्श हुआ, वह विभाविक हुआ कहलाएगा। देहधारी मात्र में साथ-साथ होते हैं जब कि स्वाभाविक *पुद्गल* की अवस्थाएँ बदलती रहती है। यह देह अनंत परमाणुओं से बनी हुई है, लेकिन वे विभाविक परमाणुओं की है। जब कि बाहर जो अन्य सब परमाणु हैं, वे स्वाभाविक परमाणु हैं।

जो मूल स्वभाविक *पुद्गल* है, वह परमानेन्ट है। यह विभाविक *पुद्गल* टेम्परेरी है। जो विशेष भाव से परिणामित हुआ है, वह टेम्परेरी है। मूल स्वभाववाला *पुद्गल* परमाणु स्वरूप से है, वह परमानेन्ट है।

प्रश्नकर्ता : विशेष भाव से किसलिए परिणामित होता है?

दादाश्री : आत्मा को यह सब मिलने से। 'सामीप्य भाव' उत्पन्न होने से विशेष भाव उत्पन्न होता है। और उससे *पुद्गल* में भी विशेष भाव उत्पन्न हुआ है। असल *पुद्गल* तो परमाणु के रूप में होता है, अर्थात् स्कंधरूप से होता है लेकिन वह 'रियल' है। जब कि विशेष भाव यानी कि इसमें मिक्स्चर भाव है।

प्रश्नकर्ता : कौन-से कारण से स्त्री को स्त्री-देह और पुरुष को पुरुष-देह मिलती है।

दादाश्री : यह बॉडी क्रोध-मान-माया-लोभ के परमाणुओं से ही बनी हुई है। पुरुष की देह में मान और क्रोध के परमाणु अधिक होते हैं और स्त्री की देह में कपट और लोभ के परमाणु अधिक होते हैं। किसी पुरुष में जब कपट और मोह के परमाणु बढ़ जाते हैं तो वह अगले जन्म में स्त्री बनता है। और यदि स्त्री के कपट और लोभ कम हो जाएँ और क्रोध और मान बढ़ जाएँ तो वह दूसरे जन्म में पुरुष बनती है। स्त्री हमेशा के लिए स्त्री नहीं है। आत्मा, आत्मा है और परमाणु सारे बदलते रहते हैं।

यह जो अच्छा-बुरा दिखता है, वह *पुद्गल* की विभाविक अवस्था है, उसके विभाग मत करना कि यह अच्छा है और यह बुरा है। इन द्वन्द्ववालों ने विभाजित किया है। ये विकल्प हैं। निर्विकल्पी को अच्छा-बुरा दोनों ही 'विभाविक अवस्था' दिखती है।

परमाणुओं की सूक्ष्मता, कितनी?!

प्रश्नकर्ता : स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम इन सबकी बाउन्ड्री कौन-सी?

दादाश्री : स्थूल तो वह है जो इन सब डॉक्टरों को दिखता है। बड़े-बड़े दूरबीन और माइक्रोस्कोप से दिखता है, वह भी स्थूल ही कहलाता है। विश्रसा सूक्ष्मतम है और प्रयोगसा सूक्ष्मतर, और जो परमाणु खिंचकर परिणामित होकर अंदर इकट्ठे हो गए, वे मिश्रसा परमाणु सूक्ष्म कहलाते हैं। मिश्रसा, वह इफेक्टिव बॉडी है और प्रयोगसा कारणदेह है।

प्रश्नकर्ता : ये 'साइन्टिस्ट' जिन्हें 'ऐटम्स' और 'इलेक्ट्रॉन्स' कहते हैं, वे किस हद तक की सूक्ष्मता कहलाती है?

दादाश्री : वह सब स्थूल में जाता है। वैज्ञानिकों ने जितनी-जितनी खोज की हैं, वे सभी स्थूल में कही जाएँगी। 'ज्ञानीपुरुष' जिन परमाणुओं की बात करते हैं, उन्हें सिर्फ केवली ही देख सकते हैं।

पुद्गल, तत्वस्वरूप से अविनाशी

प्रश्नकर्ता : आत्मा सत्य है, ऐसा क्यों कहते हैं? *पुद्गल* क्या है?

दादाश्री : आत्मा सत्य नहीं है, लेकिन सत् है। *पुद्गल* भी सत् है। *पुद्गल* के गुणधर्म हैं, और पर्याय भी हैं। लेकिन पर्याय बदलते रहते हैं। पर्याय विनाशी हैं। आत्मा खुद वस्तु के रूप में है, स्वतंत्र है, गुणधर्म सहित है। सत्-आत्मा ही परमात्मा कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : *पुद्गल* सत् है, वह किस तरह से?

दादाश्री : आत्मा सत् है, *पुद्गल* भी सत् है। आत्मा अविनाशी है। *पुद्गल* भी अविनाशी है। आत्मा के पर्याय हैं, *पुद्गल* के भी पर्याय हैं।

आत्मा के पर्याय उसके खुद के प्रदेश में रहकर बदलते हैं। आत्मा सत्-चित्-आनंद रूपी है! और चित्-आनंद *पुद्गल* का गुणधर्म नहीं है। *पुद्गल* सत् है। *पुद्गल पूरण-गलन* स्वभाव का है। जो-जो वस्तु के रूप में हो, गुण के रूप में हो और स्वतंत्र और अविनाशी हो, उसे सत् कहते हैं।

पुद्गल भाव, वियोगी स्वभाव के

दो प्रकार के भाव हैं। एक आत्मभाव, दूसरा *पुद्गल*भाव। सभी *पुद्गल* भाव आकर चले जाते हैं। वे विनाशी होते हैं, वे खड़े नहीं रहते। १५ मिनट में या १० मिनट में या आधे घंटे में चले जाते हैं। ये सभी संयोगी भाव हैं। हमें जिनका संयोग होता है, वे संयोगी भाव हैं। वे सभी संयोगी भाव वियोगी स्वभाव के हैं। हमें उन्हें निकालना नहीं है, अपने आप ही चले जाएँ तो ठीक। खराब विचार आते हैं तब कहना, 'आओ भाई, तुम्हारा ही घर है।' जितना किराया लिया है, उतने समय तक उन्हें रहने देना पड़ेगा! खराब विचार वे संयोगी भाव है, अतः वे अपने आप ही चले जाएँगे।

ज्ञानी के बिना, यह समझ में किस तरह आए?

मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार के जो-जो परिणाम आते हैं, मन में विचार आते हैं, बुद्धि से दर्शन में दिखता है वगैरह, सभी *पुद्गल* भाव हैं। जो इस *पुद्गल* भाव को जानता है, वह आत्मभाव है।

तमाम शास्त्रों का ज्ञान यही है। यह समझ में नहीं आता इसलिए पूरे शास्त्र रट लेता है। लेकिन क्या हो? यह भूल किस तरह से निकले? 'ज्ञानी' के अलावा यह भूल कौन मिटाए?

...उसमें तन्मयाकार हुए तो जोखिमदारी

क्रोध-मान-माया-लोभ-ये *पुद्गल* भाव हैं। ये घटते-बढ़ते हैं और आत्मा का स्वभाव ऐसा अगुरु-लघु है जो बढ़ता नहीं और घटता भी नहीं। अर्थात् जो क्रोध-मान-माया-लोभ होते हैं, उसे हमें 'देखते' रहना है कि 'ओहोहो! यह बढ़ा, यह घटा!' तो 'हम' उससे जुदा रहे। फिर 'हम' जोखिमदार नहीं है। *पुद्गल*भाव में तन्मयाकार हुए तो आपकी जोखिमदारी

है, आपने हस्ताक्षर कर दिए। हस्ताक्षर नहीं किए, तन्मयाकार नहीं हुए तो छूट गए, भगवान ऐसा कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : *पुद्गल* भाव में तन्मयाकार हुए या नहीं, खुद को उसका एक्ज़ेक्टली किस तरह पता चलता है?

दादाश्री : मुँह बिगड़ जाता है, मन बिगड़ जाता है, ऐसा सब असर हो जाता है। इसके बावजूद भी ऐसा असर हो तो भी 'हम' जुदा रह सकते हैं। वह आपको 'खुद' को ही पता चलता है। *पुद्गल* भाव में तन्मयाकार होते ही अंदर दो-चार डंडे पड़ते हैं तो तुरन्त पता चल जाता है कि यहाँ पर 'अपनी' बाउन्ड्री पार कर ली।

मन, मन का धर्म अदा करता है, बुद्धि, बुद्धि का धर्म अदा करती है, अहंकार, अहंकार धर्म अदा करता है। वे सभी *पुद्गल* भाव हैं, वे आत्मभाव नहीं है। इन सभी *पुद्गल* भावों को 'हमें' देखना और जानना है, वह आत्मभाव है। ज्ञाता-दृष्टा और परमानंद वही आत्मभाव है। *पुद्गल*भाव तो अंतहीन हैं। लोग *पुद्गल*भाव में ही फँसे हुए हैं।

[४]

स्वसत्ता - परसत्ता

खुद की सत्ता कितनी होगी?!

इस वर्ल्ड में कोई भी ऐसा मनुष्य पैदा नहीं हुआ कि जिसकी संडास जाने की खुद की स्वतंत्र शक्ति हो! वह तो जब रुक जाए, तब पता चलता है कि मेरी शक्ति थी ही नहीं। नींद नहीं आए, तब पता चलता है कि सोने की शक्ति मेरी नहीं है। उठना हो उस समय भी यदि उठा नहीं जाए, तब पता चलता है कि यह शक्ति भी मेरी नहीं है। यह सबकुछ जो संसार में हो रहा है, वह 'अपनी' सत्ता में नहीं है। 'अपनी' सत्ता संपूर्ण है, लेकिन उसे जानते नहीं है। और परसत्ता को ही स्वसत्ता मानते हैं। भगवान के पास ऐसी कोई सत्ता है ही नहीं।

जब तक खुद के स्वरूप का भान नहीं हो जाता, तब तक सबकुछ बेकार है। 'मार्केट मटीरियल' है। इसका क्या 'इगोइज़म' रखना? और यदि 'इगोइज़म' रखने जैसा हो तो सिर्फ 'ज्ञानीपुरुष' को रखने जैसा है कि जिनके पास पूरे ब्रह्मांड की सत्ता होती है। और तब उनमें 'इगोइज़म' ही नहीं रहता। जहाँ पर सत्ता नहीं है, वहाँ पर 'इगोइज़म' है और जहाँ पर सत्ता है, वहाँ पर 'इगोइज़म' नहीं है। 'ज्ञानीपुरुष' तो बालक जैसे होते हैं।

सत्ता, पुण्य से प्राप्त...

जगत् का नियम ऐसा है कि जिस सत्ता के प्राप्त होने पर उसका थोड़ा-सा भी दुरुपयोग हो, तो वह सत्ता चली जाती है।

सत्ता के सदुपयोग का नाम करुणा है और सत्ता का दुरुपयोग अर्थात् वह फिर राक्षसी वृति कहलाती है। सत्ता किसलिए है? पुण्य से सत्ता

मिलती है। किन्हीं पाँच लोगों के आप *ऊपरी* (बॉस, वरिष्ठ मालिक) बने हो, तो वह आपका पुण्य रहा होगा तभी बन सकते हो नहीं तो नहीं बन सकते।

लोग पूछते-पूछते आते हैं कि 'प्रिन्सिपल साहब हैं क्या? प्रिन्सिपल साहब हैं क्या?' पूछते हैं न!

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : वह इसलिए है कि पुण्य है। नहीं तो कोई बाप भी नहीं पूछे, न जाने कहाँ खजांची की नौकरी में हिसाब लिख रहे होते! 'आपको' अब चंदूभाई से कहना है कि 'सत्ता का उपयोग किसलिए करते हो? ज़रा करुणा रखो न!'

प्रश्नकर्ता : आपका ज्ञान मिलने के बाद मैं ऐसा ही करता हूँ।

...लेकिन वह सारी परसत्ता

दादाश्री : आपके हाथ में कौन-कौन-सी सत्ता है?

प्रश्नकर्ता : एक भी नहीं।

दादाश्री : इसका क्या कारण है? 'आप कौन हो', यही आप जानते नहीं हो। आप चंदूभाई को ही 'मैं हूँ' ऐसा मानते हो। वह तो परसत्ता है। उसमें आपका क्या है? आप परसत्ता के अधीन हो। ठेठ तक परसत्ता है, लट्टू है! सबकुछ 'व्यवस्थित' के अधीन है।

खाते हो, पीते हो, विवाह में जाते हो, वह परसत्ता के अधीन है। जो क्रोध-मान-माया-लोभ हो जाते हैं, वे परसत्ता के अधीन हो जाते हैं। आपकी स्वसत्ता आपने देखी नहीं है, उसका आपको भान नहीं है। स्वसत्ता का भान हो जाए तो वह खुद परमात्मा बन सकता है। एक क्षण के लिए भी स्वसत्ता का भान हो जाए तो वह परमात्मा बन जाए!

यह बोलने की शक्ति भी मेरी नहीं है। यह जो बोलता है वह 'टेपरिकार्ड' है और आप बोलते हो तो आपका भी यह 'टेपरिकार्ड' है। आप 'इगोइज़म' करते हो और मैं 'इगोइज़म' नहीं करता, इतना ही फर्क है।

जीव किसलिए जलता है? खुद की जगह पर बैठे तो कोई भी *उपाधि* (बाहर से आनेवाले दुःख) नहीं है। दूसरों के घर में हो तो डर नहीं लगता? आप परक्षेत्र में बैठे हो, पर के स्वामी बनकर बैठे हो और परसत्ता की सत्ता का उपयोग करते हो। 'स्व' को, स्वक्षेत्र को और स्वसत्ता को जानते ही नहीं।

परसत्ता को जानना, वहाँ पर स्वसत्ता

प्रश्नकर्ता : स्वसत्ता में रहकर मनुष्य अर्थ का मालिक क्यों नहीं बन सकता?

दादाश्री : कौन-से अर्थ का?

प्रश्नकर्ता : रिद्धि-सिद्धि और स्टेटस के अर्थ का मालिक क्यों नहीं?

दादाश्री : 'खुद' उसका मालिक है ही नहीं। वे सब टेम्परेरी चीज़ें हैं। वे तो अपने आप, उनका उदय आता है और प्रकट होती हैं, लेकिन वह ज्ञान का धर्म नहीं है।

प्रश्नकर्ता : स्थितप्रज्ञ दशा में संयोगों का मालिक बनता है न?

दादाश्री : जब तक किसीका भी मालिक है, तब तक स्थितप्रज्ञ दशा नहीं आ सकती। मालिकीपन छूट जाना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : साथ ही गुलाम भी नहीं रहना चाहिए न?

दादाश्री : गुलाम है ही नहीं, चंदूलाल गुलाम है। तू खुद किसका गुलाम है? देहधारी मात्र गुलाम ही है। सभी 'व्यवस्थित' के गुलाम हैं। तू, 'शुद्धात्मा' गुलाम है ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : ईश्वर यह सबकुछ खुद के अंकुश में क्यों नहीं ले लेता?

दादाश्री : यह कुछ भी लेना ईश्वर के हाथ में है ही नहीं!

प्रश्नकर्ता : दिल क्यों क़ाबू में नहीं रहता?

दादाश्री : क़ाबू में कुछ भी रखना ही नहीं है। वह रहेगा भी नहीं। वह परसत्ता है। उसे तो 'जानते' रहना है कि इस तरफ क़ाबू में रह रहा है और इस तरफ क़ाबू में नहीं रहता। जो जानता है, वह आत्मा है।

वाह ! ज्ञानी ने स्वसत्ता किसे कहा!!

प्रश्नकर्ता : 'प्रति क्षण स्वसत्ता में रहकर स्वसत्ता का उपभोग करूँ', तो स्वसत्ता तो आपने दे ही दी है, इसका उपयोग किस तरह से करूँ? और परसत्ता में प्रवेश न करूँ तो वह किस प्रकार से? यह विस्तार से समझाइए।

दादाश्री : तमाम क्रियामात्र परसत्ता है। क्रियामात्र और क्रियावाला ज्ञान परसत्ता है। जो ज्ञान अक्रिय है, ज्ञाता-दृष्टा और परमानंदी है, जो इस सारे क्रियावाले ज्ञान को जानता है, वह अपनी स्वसत्ता है, और वही 'शुद्धात्मा' है।

प्रश्नकर्ता : संसारी लोगों को स्वसत्ता का उपयोग किस तरह से करना चाहिए?

दादाश्री : ज्ञाता-दृष्टा और परमानंदी रहना चाहिए। मन-वचन-काया स्वभाव से ही इफेक्टिव हैं। सर्दी का इफेक्ट होता है, गर्मी का इफेक्ट होता है, आँखें कुछ खराब देखें तो घिन होती है, कान कुछ खराब सुनें तो असर होता है। तो इन सब इफेक्ट्स को हम जानते हैं। यह सब 'फॉरेन डिपार्टमेन्ट' का है, और अपना 'होम डिपार्टमेन्ट' है।

प्रश्नकर्ता : स्वसत्ता सर्वोपरि होती है?

दादाश्री : इस सत्ता में तो कोई *ऊपरी* है ही नहीं। जहाँ परमात्मा भी *ऊपरी* नहीं हो, उसे सत्ता कहते हैं।

ज्ञानी के माध्यम से, स्वसत्ता प्रकट होती है

मैंने आपमें आपकी परमात्मशक्ति ओपन कर दी है। वही संपूर्ण सत्ता है। जिस सत्ता पर से कोई उठा दे, उसे सत्ता कहेंगे ही कैसे? स्वसत्ता के

सामने तो परमात्मा भी कुछ नहीं कह सकते। अभी आपके पास जो धन है, वह परमात्मा के पास भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : वह किस तरह?

दादाश्री : परमात्मा के पास रिकॉर्ड नहीं है। बोलने-चलने की अन्य मिकेनिकल शक्ति नहीं है। अत: वह दूसरों का कुछ भी कल्याण नहीं कर सकते! जब कि आप स्वसत्तासहित रहकर लोगों का कल्याण कर सकते हो! इसलिए बात को समझो। करना कुछ भी नहीं है। जहाँ-जहाँ पर करना है, वह मरता है और जहाँ समझना है, वहाँ पर मुक्त है। अपना कोई घोर अपमान करे तो उसकी वह सत्ता अपने पर चढ़ बैठनी नहीं चाहिए। अपमान तो क्या लेकिन नाक काट ले, तो भी किसी दूसरे की सत्ता को मान्य नहीं करें! (खुद पर) उसका असर नहीं होने दें।

अब आत्मा प्राप्त होने के बाद में क्या? जितना-जितना शुद्ध उपयोग रहेगा, उतनी स्वसत्ता उत्पन्न होगी और संपूर्ण स्वसत्ता उत्पन्न हो गई तो वह भगवान बन गया! *पुद्गल* परसत्ता में है, और आत्मा भी, जब तक स्वरूप का ज्ञान नहीं हो जाता, तब तक परसत्ता में ही है। ज्ञानी मिल जाएँ और आत्मा स्वसत्ता में आ जाए, उसके बाद फिर *पुद्गल* का ज़ोर नरम पड़ता है अथवा वह मृतप्राय हो जाता है। जैसे-जैसे पुरुषार्थ बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे *पुद्गल* नरम पड़ता जाता है। एक घंटे शुद्धात्मा पद में बैठकर प्रतिक्रमण करो तो स्वसत्ता का अनुभव होगा।

[५]

स्वपरिणाम - परपरिणाम

स्वपरिणति अर्थात्...

परिणति का मतलब क्या है? जो स्वाभाविक रूप से होता ही रहे, जिसमें कुछ भी करना नहीं पड़े, वह। इस *पुद्गल* की जो क्रियाएँ 'व्यवस्थित' करता है, उसमें 'मैं कर रहा हूँ' ऐसा भान उत्पन्न नहीं होना चाहिए। ये 'व्यवस्थित' के परिणाम हैं, उन्हें भगवान ने परपरिणाम कहा है। परपरिणाम को खुद 'मैं कर रहा हूँ' ऐसा मानना, वही परपरिणति कहलाता है। और उसीसे संसार है। स्वपरिणति को भगवान ने मोक्ष कहा है।

प्रश्नकर्ता : स्वपरिणति का अर्थ क्या है?

दादाश्री : 'चंदूलाल' जो कुछ करता है, वह 'व्यवस्थित' करवाता है, उसे 'हमें' 'देखते' रहना है, उसी को स्वपरिणति कहते हैं। अच्छे-बुरे की झंझट नहीं करनी है। उसमें राग भी नहीं करना है और द्वेष भी नहीं रखना है।

ज्ञानी के पास से समझ लेने जैसा है

दुनिया के लोगों को यदि समझाएँ कि यह परपरिणति है और यह स्वपरिणति है, ऐसा उन्हें सिखाएँ, गाने को कहें तो फिर भी वापस घर जाकर भूल ही जाएँगे! वह तो जब तक कषायभावों को 'ज्ञानीपुरुष' निर्मूल नहीं कर देते, तब तक काम नहीं हो पाता। कषायभावों से जगत् विद्यमान है। कषायरूपी कड़ी से आत्मा बँधा हुआ है। जिन्होंने कषायों को जीत लिया है, वे अरिहंत कहलाए।

ज्ञानीपुरुष ज्ञान देते हैं, तब कषाय चले जाते हैं और फिर स्वपरिणाम और परपरिणाम को स्पष्ट समझा देते हैं। बाकी सिखाते रहने से कुछ भी नहीं होता। तुरन्त भूल जाते हैं। एक बड़ा तालाब हो और उसमें बहुत काई जमी हुई हो, उसमें बड़ा पत्थर डालो, २०-२५ फुट का घेरा बन जाता है। लेकिन फिर थोड़ी देर में जैसा था, वैसे का वैसा ही हो जाता है। अतः कुछ हो नहीं पाता। यह तो ऐसा है कि सारी काई को एक बार में ही हटा दे, तभी क़ाबू में आता है। फिर उसका बहुत ज़ोर नहीं चलता।

प्रश्नकर्ता : वह तो मुश्किल है।

दादाश्री : नहीं, ज्ञानीपुरुष यह सब कर देते हैं, लेकिन आपको यहाँ पर हमारे पास बैठकर बात को समझ लेना है, स्वपरिणति और परपरिणति कौन-कौन-सी है, उसे समझ लेना है।

जब तक अज्ञान, तब तक परपरिणति

कुछ लोग कहते हैं कि इस व्यक्ति की परिणति ठीक नहीं है। लेकिन परपरिणति चीज़ ही अलग है, इस शब्द का लोग हर कहीं उपयोग कर लेते हैं। धर्म में अथवा अन्य कहीं परपरिणति शब्द का उपयोग नहीं कर सकते। (सत्संग) व्याख्यान में जाकर वहाँ संसार के विचार आएँ तो उसे परपरिणति मानते हैं और धर्म के कार्य को स्वपरिणति मानते हैं। लेकिन मूलतः वे खुद ही परपरिणति में हैं। जब तक आत्मपरिणति उत्पन्न नहीं हुई, तब तक निरंतर *पुद्‌गल* परिणति ही रहती है, और तब तक उसे *पुद्‌गल* परिणति की भिन्नता किस तरह समझ में आएगी? 'मैं हूँ', 'मेरा है', कहते ही दोनों धाराएँ एक हो जाती हैं।

ज्ञानी को, निरंतर स्वपरिणति बर्ते

प्रश्नकर्ता : दादा, आपको जब भी देखे तब आप ऐसे ही मुक्त, अच्छे मूड में ही दिखते हैं। इसका क्या कारण है?

दादाश्री : हम एक क्षण के लिए भी परपरिणति में नहीं रहते। स्वपरिणति में ही होते हैं। यदि सिर्फ एक घंटे के लिए भी मुझे परपरिणति उत्पन्न हो जाए तो मेरे मुँह पर आपको बदलाव दिखेगा, 'ज्ञानी' को

परपरिणति होती ही नहीं है। यह पूरे वर्ल्ड का आश्चर्य है कि निरंतर वे स्वपरिणति में रहते हैं! एक क्षण के लिए भी यदि कोई स्वपरिणति में आ गया तो उसे शास्त्रकारों ने बहुत बड़ा पद दिया है! कृपालुदेव ने कहा है कि, 'ज्ञानीपुरुष देहधारी परमात्मा हैं।' इसीलिए तो कहा है कि और कहाँ पर परमात्मा को ढूँढ रहा है! जो देहधारी के रूप में आए हैं, ऐसे ज्ञानीपुरुष को ढूँढो। देहधारी परमात्मा किसे कहते हैं? कि जिसे परपरिणति हो ही नहीं, निरंतर स्वपरिणति में ही रहे, वह।

पुरुषार्थ, स्वपरिणति में बर्तने का

भगवान को स्वपरिणति रहती थी। हमें भी स्वपरिणति रहती है। पर-परिणाम को खुद का परिणाम नहीं कहते। आपसे भी हम स्वपरिणति में ही रहने के लिए ऐसा कहते हैं कि 'आपको' 'चंदूलाल' के साथ में व्यवहार संबंध रखना चाहिए। अन्य किसीके साथ व्यवहार रहा या नहीं भी रहा तो क्या? अन्य लोग तो 'अपने' कमरे में सोने नहीं आते हैं। जब कि ये 'चंदूलाल' तो साथ में ही सो जाएँगे। अत: उनके साथ व्यवहारिक संबंध रखना। सिर या पैर दु:ख रहा हो तो दबा देना। बातचीत करके आश्वासन देना। क्योंकि पड़ोसी है न?

ये कौन-से द्रव्य के परिणाम हैं, वह समझ लेना है। *पुद्‌गल* द्रव्य के या चेतन द्रव्य के परिणाम हैं, उसे समझ लेना है। चोंच डूबोते ही परपरिणाम और स्वपरिणाम जुदा हो जाने चाहिए।

जब हम ज्ञान देते हैं, उसके बाद परपरिणति बंद हो जाती है। लेकिन देखना नहीं आता है इसलिए मन के, बुद्धि के हंगामों में फँस जाता है और उलझता रहता है, सफोकेशन का अनुभव करता है। आपको तो बस इतना ही देख लेना है कि कौन-सी परिणति है, स्व या पर। बाहर भले ही पाकिस्तान लड़ रहा हो, हर्ज नहीं है। इस प्रकार से जिसे स्वपरिणति उत्पन्न हो गई, उसे परपरिणाम स्पर्श ही नहीं करते। ये मन के, बुद्धि के, चित्त के स्पदंन उत्पन्न होते हैं, वे *पूरण-गलन* है। उनके साथ अपना लेना-देना नहीं है। इसमें आत्मा कुछ करता ही नहीं, *पुद्‌गल* ही करता है।

सुबह से उठे, तभी से *पुद्गल,* उसके परिणाम में होता है और आत्मा उसके परिणाम में होता है। लेकिन यदि कभी मन अधिक स्पदंन कर रहा हो और ऐसा कहे कि, 'मुझे ऐसा क्यों हो रहा है?' तो फिर वापस वह भूत चिपटा! अत: 'हमें' उसे देखते रहना है और जानना है कि अभी तूफान ज़रा अधिक है। ६५ मील की स्पीड से हवा चले तो क्या घर-बार छोड़कर भाग जाएँगे? वह तो चलती ही रहेगी। मोक्षमार्ग में जाते हुए तो बहुत-बहुत चक्रवात आएँगे, लेकिन वे बाधक नहीं है।

जिसे ये बाहर के परपरिणाम पसंद नहीं हैं, यूज़लेस लगते हैं और उन्हें वह खुद के परिणाम नहीं मानता है, वही आत्मा की हाज़िरी है। वही स्वपरिणाम है।

वह भेदविज्ञान तो ज्ञानी ही प्राप्त करवाते हैं

दोनों द्रव्य निज-निज रूप में स्थित होते हैं। *पुद्गल, पुद्गल* के रूप में परिणमित होता रहता है और चेतन, चेतन के परिणाम की भजना करता रहता है। दोनों ही अपने-अपने स्वभाव को छोड़ते नहीं हैं, वह तो जब 'ज्ञानीपुरुष' उन्हें अलग कर दें, उसके बाद ही! जब तक अलग नहीं हो जाएँ, तब तक अनंत काल तक भटकते रहेंगे, फिर भी कुछ ठिकाना नहीं पड़ेगा। यह भेदविज्ञान है। जगत् के तमाम शास्त्रों से भी बड़ा विज्ञान, यह भेदविज्ञान है। शास्त्रों में तो क्या है कि यह करो और वह करो, ऐसे सभी क्रियाएँ, कर्मकांड लिखे हुए हैं। लेकिन भेदविज्ञान तो अलग ही चीज़ है। वह शास्त्रों में नहीं मिलता। वह तो 'ज्ञानीपुरुष' की कृपा से ही प्राप्त हो सकता है, ऐसा है।

जिसे स्वपरिणति रहती हो, परपरिणति नहीं रहती हो और जो देहधारी हों, वे सद्गुरु कहलाते हैं।

निजपरिणति कब कहलाए

एक क्षण के लिए भी स्वपरिणति उत्पन्न हो जाए, तो उसे समयसार कहा है। एक समय के लिए भी जिसे समयसार उत्पन्न हो गया, उसमें वह हमेशा के लिए रहता ही है।

प्रश्नकर्ता : 'शुद्धात्मा, वह निजपरिणति नहीं है, ज्ञान, वह निजपरिणति है', यह समझाइए।

दादाश्री : शुद्धात्मा, वह निजपरिणति नहीं है। शुद्धात्मा तो संज्ञा है। हमने जो ज्ञान आपको दिया है वह ज्ञान, और वह ज्ञान जब उपयोग में आता है तो वह निजपरिणति में आता है।

प्रश्नकर्ता : आपकी पाँच आज्ञाओं में से एक आज्ञा में रहे तो निजपरिणति कहलाएगी या नहीं?

दादाश्री : हाँ, वह निजपरिणति कहलाएगी। हमारी आज्ञा निजपरिणति में रहने के लिए ही है, उनमें दूसरी कोई परिणति नहीं है।

प्रश्नकर्ता : दादा भगवान के दर्शन करने के भाव होते हैं, वह भाव स्वभाव में माना जाएगा क्या?

दादाश्री : वे स्वभाव में लानेवाले परिणाम हैं। वे परपरिणाम हैं। लेकिन स्वभाव में लानेवाले हैं, अतः हितकारी कहे जाते हैं।

स्वपरिणति के अलावा बाकी सारी ही *पुद्‌गल* परिणति है। जब तक किंचित् मात्र किसीका आलंबन है, तब तक परपरिणति है। जब तक मूर्ति, गुरु, शास्त्रों का, त्याग का आलंबन है, तब तक परपरिणति है और शुद्धात्मा का अवलंबन स्वपरिणति है।

. . . किस प्रकार से स्वपरिणति में बर्ते !

प्रश्नकर्ता : ऐसा जानता है कि यह टेम्परेरी है, फिर भी परमानेन्ट को पहचानने में भूल कौन करवा देता है?

दादाश्री : जो 'टेम्परेरी' को 'परमानेन्ट' मानता है, वह! 'स्वरूप ज्ञान' होने के बाद 'डिस्चार्ज' भाव को खुद के भाव मानता है। वह भूल है, वह पिछला रिएक्शन है। डिस्चार्ज भाव को खुद का भाव माने, वह परपरिणति है। 'ज्ञानीपुरुष' एक भी डिस्चार्ज भाव को खुद का नहीं मानते हैं, इसलिए निरंतर स्वपरिणति में रहते हैं।

यह जो समझ में नहीं आता है, वह जागृति की मंदता है। 'ज्ञानीपुरुष'

की जागृति इतनी अधिक है कि डिस्चार्ज के एक भी परमाणु को खुद का नहीं मानते, डिस्चार्ज ही मानते हैं। इसके बावजूद संपूर्ण केवलज्ञान नहीं बरतता, चार डिग्री कम रहता है। ३६० डिग्री पर संपूर्ण होता है, हमें वह नहीं पचा और ३५६ डिग्री पर आकर रुक गया!

आत्मा जानने की जागृति के अलावा बाकी की सारी ही जागृति भ्रांत जागृति है, संसार-जागृति है। वह संसार में हेल्प करती है।

निजस्वरूप का ज्ञान, भान और परिणति, वही महावीर है।

आत्मा होकर आत्मा में बरते, आत्मा में तन्मयाकार रहे, वह ज्ञानी है।

ज्ञान, परमविनय से प्राप्त

प्रश्नकर्ता : आप हमें विधि में क्या दे देते हैं?

दादाश्री : जो देता है, वह तो भिखारी बन जाता है। हम देते नहीं हैं, उसी प्रकार हम स्वीकार भी नहीं करते। हम वीतराग रहते हैं। इसीलिए आप जो भी दोगे वह सौ गुना होकर आपको वापस मिलेगा। आप एक फूल दोगे तो आपको सौ मिलेंगे और एक पत्थर डालोगे तो आपको सौ मिलेंगे!

प्रश्नकर्ता : आप कृपा बरसाते हैं, वह क्या है?

दादाश्री : वह भी यही है। जैसा भाव आप रखते हो उसका सौ गुना होकर आपको मिलता है।

प्रश्नकर्ता : किसीको आपके जैसा ज्ञान प्राप्त करना हो तो उसका वर्तन कैसा होना चाहिए?

दादाश्री : माँ-बाप के साथ विनय होना चाहिए, उनकी आज्ञा में रहना चाहिए, और यहाँ पर परम विनय होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : परम विनय का मतलब क्या है?

दादाश्री : अहंकार रहित स्थिति। ज्ञान का स्वभाव कैसा है कि ऊपर से नीचे आता है। अत: यदि परम विनय चूके तो वह ज्ञान को ही वापस कर देगा!

परम विनय अर्थात् ग्रहण करते रहना। पूज्य लोगों का *राजीपा* (गुरुजनों की कृपा और प्रसन्नता) प्राप्त करना। फिर भले ही वे मारें-कूटें, लेकिन वहीं पर पड़े रहना! अविनय के सामने विनय करना, उसे गाढ़ विनय कहते हैं और अविनय से दो थप्पड़ मार दे, तब भी विनय रखना, उसे परम अवगाढ़ विनय कहते हैं। यह परम अवगाढ़ विनय जिसे प्राप्त हो गया, वह मोक्ष में जाता है। उसे सद्गुरु या किसी की भी ज़रूरत नहीं है। स्वयं बुद्ध बनेगा, उसकी मैं गारन्टी देता हूँ।

दोनों परिणाम, स्वभाव से ही भिन्न

दो प्रकार के परिणाम हैं : एक पौद्‌गलिक परिणाम और दूसरा आत्मपरिणाम-चेतन परिणाम।

जब तक चेतन को जाना नहीं, तब तक चेतन परिणति किस प्रकार से उत्पन्न होगी? उसे तो ठेठ तक पौद्‌गलिक परिणति ही रहती है। आपको इस 'अक्रम विज्ञान' के कारण चेतन परिणति उत्पन्न हुई है। पहले चेतन परिणाम और *पुद्‌गल* परिणाम की दोनों धाराएँ साथ में रहती थीं। भीले ही दीया जल रहा हो, लेकिन अंधे के लिए क्या? जिसे 'मैं शुद्धात्मा हूँ' और 'मैं चंदूलाल नहीं हूँ' ऐसा विभाजन नहीं हुआ, उसे निरंतर *पुद्‌गल* परिणति ही रहती है। और जिसमें विभाजन हो गया है, वह शुद्ध परिणामी कहलाता है।

बात को सिर्फ समझना ही है। जो कर्म हैं, वे *पुद्‌गल* स्वभाव के हैं। वे उनके परपरिणाम बताते ही रहेंगे। हम शुद्धात्मा अर्थात् स्वपरिणाम हैं। परपरिणाम 'ज्ञेय स्वरूपी' है और खुद 'ज्ञाता स्वरूपी' है।

हर एक जीव मात्र में स्वपरिणाम और परपरिणाम उत्पन्न होते ही रहते हैं। रोंग बिलीफ़ के कारण परपरिणामों को स्वपरिणाम मानता है। 'देखो, दाल-चावल और सब्ज़ी मैंने बनाई' कहेगा। हम कहें कि 'आपको दाल-चावल बनाने का ज्ञान था?' तब कहता है कि, 'यह ज्ञान मैं जानता हूँ और यह क्रिया भी मैं ही करता हूँ।' अतः अज्ञानी इन दोनों परिणामों को एक कर देता है। 'ज्ञानी' तो ज्ञानक्रिया के कर्ता होते हैं, अज्ञान क्रिया के कर्ता नहीं होते। कोई भी क्रिया, वह अज्ञान क्रिया कहलाती है। स्वपरिणाम और परपरिणाम को एक करने से बेस्वाद हो जाता है।

व्यवहार, कितना अधिक पराश्रित

यह सारा ही परपरिणाम हैं और फिर अपने हाथ में नहीं है, पराश्रित है। सारा व्यवहार पराश्रित है। पराश्रित में धर्म करने जाए तो वह किस तरह से हो पाएगा? फिर भी वह एक प्रकार का मार्ग है। लेकिन वह तो जब ज्ञानी होते हैं, तीर्थंकर होते हैं तभी ठीक से चलता है, नहीं तो कोई अर्थ नहीं है। अर्थ इतना ही कहता है कि दारू पीए, इसके बजाय यह करना अच्छा है, ताकि फिसल तो नहीं जाए। बाकी पराश्रित व्यवहार में क्रोध-मान-माया-लोभ किस तरह से बंद हो पाएँगे? जगत् उसे बंद करने जाता है। अपना 'अक्रम विज्ञान' क्या कहता है, वह आपको इस बॉल के उदाहरण पर से समझाता हूँ।

'अक्रम' का, कैसा साइन्टिफिक सिद्धांत

जब तक अज्ञानता में होते हैं, तब तक बॉल को फेंकते हैं। उसके परिणाम को नहीं जानतें। अब ज्ञान होने के बाद बॉल डालना बंद कर दिया, लेकिन उसे पहले फेंकी थी, इसलिए वह उछलेगी तो सही। पच्चीस-पच्चीस बार उछलेगी। हमने फेंकी, वही एक परिणाम अपना था। अब क्रमिक मार्ग में फेंकने के बाद में उछलती हुई इस बॉल को बंद करने जाते हैं और दूसरी तरफ बॉल का फेंकना जारी रखते हैं। अत: पीछे से बंद करता जाता है और आगे डालता जाता है। उसका तो कब अंत आएगा? हम क्या करते हैं कि बॉल को डालना बंद कर देते हैं और फिर जो परिणाम उछलते हैं, उन्हें 'देखते' रहने को कहते हैं। ये परिणाम तो डिस्चार्ज के रूप में हैं, इसलिए अपने आप ही बंद हो जाएँगे। 'हम' अंदर हाथ नहीं डालें, बस इतना ही देखना है अब।

प्रश्नकर्ता : परपरिणाम में जाने से किसी भी प्रकार की उलझन होती है क्या?

दादाश्री : परपरिणाम में सिर्फ उलझनें ही हैं। उसमें जाना ही मत। पर-परिणाम को देखना है। यह बॉल अपने परिणाम से डला था, उसके बाद से फिर परपरिणाम। अब आपको सिर्फ भाव बंद कर देने हैं। ये भाव बंद किस तरह से होंगे? वे 'ज्ञानीपुरुष' को सौंप दिए, तो उनसे छूटा जा सकता

है। उसके बाद फिर ज्ञानी की आज्ञा में ही रहना चाहिए। यह तो निरंतर समाधि देनेवाला प्रत्यक्ष विज्ञान है। बॉल को फ़ेकने के बाद में बंद करना और बॉल डालने की प्रक्रिया को जारी रखना, वह साइन्टिफिक रास्ता नहीं है। तूने बॉल डालना बंद कर दिया तो परपरिणाम अपने आप बंद हो ही जाएगा!

इसीलिए इस 'अक्रम मार्ग' में हम किसीकी पात्रता नहीं देखते। क्रिया की तरफ मत देखना। 'उसने' बॉल डालना बंद कर दिया, उसके बाद क्रिया की तरफ नहीं देखना है। हमसे 'स्वरूप ज्ञान' प्राप्त कर जाए, उसे पूरी तरह से समझ जाए, उसके बाद फिर वह क्रोध करे तो भी हम कहते हैं कि यह 'डिस्चार्ज' के रूप में है। वह क्रमश: बंद हो ही जाएगा। डिस्चार्ज किसीके हाथ में है ही नहीं। डिस्चार्ज को 'देखने' की और 'जानने' की ज़रूरत है।

पुद्गल पारिणामिक भाव से रहा है

शुद्धात्मा का पारिणामिक भाव और *पुद्गल* का पारिणामिक भाव, वे दोनों अलग ही हैं।

प्रश्नकर्ता : ऐसा करने से ऐसा होगा, ऐसा होगा, ऐसे आगे-आगे का दिखता है, वह कौन-सा ज्ञान है?

दादाश्री : वह तो पारिणामिक ज्ञान कहलाता है। प्रकृति वायुवाली हो तो 'यह खाऊँगा तो ऐसा होगा' ऐसा ज्ञान हाज़िर रहे तो वह पारिणामिक ज्ञान कहलाता है। सांसारिक बातों में यह ज्ञान हाज़िर रहता है कि 'यह खाऊँगा या यह करूँगा तो उसका परिणाम यह आएगा।' कॉज़ होने से पहले इफेक्ट क्या होगा, वह समझ में आ जाता है।

प्रश्नकर्ता : ये क्रियाएँ करते हैं, उनका फल मिलता है। यदि फल की भावना के बिना करे, तो भी फल मिलेगा?

दादाश्री : जलने की भावना के बगैर अंगारों में हाथ डालेगा तो जल जाएगा। वैसा ही पारिणामिक है। तुरन्त ही फल देता है, छोड़ता नहीं है। यह जगत् भी वैसा ही है। हर एक चीज़ पारिणामिक स्वभाव में है। परिणाम आते ही हैं।

प्रश्नकर्ता : कई बार नहीं बोलना हो फिर भी बोल लेते हैं। फिर पछतावा होता है।

दादाश्री : वाणी से जो कुछ भी बोला जाता है, उसके हम 'ज्ञाता-दृष्टा' हैं। लेकिन जिसे वह दु:ख पहुँचाया, उसका प्रतिक्रमण 'हमें' 'बोलनेवाले' से करवाना पड़ेगा। पारिणामिक भाव छोड़ते नहीं हैं। ये तो *पुद्गल* के पारिणामिक भाव हैं। पेट में वायु हुई और आलू खाओ तो वायु बढ़ती है। यह भी *पुद्गल* का एक पारिणामिक भाव है। उसे तो प्लस-माइनस करना चाहिए। वर्ना एब्नोर्मल हो जाएगा।

चेतन का पारिणामिक भाव, ज्ञाता-दृष्टा

शुद्धात्मा के पारिणामिक भाव, वे तो ज्ञाता-दृष्टा ही है। बाहर औदयिक भावों में टेढ़ा-मेढ़ा बोल लिया, वह तो ये चंदूलाल के साथ पड़ोसी का संबंध रह गया है, इसलिए चंदूलाल से प्रतिक्रमण करवाना चाहिए। यह तो पड़ोसी भाव में नहीं रहते हैं, निकट भाव में आ जाने से ऐसा लगता है। इन पौद्गलिक परिणामों की इच्छा नहीं हो फिर भी वे आते हैं, नहीं इच्छा हो तब भी बोल निकल जाते हैं।

राग-द्वेष, वे भी पारिणामिक भाव

प्रश्नकर्ता : ऐसा कहा गया है कि जीव को राग-द्वेष से ही बंधन है, अत: राग-द्वेष छोड़ दे।

दादाश्री : भगवान ने राग-द्वेष के लिए मना नहीं किया है, कषाय के लिए मना किया है। 'कषाय रहित हो जाओ', ऐसा कहा है। राग-द्वेष तो पारिणामिक भाव हैं, रिज़ल्ट हैं, वे छोड़ने से कुछ छूटेंगे नहीं। आप ऐसा कुछ ज्ञान दीजिए ताकि वह छूट जाए।

पारिणामिक भाव का ख़्याल नहीं होने से दुनिया 'राग-द्वेष छोड़ दो, राग-द्वेष छोड़ दो', ऐसा कहती है। वह कोई कागज़ है कि लिखकर फाड़ दें? भगवान ने संसार का रूट कॉज़ क्या बताया है? राग-द्वेष और अज्ञान। उसमें भी मूल रूट कॉज़ क्या है? तो कहा है कि, अज्ञान। उस कारण में बदलाव हो जाए, तब फिर राग-द्वेष तो सिर्फ पारिणामिक भाव हैं। अत: वे तो चले जाएँगे।

तू कार्य के बारे में बोलना मत, कार्य का सेवन करना मत। वह परिणाम है। लेकिन कारणों (कॉज़ेज़) का सेवन कर। कारण का सेवन नहीं किया जाए, तब तक कुछ भी नहीं हो सकता। फिर भले ही शास्त्र पढ़े, तप करे, त्याग करे या कुछ भी करे, लेकिन कुछ होगा नहीं।

जो ज्ञान क्रियाकारी हो जाए, वही ज्ञान है। चालीस वर्ष से उपदेशक कह रहे हों कि 'राग-द्वेष छोड़ो, राग-द्वेष छोड़ो' लेकिन नहीं छूट रहे हों, तभी से नहीं समझ जाना चाहिए कि यह क्रियाकारी ज्ञान नहीं है? वह किस काम का? बाकी, पारिणामिक भाव में कुछ भी करना नहीं पड़ता। क्रोध-मान-माया-लोभ छोड़ने का कहते हैं, लेकिन वास्तव में वे भी तो पारिणामिक भाव हैं। परीक्षा दो तो पास हुआ जाएगा। वीतराग कितने समझदार थे! लेकिन लोग उल्टा समझे! लोगों ने पारिणामिक भावों को क्रियाकारी किया। चलती हुई गाड़ी को चलाते रहे और फिर खुश हुए।

दादाश्री : आपके साइन्स में पारिणामिक भाव होते हैं न?

प्रश्नकर्ता : साइन्स तो पूरा पारिणामिक भाव पर ही होता है।

दादाश्री : पारिणामिक भाव में कुछ भी करना नहीं होता। 'एच टु' और 'ओ' का प्रमाण सेट कर दिया तो पानी अपने आप ही बनता रहता है। जब कि लोग क्या कहते हैं कि 'पानी बनाओ।' वैसे ही ये लोग 'राग-द्वेष निकालो, क्रोध-मान-माया-लोभ निकालो' कहते हैं। अरे, वे क्या बूआ के बेटे हैं कि चले जाएँगे?!

व्यवहार, उपधातु परिणाम

इसमें धातु और उपधातु दोनों ही हैं। और उपधातु का परिणाम व्यवहार है, उसे ही धातु परिणाम कहो तो क्या होगा? उसीसे तो अनंत जन्मों की भटकन खड़ी है। यह बॉल डाली, वह उपधातु का परिणाम है और वह फिर एक ही बार उछलकर बैठी नहीं रहती। पाँच-सात बार उछलती ही रहती है, वे भी उपधातु के ही परिणाम हैं। यानी कि धातु मिलने के बाद अर्थात् निश्चय धातु एक ही बार मिल जाए तो मोक्ष ही है। वर्ना यह सब तो उपधातु का मिलाप है। पूरा जगत् उपधातु से खड़ा है और उसे ही धातु मानता है।

पुद्‌गल-आत्मा, स्वभाव परिणामी

प्रश्नकर्ता : जीव को प्रति क्षण अपारिणामिक भाव कब उत्पन्न होते हैं?

दादाश्री : अपारिणामिक भाव अर्थात् संसारभाव और पारिणामिक भाव अर्थात् मोक्षभाव। आत्मा का पारिणामिक भाव है। पारिणामिक भाव, वह आत्मा का स्वभाव है, वह अंतिम भाव है। आत्मा का मूल स्वभाव पारिणामिक भाव है। एक मिथ्यात्व भाव है। दूसरे उपशम भाव हैं, क्षयोपशम भाव हैं, क्षायक भाव हैं, सन्निपात भाव हैं और अंतिम पारिणामिक भाव है। इन सभी में सिर्फ पारिणामिक भाव ही आत्मा का है। अन्य सभी पौद्‌गलिक भाव हैं। सन्निपात भी भाव है। ज्ञानी को भी सन्निपात हो जाए तब वे न जाने क्या कर दें, लेकिन उनका ज्ञान ज़रा-सा भी विचलित नहीं होता।

आत्मा स्वभाव-परिणामी है, वह खुद के स्वभाव को नहीं छोड़ता। जैसे बर्फ़ के ऊपर अंगारा रख दिया हो, फिर भी बर्फ़ खुद का स्वभाव नहीं छोड़ता।

पुद्‌गल परिणामी रहा है और आत्मा भी परिणामी रहा है। परिणामी स्वभाव अर्थात् प्रति क्षण पर्याय बदलनेवाला। स्वपरिणाम को आत्मचारित्र कहा है। जो *पुद्‌गल* परिणाम में तन्मयाकार नहीं होता, उसका संसार छूट गया।

[६]

आत्मा, तत्वस्वरूपी

आत्मा : कल्पस्वरूप

आत्मा का स्वभाव कैसा है? अचिंत्य चिंतामणि है। अत: जैसा चिंतन करता है, तुरन्त ही वैसा हो जाता है।

आत्मा कल्पस्वरूप है। अत: जब उसका लाइट बाहर गया तो फिर अहंकार उत्पन्न हो गया। वह खुद चिंतवन नहीं करता है, लेकिन जैसे ही अहंकार का आरोपण होने पर चिंतवन होता है, तब वैसे ही विकल्प उत्पन्न हो जाते हैं!

प्रश्नकर्ता : यानी कि हर एक सेकन्ड में आत्मा का स्वरूप बदलता जाता है? हम लोग तो हर एक सेकन्ड पर चिंतवन बदलते हैं!

दादाश्री : हर एक सेकन्ड पर नहीं, सेकन्ड के छोटे से छोटे भाग में भी बदलता रहता है। लेकिन इतना अधिक उपयोग नहीं रहता किसीका।

तबियत नरम हो तो ऐसा कहना कि, 'चंदूलाल की तबियत नरम रहती है।' वर्ना यदि 'मेरी तबियत नरम रहती है' कहा कि वापस असर हो जाएगा, चिंतवन करे वैसा हो जाएगा! हमें तो डॉक्टर पूछे तब मुँह से बोलते हैं कि, 'खांसी हुई है', लेकिन तुरन्त ही उसे मिटा देते हैं। हमें कहना पड़ता है कि चंदूलाल को खांसी हुई है। लेकिन क्या शुद्धात्मा को खांसी हुई है? वह तो जिसकी दुकान का माल है, उसे ज़ाहिर करना पड़ता है, लेकिन उसे अपने सिर पर ले लें, वह किस काम का?

आत्मा में दु:ख नाम का गुण नहीं है, चिंता नाम का गुण नहीं है। लेकिन यदि उल्टा, विभाविक चिंतवन करे तो विभाविक गुण उत्पन्न होता

है। 'मैं फँस गया' ऐसा चिंतवन हुआ कि वह फँस जाता है। 'चोरी करनी चाहिए' यदि ऐसा चिंतवन करने लगा तो चोर बन ही जाता है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा तो शुद्ध ही है, तो फिर आत्मा में यह चीज़ कैसे आएगी?

दादाश्री : आत्मा तो शुद्ध ही रहता है! लेकिन यह अहंकार जो भी करता है, जैसा चिंतवन करता है वैसा हो जाता है। उसे व्यवहार आत्मा, मिकेनिकल आत्मा या प्रतिष्ठित आत्मा कहते हैं। 'मैं दिवालिया हूँ', ऐसा चिंतवन करते ही दिवालिया हो जाता है। 'मैं बीमार हूँ', ऐसा चिंतवन करते ही बीमार हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा जैसा चिंतवन करे, वैसा हो जाता है, तो हम चिंतवन करें कि मुझे हज़ार रुपये मिल जाएँ या और कोई वस्तु मिल जाए तो वह क्यों इफेक्ट में नहीं आता?

दादाश्री : उसी क्षण इफेक्ट में आ जाता है, लेकिन ज्ञानी की भाषा में समझो तो समझ में आएगा। हज़ार रुपये का चिंतवन किया तो तुरन्त ही वह याचक बन गया। पैसे मिलेंगे-करेंगे नहीं, लेकिन खुद याचक बन जाता है। 'खुद बहुत दुःखी है', ऐसा चिंतवन करते ही खुद का अनंत सुख आवृत हो जाता है और दुःखिया बन जाता है। 'मैं सुखमय हूँ', ऐसा चिंतवन करे तो सुखमय बन जाता है। सास से किच-किच करे तो किच-किचवाली बन जाती है। फिर तो चाय पीने के लिए भी किच-किच करती है, क्योंकि किच-किच का चिंतवन किया है!

आत्मा खुद अनंत शक्तिवाला है! सभी प्रकार की शक्तियाँ अंदर से निकलें, ऐसी है। जितनी शक्तियाँ निकालनी आएँ, उतनी आपकी। लेकिन एक बार उस अनंत शक्ति का भान हो जाना चाहिए। यह तो उल्टा चिंतवन करता है, इसलिए उलझन खड़ी होती है। एक बार शुद्धात्मा का चिंतवन प्राप्त हो जाए तो उसके बाद वह अपने आप ही रहेगा, खुद को कुछ भी करना नहीं पड़ेगा। आप जहाँ जाओ, वहाँ पर आपको शुद्धात्मा का चिंतवन होता ही रहता है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : यह ज्ञान है ही क्रियाकारी! ऐसा लाखों वर्षों में कभी हुआ ही नहीं!!

प्रश्नकर्ता : पागल आदमी 'मैं समझदार हूँ', ऐसा चिंतवन करे तो वह क्या समझदार हो जाएगा?

दादाश्री : हाँ, ऐसा करे तो वह समझदार होता जाएगा। यह तो अंदर असर हो चुका है, साइकोलॉजिकल इफेक्ट्स। हम तो एक भी असर अंदर होने ही नहीं देते।

प्रश्नकर्ता : लोग कहते हैं कि 'आप ऐसे हो, आप वैसे हो', तो उसका क्या?

दादाश्री : लोग भले ही कुछ भी कहें, लेकिन आप पर उसका असर नहीं होना चाहिए कि 'मैं ऐसा हूँ', आप को तो 'मैं शुद्धात्मा हूँ, मैं शुद्धात्मा हूँ' बस इतना ही रहना चाहिए।

आत्मा का कोई भी चिंतवन बेकार नहीं जाता। इतना अच्छा है कि चिंतवन स्थूल स्तर पर ही होता है, इसलिए चल जाता है। उच्च प्रकार के चिंतवन में एक मिनट में पाँच हज़ार रिवोल्यूशन होते हैं। हर एक का चिंतवन अलग-अलग होता है, ऐसा अनंत प्रकार का चिंतवन है। इसीलिए तो इस जगत् में तरह-तरह के लोग दिखते हैं न!

प्रश्नकर्ता : चिंतवन किसे कहते हैं?

दादाश्री : आप ये सब क्रियाएँ करते हो, उसे चिंतवन नहीं कहा जाता। आप सोचते हो उसे नहीं कहते। चिंतवन तो, आपने जो आशय मन में नक्की किया हो, उसे कहते हैं। मन में एक आशय नक्की किया हो कि एक बंगला, एक बगिया, बच्चों को पढ़ाना है-ऐसा सब चिंतवन करे तो वह वैसा बन जाता है। 'रिश्वत के रुपये लेने में कोई हर्ज नहीं है', ऐसा चिंतवन करे तो वह वैसा बन जाता है। यह जो दिखता है, वह जैसा चिंतवन किया था, उसीका फल है। 'जैसा निदिध्यासन करे, आत्मा वैसा ही बन जाता है।' कुछ लोग ऐसा चिंतवन करते हैं कि मेरा आत्मा पापी है। तो कौन-से गाँव जाएगा?

प्रश्नकर्ता : आत्मातत्व का चिंतवन तो मनुष्य को करना ही चाहिए न?

दादाश्री : हाँ, करना चाहिए। जब तक 'ज्ञानीपुरुष' उसे सचेतन नहीं बना देते, तब तक वह चिंतवन शुद्ध चिंतवन नहीं माना जाता, लेकिन शब्द से चिंतवन करता है। वह एक प्रकार का उपाय है। रास्ते में जाते हुए बीच का स्टेशन है वह।

बाहर के संयोगों के दबाव से आत्मा में कंपनशक्ति उत्पन्न होती है, तब परमाणु ग्रहण करता है। कंपनशक्ति एक घंटे के लिए बंद हो जाए तो मोक्ष में चला जाए! 'मैं डॉक्टर हूँ, मैं स्त्री हूँ और दादा पुरुष हैं', ऐसा समझे तो कभी भी मोक्ष नहीं होगा। 'खुद आत्मा है', ऐसा समझे तभी मोक्ष होगा।

आत्मा : ऊर्ध्वगामी स्वभाव

आत्मा का स्वभाव है कि ऊर्ध्वगमन में जाना-मोक्ष में जाना, स्वभाव से ही वह ऊर्ध्वगामी है। *पुद्गल* का स्वभाव ही है कि नीचे खींचता है।

एक सूखा तुबां हो, उस पर तीन इंच की चीनी की कोटिंग की हुई हो, फिर उसे समुद्र में डाल दें, तो पहले तो वह वज़न से डूब जाएगा। फिर जैसे-जैसे चीनी घुलती जाएगी वैसे-वैसे वह धीरे-धीरे ऊपर आता जाएगा। उसी प्रकार ये सब परिणाम निरंतर घुलते ही जाते हैं, और आत्मा ऊपर चढ़ता है। हम जो कुछ भी दख़ल करते हैं, उससे वापस नया उत्पन्न होता है। परमाणुओं की परतें जितनी अधिक होंगी, उतना नीचे की गति में जाएगा और कम परतोंवाला ऊँची गति में जाएगा। और जब परमाणु मात्र का आवरण नहीं रहेगा, तब मोक्ष में जाएगा।

प्रश्नकर्ता : हर एक जीव का अंत में मोक्ष तो है ही। क्योंकि स्वभाव से वह ऊर्ध्वगामी है। तो गुरु बनाने की क्या ज़रूरत है?

दादाश्री : आत्मा का स्वभाव ऊर्ध्वगामी है, लेकिन वह कब? यदि किसीके टच में नहीं आए, तो। इन बुद्धिशालियों के टच में नहीं आए, तो! इन जानवरों के टच में रहेगा, तो ऊर्ध्वगामी ही है। बुद्धि से यह बिगड़ता

है, इसलिए अधोगति में जाता है। *पुद्गल* का स्वभाव अधोगामी है और आत्मा का स्वभाव ऊर्ध्वगामी है।

सिद्धात्मा की स्थिति

सिद्ध भगवंत खुद के संपूर्ण सिद्धांत को प्राप्त करके सिद्ध क्षेत्र में खुद के *पुद्गल*रहित स्व-स्वरूप में विराजमान हैं।

प्रश्नकर्ता : मुक्त होने के बाद में आत्मा की अवस्था क्या होती है? वह कहाँ पर जाता है? क्या करता है? उसे कैसे अनुभव होते हैं?

दादाश्री : पहले अज्ञान से मुक्ति होती है, उसके बाद बाकी बची हुई दफाओं का हिसाब पूरा होता है। इन मन-वचन-काया का संपूर्ण *निकाल* हो जाए तो वह संपूर्ण आत्म स्वरूप हो जाता है। मोक्ष में जाने के लिए अन्य किसी कारण की आवश्यकता नहीं है। पहले के जो डिस्चार्ज कर्म हैं, वे ही उसे सिद्धगति में बैठा देते हैं। वहाँ पर खुद के आत्मा स्वभाव में ही, ज्ञाता-दृष्टा और परमानंद में ही रहते हैं। उन्हें यह पूरा जगत् दिखता रहता है कि क्या-क्या हो रहा है, अंदर ग़ज़ब का सुख बर्तता है! वहाँ का एक सेकन्ड का सुख यहाँ पर आ जाए तो पूरे जगत् के लिए वह ६ महीनों तक चलेगा! लोगों ने तो उस सुख की बूंद तक भी नहीं देखी है।

प्रश्नकर्ता : सिद्धशिला क्या है?

दादाश्री : वह एक क्षेत्र है। जहाँ पर ज्ञेय नहीं हैं, संयोग मात्र नहीं हैं। जो लोकालोक स्वरूप है, उसमें लोक, जिसमें की सभी तत्व हैं और अलोक, जिसमें कि सिर्फ आकाश तत्व ही है। लोक और अलोक उन दोनों के संधि स्थान पर सिद्धक्षेत्र है। वहाँ पर सभी सिद्धात्मा स्वतंत्र प्रकार से अलग-अलग विराजमान रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : सिद्धात्मा वहाँ पर क्या करते हैं?

दादाश्री : कुछ भी नहीं, उनका करने का स्वभाव ही नहीं है। खुद के परमात्मा पद में ही रहते हैं। सिद्धक्षेत्र में बैठे हुए आत्माओं को ज्ञान एक ही प्रकार का दिखता है। यह हाथ मैं ऊँचा करूँ तो वह उन्हें दिखता है। ज्ञान सर्वस्व प्रकाश करे वैसा है। उसे ज्ञान किसलिए कहते हैं? क्योंकि

वह ज्ञेय को देखता है, इसलिए। अवस्था बदलती है, लेकिन उसे वे खुद शुद्ध ही देखते हैं। अज्ञानी माँस का टुकड़ा देखे कि चिड़ उत्पन्न हो जाती है और उसमें अवस्थित हो जाता है, जब कि सिद्ध उसी वस्तु को ज्ञेय के रूप में, शुद्ध स्वरूप में ही देखते हैं।

यदि सिद्ध भगवान के गुणों की भजना करे तो न जाने क्या-क्या प्राप्त हो जाए, ऐसा है!

आत्मगुण : ज्ञान और दर्शन

आत्मा क्या होगा? शब्दब्रह्म से तो सभी जानते हैं कि अनंत गुणवाला है। यर्थाथ आत्मज्ञान तो कब कहलाता है? जब वे गुण परिणामित होते हैं, तब। वर्ना 'मैं हीरा हूँ', बोलने से कहीं हीरा प्राप्त नहीं होता! आत्मज्ञान होने के लिए, आत्मा को गुणधर्मसहित जान लें और वह परिणामित हो जाए, तब आत्मज्ञान होता है।

आत्मा के दो मुख्य गुण हैं : ज्ञान और दर्शन। इसके अलावा तो अनंत गुण हैं! 'अनंत ज्ञान-अनंत दर्शन-अनंत शक्ति-अनंत सुख'!

आत्मा खुद शुद्ध ही है, लेकिन उसके जो पर्याय हैं, वे ज़रा अशुद्ध हो गए हैं। उन्हें हर एक को अलग-अलग धोना है। वे हमारा खुद का सुख रोक लेते हैं।

प्रश्नकर्ता : अनंत ज्ञान, आत्मा के इस गुणधर्म को धर्म कहेंगे या गुण कहेंगे?

दादाश्री : आत्मा के अनंत गुणधर्म हैं। गुण परमानेन्ट हैं और धर्म टेम्परेरी है।

'मैं अनंत ज्ञानवाला हूँ', वह उसका परमानेन्ट गुण है। 'मैं अनंत दर्शनवाला हूँ', वह उसका परमानेन्ट गुण है। 'मैं अनंत शक्तिवाला हूँ', वह उसका परमानेन्ट गुण है। 'मैं अनंत सुखधाम हूँ', वह उसका परमानेन्ट गुण है।

आत्मा के गुण परमानेन्ट हैं और उनके धर्म का उपयोग हो रहा है। ज्ञान परमानेन्ट है व देखना और जानना टेम्परेरी है। क्योंकि जैसे-जैसे

अवस्था बदलती है वैसे-वैसे देखनेवाले की अवस्था बदलती है। जैसे सिनेमा में अवस्था बदलती है, वैसे ही देखनेवाले की भी अवस्था बदलती है।

ज्ञान-दर्शन तो शाश्वत गुण हैं और देखना-जानना उसका धर्म है। अनंत ज्ञेयों को जानने में परिणामित अनंती अवस्थाओं में 'शुद्ध चेतन' संपूर्ण शुद्ध है, सर्वांग शुद्ध है। अनंत द्रश्यों को देखने में परिणामित हुई अनंती अवस्थाओं में 'शुद्ध चेतन' संपूर्ण शुद्ध है, सर्वांग शुद्ध है।

प्रश्नकर्ता : अनंत ज्ञेय, अनंत अवस्थाएँ और उनका अनंत ज्ञान- यह तो बहुत ऊँची बात है, यह वाक्य कहीं भी सुना नहीं है। यह वाक्य ज़रा विशेष रूप से समझाइए।

दादाश्री : यह वाक्य तो हम केवलज्ञान में देखकर बोलते हैं। 'ज्ञानी' की मुख से निकली हुई बातें संपूर्ण स्वतंत्र होती हैं, मौलिक होती हैं। वह कहीं से उठाया हुआ नहीं होता। उनका 'वेल्डिंग' किसी और ही प्रकार का होता है! शास्त्र के शब्द नहीं होते!! उनका एक ही वाक्य शास्त्रों के शास्त्र बना दे, ऐसा है।

'अनंता ज्ञेयों को जानने में परिणामित हुई अनंती अवस्थाओं में मैं संपूर्ण शुद्ध हूँ, सर्वांग शुद्ध हूँ' इतना ही यदि कोई पूरी तरह से समझ जाए तो वह संपूर्ण दशा को प्राप्त कर लेगा!

अवस्थाएँ अवास्तविक हैं और मूल वस्तु वास्तविक है। हम अवस्था के जानकार हैं, और वे लोग अवस्था में उस रूप हो जाते हैं। शादी करे तो कहता है 'मैंने शादी की' और विधुर हो जाए तो कहेगा 'मैं विधुर हो गया।' वह उस अवस्थारूपी हो जाता है।

विनाशी वस्तु का परिवर्तन होता है। उसमें आत्मा की ज्ञानशक्ति का परिवर्तन होता है क्योंकि अवस्थाओं को 'देखनेवाला' 'ज्ञान' है। जैसे-जैसे अवस्था बदलती है, वैसे-वैसे ज्ञान पर्याय बदलते हैं। पर्यायों में निरंतर परिवर्तन होता ही रहता है, फिर भी उसमें ज्ञान शुद्ध ही रहता है, संपूर्ण शुद्ध रहता है। सर्वांग शुद्ध रहता है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान किस रूप में परिवर्तित होता है? पर्याय के रूप में?

दादाश्री : हाँ। खुद के पर्याय को भी जो जानता है, वही वह खुद है, शुद्धात्मा है।

प्रश्नकर्ता : हम संसार की परिवर्तित होती हुई चीज़ों को देख सकते हैं, लेकिन खुद की परमानेन्सी नहीं देख पाते।

दादाश्री : जो वस्तुओं को हमेशा के लिए बदलते हुए देखता है, वह खुद परमानेन्ट है।

अनंत ज्ञान है, इसीलिए तो इन अनंत ज्ञेयों को जान पाते हैं। नहीं तो किस तरह से जान पाएँगे? एक ही दिन सुना हो कि चाचा-ससुर का बेटा मर गया है, तो उसे किसी किताब में नोट नहीं करते। लेकिन जब बारह वर्ष बाद भी यदि उनके घर जाएँ तब भी 'क्या मगनभाई हैं घर में?' ऐसा कहते हैं क्या?! एक ही बार जाना की मर गए हैं तो, वह ज्ञान कैसे हमेशा हाज़िर ही रहता है!! कितने ही लोग मर जाते हैं, लेकिन सभीके बारे में यह याद रहता है या नहीं रहता?

प्रश्नकर्ता : बिल्कुल रहता है।

दादाश्री : ग़ज़ब की शक्ति है आत्मा की! व्यापार करता है, सबकुछ करता है, फिर भी आत्मा में रह सकता है!

प्रश्नकर्ता : ज्ञान और दर्शन, जो आत्मा के गुण हैं, वे किस अपेक्षा से गुण कहे जाते हैं।

दादाश्री : वह तो स्वाभाविक वस्तु है।

आत्मा : गुणधर्म से अभेद स्वरूपी

प्रश्नकर्ता : ज्ञान भेदवाला है या अभेद है?

दादाश्री : भेदवाला होता ही नहीं। ज्ञान, दर्शन सबकुछ अभेद आत्मा रूपी है। जिस प्रकार सोने का पीला रंग, वह उसका गुण है, फिर वज़नदार है वह दूसरा धर्म, उस पर ज़ंग नहीं लगता वह उसका धर्म है। अर्थात् ये सभी सोने के गुणधर्म हैं, उसी प्रकार आत्मा के भी गुणधर्म हैं। जिस प्रकार सोना उसके गुणधर्मों में अभेदभाव से सोना ही

है, उसी प्रकार से आत्मा के सभी गुणों में अभेदभाव से आत्मा ही है, वहाँ पर भेद नहीं है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान जब अपने विचार में आता है, तब तो उसके टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं, अभेद स्वरूप से नहीं रहता। जानते हैं अभेद स्वरूप में, लेकिन शब्द में वर्णन करना हो तो फिर भेदरूपी हो जाता है।

दादाश्री : वर्णन करना हो तो भेद दिखेगा ही। 'सोना पीला है', ऐसा बोलना पड़ता है, लेकिन एट ए टाइम सभी गुणधर्म नहीं बोले जा सकते। वह वजनदार है, ऐसा दूसरी बार बोलना पड़ता है। उसी प्रकार से 'मैं अनंत ज्ञानवाला हूँ' फिर भी भेद नहीं है, अभेद स्वरूप से है। वस्तु एक ही है।

परिणमित अवस्था में आत्मा शुद्ध

ज्ञान का स्वभाव ऐसा है कि ज्ञेय के आकार का हो जाता है, फिर भी खुद शुद्ध ही रहता है। एक ज्ञेय हटे तो नया ज्ञेय आ जाता है और खुद फिर से ज्ञानाकार हो जाता है, लेकिन दोनों चिपक नहीं जाते।

अवस्था का ज्ञान नाशवंत है, स्वाभाविक ज्ञान अविनाशी है। जिस प्रकार से यह सूर्य है और ये उसकी किरणें हैं, उसी प्रकार आत्मा है और आत्मा की किरणें हैं, वह उसकी अवस्था हैं, यह तो सिर्फ अवस्था में ही परिवर्तन होता है, बाकी एक भी परमाणु बढ़ा नहीं है, न ही कम हुआ है!

आत्मा : द्रव्य और पर्याय

प्रश्नकर्ता : पर्याय का मतलब क्या है?

दादाश्री : ज्ञेय में ज्ञेयाकार परिणाम, वही पर्याय है।

सिर्फ आत्मा का ही प्रकाश ऐसा है कि जो संपूर्ण ज्ञेयाकार हो सकता है। अन्य कोई प्रकाश ऐसा है कि जो ज्ञेयाकार हो सके।

प्रश्नकर्ता : 'शून्य है तत्व से जो, पूर्ण है पर्याय से।' इसका मतलब क्या है?

दादाश्री : द्रव्य और गुण से आत्मा शून्य है और पर्याय से पूर्ण है। आत्मा के द्रव्य, गुण और पर्याय हैं और *पुद्गल* के भी द्रव्य, गुण और पर्याय हैं। प्रत्येक खुद के पर्याय से पूर्ण है और मूल स्वभाव से शून्य है। खुद स्वभाव में आ जाए तो शून्य है।

आत्मा के पर्याय ज्ञेय के अनुसार हो जाते हैं, लेकिन आत्मा के द्रव्य और गुण ज्ञेय के अनुसार नहीं हो जाते। ज्ञेय हट जाए तो वापस पर्याय भी खत्म होकर अन्य जगह पर चला जाता है। अतः इस प्रकार से पर्याय से पूर्ण है।

प्रश्नकर्ता : द्रव्य और गुण से शून्य किस प्रकार से हो सकता है?

दादाश्री : शून्य अर्थात् यह जगत् जिसे शून्य समझता है, इसका अर्थ वैसा नहीं है। शून्य अर्थात् निर्विकार पद। मन को शून्य करना चाहते हैं, लेकिन मन आत्मा जैसा हो जाए, तब वह शून्य हो जाएगा। अतः आत्मा के सभी गुण प्राप्त हो जाएँ, तब वह शून्य हो जाएगा। मन एक्ज़ोस्ट हो जाएगा तो शून्य हो जाएगा।

पर्याय विनाशी होते हैं और द्रव्य-गुण अविनाशी होते हैं। द्रव्य-गुण सहचारी होते हैं। गुण सभी सहचारी है और पर्याय बदलते रहते हैं।

सिद्ध भगवान में भी द्रव्य, गुण और पर्याय होते हैं, लेकिन उनके सभी पर्याय शुद्ध होते हैं, इसलिए वे सिर्फ 'देखते' और 'जानते' हैं।

वस्तु की सूक्ष्म अवस्था को पर्याय कहते हैं, स्थूल अवस्था को अवस्था कहते हैं। अंग्रेज़ी में 'फेज़ेज़' कहते हैं न? हालांकि वह भी स्थूल ही कहलाता है।

मैं जिस आत्मा को समझा हूँ, उसे मैं वाणी द्वारा कह रहा हूँ। उसका आप सिर्फ 'व्यू-पोइन्ट' का अर्थ समझ सकते हो, बाकी उसका वर्णन तो अवर्णनीय है।

आत्मा स्वयं ज्ञाता-दृष्टा और परमानंदी है। ये ज्ञेय हैं, तभी वह खुद ज्ञाता है। ज्ञेय-ज्ञाता का संबंध है। इस फूल की पंखुड़ी भी है और फूल भी है, लेकिन पंखुड़ी फूल नहीं है और फूल पंखुड़ी नहीं है, ऐसा है।

देखने-जानने में किसी प्रकार की भूल नहीं हो, उसीको ज्ञाता-दृष्टा कहते हैं।

''अनंता ज्ञेयों को जानने में परिणामित हुई अनंती अवस्थाओं में 'शुद्ध चेतन', संपूर्ण शुद्ध है, सर्वांग शुद्ध है।'' ज्ञेयों को जानने में किसी प्रकार की परेशानी नहीं है। आत्मा का ज्ञेयों के साथ में राग-द्वेष से बंधन है और वीतरागता से मुक्त ही है। भले ही देह हो, मन हो, वाणी हो, लेकिन उन ज्ञेयों में आत्मा वीतरागता के कारण मुक्त है।

पर्याय अनंत हैं, उसमें घबराना क्या? सिर पर करोड़ों बाल हैं, लेकिन एक कंघा घुमाया की ठिकाने पर आ जाते हैं!

आत्मा : ज्ञान क्रिया

ज्ञान और दर्शन की क्रिया में भगवान को नुकसान ही क्या है? अज्ञान क्रिया में परेशानी है। ज्ञान क्रिया में तो थकान होती ही नहीं। भगवान क्रियाशील हैं, लेकिन ज्ञान क्रिया के क्रियाशील हैं। शुद्ध चेतन की सक्रियता है, लेकिन वह उनकी खुद की स्वाभाविक सक्रियता है, उसमें थकान नहीं होती। शीशे में प्रतिबिंब के रूप में देखो, उसमें शीशे को क्या मेहनत करनी पड़ती है? भगवान भी ऐसे ही है! पूरा जगत् प्रतिबिंब के रूप में दिखता है, वैसे शेष शैयावाले भगवान है! शेष शैयावाले किसलिए कहा है? अरे, पर-रमणता करेगा तो साँप काट खाएगा!

आत्मा खुद अनंतकाल से वीतराग ही है, कभी भी उसके गुणधर्म बदले ही नहीं। आत्मा-अनात्मा अनादि से 'मिक्स्चर' के रूप में रहे हैं, 'कंपाउन्ड' नहीं बन गए। वह तो ऐसा है कि जब 'ज्ञानीपुरुष' दोनों को विभाजित कर दें तब मूल आत्मा का अनुभव होता है। जब तक अनात्मा का एक भी परमाणु आत्मा में रहे, तब तक अनुभव नहीं हो पाता।

द्रव्य, गुण, पर्याय से शुद्धत्त्व

प्रश्नकर्ता : तत्व से (के रूप में) आत्मा कैसा है?

दादाश्री : आकाश जैसा है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा के परमाणु हैं क्या?

दादाश्री : नहीं, आकाश में क्या दिखता है? आत्मा का तो प्रकाश अलग ही प्रकार का है और वे परमाणु अलग प्रकार के हैं। परमाणु तो, कितने सारे इकट्ठे हो जाएँ, तब जाकर वस्तु दिखती है। यह शरीर मन-वचन-काया, अंत:करण सबकुछ परमाणु से बना हुआ है, जब कि आत्मा एक ही वस्तु है।

प्रश्नकर्ता : तत्व के रूप में आत्मा प्रकाश का बना हुआ है?

दादाश्री : प्रकाश जैसा है उसका स्वभाव!

प्रश्नकर्ता : आपका ज्ञान का वाक्य है ''द्रव्य, गुण, पर्याय से शुद्धचेतन संपूर्ण शुद्ध है, सर्वांग शुद्ध है'', तो आत्मा कौन-से पर्यायों से शुद्ध है? ज्ञान-दर्शन के पर्याय से?

दादाश्री : ज्ञान-दर्शन तो उसके गुण कहलाते हैं। आम देखते ही ज्ञान आम के आकार का हो जाता है। जैसा ज्ञेय का आकार होता है, वैसा ही ज्ञान हो जाता है। जगत् के लोगों को वे ज्ञान पर्याय चिपक पड़ते हैं और अशुद्धि हो जाती है। हम लोगों (ज्ञान प्राप्त महात्मा) को ये चिपक नहीं पड़ते। वापस वहाँ से उखड़कर दूसरी तरफ चला जाता है। जहाँ देखे, वहाँ पर तन्मयाकार नहीं हो जाता।

प्रश्नकर्ता : उसे आम के आकार का कहा, तो वह ज्ञान-दर्शन के पर्याय हुआ न?

दादाश्री : नहीं। ज्ञान-दर्शन तो गुण है। और पर्याय, उसे स्थूल भाषा में समझना हो, तो अवस्था कह सकते हैं। जो भी वस्तु होती है, पर्याय से वह उसीके आकारवाला ज्ञेयाकार बन जाता है। द्रश्यकार नहीं होता, क्योंकि दर्शन सामान्य भाव से है, जब कि ज्ञान विशेषभाव से है, इसीलिए ज्ञेय अलग-अलग होते हैं।

प्रश्नकर्ता : 'द्रव्य, गुण, पर्याय से मैं संपूर्ण शुद्ध हूँ, सर्वांग शुद्ध हूँ', वह शुद्धात्मा की दृष्टि से या प्रतिष्ठित आत्मा की दृष्टि से?

दादाश्री : शुद्धात्मा की दृष्टि से।

प्रश्नकर्ता : सिद्ध भगवंतों को, जो कि सिद्धक्षेत्र में हैं, वे आम को देखें तो उनमें पर्याय उत्पन्न होते हैं या नहीं?

दादाश्री : पर्याय के बिना तो आत्मा होगा ही नहीं न! पर्याय होंगे तभी वस्तु तत्व की दृष्टि से अविनाशी और पर्याय की दृष्टि से विनाशी होगी।

प्रश्नकर्ता : हम जो देखते हैं और सिद्ध भगवान जो देखते हैं, उनके पर्याय क्या अलग होंगे?

दादाश्री : वे तो अलग ही हैं न! हम चिपके हुओं को उखाड़ते हैं और सिद्धों को तो कुछ उखाड़ना-करना है ही नहीं। उन्हें तो चिपकते ही नहीं हैं न! सिद्धों का स्वरूप हमारी श्रद्धा में है और वर्तन में यह विनाशी स्वरूप है। लेकिन श्रद्धा में यह विनाशी स्वरूप चला गया है।

प्रश्नकर्ता : 'द्रव्य से, तत्व से संपूर्ण शुद्ध हूँ, सर्वांग शुद्ध हूँ' ऐसा ज्ञान-दर्शन से ही है न?

दादाश्री : द्रव्य से है, ज्ञान-दर्शन से भी है, और गुण से भी है, सभी गुणों से।

प्रश्नकर्ता : आत्मा के शुद्ध हो जाने के बाद उसके पर्याय रहते हैं क्या?

दादाश्री : पर्याय के बिना तो आत्मा होता ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : पर्याय होंगे तो फिर आत्मा बदल नहीं जाएगा?

दादाश्री : बिल्कुल भी नहीं बदलता। यह जो लाइट है, वह जड़ है। तो उदाहरण के रूप में इसे लें तो यह लाइट द्रव्य कहलाती है और प्रकाश देने की जो शक्ति है, वह ज्ञान-दर्शन कहलाती है। और प्रकाश में जो ये सभी चीज़े दिखती हैं, वे ज्ञेय कहलाती हैं। अब लाइट को किसी चीज़ में बंद कर दो तो उसे कुछ भी नहीं चिपकता, वह शुद्ध ही रहती है। जैसा आपकी श्रद्धा में है, आत्मा वैसा ही हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : खुद खुद के द्रव्य से भी शुद्ध है, वह कैसे?

दादाश्री : वह स्वभाव से ही है। द्रव्य से तो सभी तत्व शुद्ध ही हैं, सिर्फ पर्याय से ही सब बिगड़ा है।

इस पर्याय शब्द का जैसा संसार में उपयोग होता है, उस प्रकार से उपयोग नहीं कर सकते। पर्याय सिर्फ अविनाशी वस्तु पर, सत् वस्तु पर ही लागू होता है, अन्य किसी जगह पर लागू नहीं होता। चेतन के पर्याय चेतन होते हैं और अचेतन के पर्याय अचेतन होते हैं। द्रव्य, गणु और पर्याय यदि एक्ज़ेक्टनेस में समझ में आ जाएँ तो 'केवलज्ञान स्वरूप' हो जाएगा!

प्रश्नकर्ता : अचेतन पर्याय क्या असर डालते हैं?

दादाश्री : 'ज्ञानी' पर किसी प्रकार का असर नहीं होता और अज्ञानी पर असर होता है।

प्रश्नकर्ता : अज्ञानी को कर्म बँधवाता है?

दादाश्री : हाँ।

आत्मा के द्रव्य, गुण और पर्याय, वह बहुत गूढ़ बात है, समझ में आ सके, ऐसी नहीं है। वीतरागों का विज्ञान ऐसा नहीं है कि उसके पार जा सके।

आत्मा : परमानंद स्वरूपी

जब तक व्यवहार आत्मा है, तब तक मानसिक आनंद है। आत्मा को जानने के बाद आत्मा का आनंद प्राप्त होता है, शब्दरूप से सुने हुए आत्मा से काम नहीं चलता, यर्थाथ स्वरूप से होना चाहिए।

निरंतर आनंद में रहने का नाम ही मोक्ष है। कोई गालियाँ दे, जेब काटे, तब भी आनंद नहीं जाए, वही मोक्ष है। मोक्ष कोई अन्य वस्तु नहीं है। 'ज्ञानीपुरुष' को निरंतर परमानंद ही रहता है।

आत्मा का स्वभाव ही परमानंद स्वरूपी है। सिद्ध भगवंतों का परमानंद असीम होता है। उनका एक मिनट का आनंद पूरे जगत् के जीवों के एक वर्ष तक के आनंद के बराबर होता है। फिर भी यह तो स्थूल सिमिली (उपमा) ही है।

बाहर से जो कोई भी आनंद आता है, वह पौद्‌गलिक आनंद है। किंचित् मात्र भी बाहर से आनंद नहीं हो, *पुद्‌गल* परमाणु मात्र में से नहीं हो, सहज, अप्रयास प्राप्त आनंद, वही आत्मा का आनंद है। शास्त्रों को पढ़कर जो आनंद आता है, वह आत्मा का आनंद नहीं है, वह पौद्‌गलिक आनंद है। बहुत धूप से थका हुआ मनुष्य बबूल के नीचे आकर निःश्वास ले, उसके जैसा है। जो मेहनत की है, उस मेहनत का आनंद है, आनंद तो साहजिक रहना चाहिए, निराकुल आनंद रहना चाहिए। विवाह में और सिनेमा में आनंद है, लेकिन वह आकुल-व्याकुल आनंद है, वह मनोरंजन है, आत्मरंजन नहीं है। निराकुल आनंद उत्पन्न हो, तब समझना कि आत्मा प्राप्त हुआ है।

आनंद तो आत्मा के सहचारी गुणों में से एक गुण है, अन्वय गुण है। आत्मा जानने के बाद आत्मा का शुद्ध पर्यायिक आनंद उत्पन्न होता है, वह क्रमपूर्वक बढ़ते-बढ़ते संपूर्ण दशा तक पहुँचता है। जिस प्रकार से बाहर के सभी संयोगों में से मुक्त होने के बाद परेशानी नहीं रहती, ठेठ केवलज्ञान होने तक कुछ भाग शुद्ध पर्याय में नहीं रहते। केवलज्ञान के बाद में जब सभी पर्याय शुद्ध पर्यायों में आ जाते हैं, उसके बाद में वह मोक्ष में जाता है।

प्रश्नकर्ता : सच्चा आनंद किस प्रकार से अनुभव किया जा सकता है?

दादाश्री : सच्चा आनंद किसी भी बाह्य प्रकार से अनुभव नहीं किया जा सकता। इस लौकिक आनंद के लिए इन्द्रियों की ज़रूरत हैं, लेकिन सच्चे आनंद के लिए इन्द्रियों की ज़रूरत नहीं हैं। बल्कि इन्द्रियाँ अंतराय डालती हैं। सच्चा आनंद तो शाश्वत आनंद है। जब तक किसी भी वस्तु का आधार रहता है, तब तक वह पौद्‌गलिक आनंद है। आधार अर्थात् कोई वस्तु मिले, विषयों की वस्तु मिले, मान-तान मिले, लोभ में लाभ हो, वे सभी कल्पित, पौद्‌गलिक आनंद! जगत् विस्मृत करवा दे, वह आनंद कहलाता है, और वही आत्मा का आनंद है। आनंद तो निरुपाय आनंद होना चाहिए, मुक्त आनंद होना चाहिए।

जीव मात्र के भीतर भरपूर आनंद भरा हुआ ही है, लेकिन आत्मा का वह आनंद आना बंद हो गया है। कषाय, क्लेश, राग-द्वेष होने से आत्मा पर आवरण आ जाता है और आनंद चला जाता है। गाय के सींग पर राई का दाना रखने पर जितनी देर तक वह टिके, उतनी ही देर तक यदि आत्मा का आनंद चख ले तो वह फिर जाएगा नहीं। एक बार दृष्टि में फ़िट हो गया, इसलिए। सच्चा आनंद एक सरीखा रहता है, बहुत तृप्ति रहती है। उस आनंद का वर्णन ही नहीं हो सकता।

क्रोध-मान-माया-लोभ की गैरहाज़िरी, वही आनंद है। जो संसारी आनंद आता है, वह मूर्च्छा का आनंद है, ब्रान्डी पीने जैसा। जगत् ने आनंद देखा ही नहीं है। जो भी देखा है, वह तिरोभावी आनंद देखा है। आनंद में थकान नहीं लगती, बोरियत नहीं होती। बोर होने का मतलब ही थकान है।

प्रश्नकर्ता : और किसी जगह की बजाय यहाँ की चीज़ मुझे अलग लगती है। यहाँ पर सभी के चेहरे पर हास्य और आनंद अलग ही प्रकार का है। इसका क्या कारण है?

दादाश्री : आपको यह परीक्षा (जाँच) करना आया, वह बहुत बड़ी बात है। यह परीक्षा करना आसान नहीं है। यह तो वर्ल्ड का आश्चर्य है! इसका कारण यह है कि यहाँ पर सबके अंदर की जलन बंद हो गई है और आत्मा का आनंद उत्पन्न हुआ है। यहाँ पर सच्चा आनंद प्राप्त होता है, उससे कितने ही जन्मों से पड़े हुए घाव भर जाते हैं। वर्ना संसार के घाव तो भरते ही नहीं है न! एक घाव भरने लगे, तब तक तो दूसरे पाँच घाव हो जाते हैं! आत्मा के आनंद से अंदर सभी घाव भर जाते हैं, उससे मुक्ति का अनुभव होता है!!

प्रश्नकर्ता : दुनिया में ऐसी कोई चीज़ है कि जो आनंद प्राप्त करवाए?

दादाश्री : 'ज्ञानीपुरुष' को देखते ही आनंद होता है।

प्रश्नकर्ता : आपकी बात सुनने से ही हमें असीम आनंद होता है तो आपको कितना आनंद है?

दादाश्री : आपके अंदर भी वही आनंद भरा हुआ है, मेरे अंदर भी वही आनंद भरा हुआ है, सभी में वही आनंद है, एक ही स्वरूप है। जिसका जितना पुरुषार्थ और जितना 'ज्ञानी' का *राजीपा,* इन दोनों का गुणाकार हुआ कि चल पड़ा (आत्म प्रगति होने लगी)।

आत्मा : अनंत शक्ति

खुद में खुद की संपूर्ण शक्तियाँ व्यक्त हो जाएँ, वही परमात्मा है। लेकिन ये शक्तियाँ आवृत हो गई हैं, वर्ना खुद ही परमात्मा है।

हर एक जीव मात्र में, गधे, कुत्ते, गुलाब के पौधे में भी आत्मा की अनंत शक्तियाँ हैं, लेकिन वे आवृत हैं इसीलिए फल नहीं देतीं। जितनी प्रकट हुई होंगी, उतना ही फल देंगी। इगोइज़म और ममता पूरी तरह से चले जाएँ, तो वह शक्ति व्यक्त होगी।

पुद्‌गल के प्रति जितनी सस्पृहता थी और आत्मा के प्रति निःस्पृहता थी, तो अब *पुद्‌गल* के प्रति निःस्पृहता जितनी अधिक होती जाएगी, उतनी ही आत्मा पर सस्पृहता आएगी।

पुद्‌गल की, आत्मा की सभी शक्तियाँ एक मात्र प्रकट परमात्मा में ही लगाने जैसी हैं। मनुष्य में पूर्ण परमात्म शक्ति है, जिसका उपयोग करना आना चाहिए। 'ज्ञानीपुरुष' सभी शक्तियाँ देने को तैयार है, शक्ति आपके अंदर ही पड़ी हुई है। लेकिन आपको ताला खोलकर लेने का हक़ नहीं है। ज्ञानीपुरुष खोल देंगे, तब वे निकलेंगी। इस हिन्दुस्तान का एक ही मनुष्य पूरे वर्ल्ड का कल्याण कर सकता है, उसमें इतनी सारी शक्तियाँ हैं, लेकिन ये शक्तियाँ अभी उल्टे रास्ते पर जा रही हैं, इसलिए सबोटेज हो रहा है। इसको कंट्रोलर की आवश्यकता है। 'ज्ञानीपुरुष' और 'सत्‌पुरुष' और 'संतपुरुष' इसके निमित्त होते हैं।

भगवान से कौन-सी शक्ति माँगनी चाहिए? 'यह जो तूफान चला है, इसमें ज्ञान शक्ति और स्थिरता शक्ति दीजिए', ऐसे माँगना चाहिए। *पुद्‌गल* शक्ति नहीं माँगनी चाहिए, ज्ञान शक्ति माँगनी चाहिए।

अंदर अनंत शक्तियाँ हैं। अनंत सिद्धियाँ हैं, लेकिन अव्यक्त रूप

से रही हुई हैं। अंदर सुंदर, सुरम्य शक्तियाँ हैं! ग़ज़ब की शक्तियाँ हैं, उन्हें रखकर बाहर से कुरूप शक्तियाँ मोल लाए। स्वभावकृत शक्तियाँ कितनी सुंदर हैं! और ये विकृत शक्तियाँ बाहर से मोल लाए! अंदर दृष्टि पड़ी ही नहीं। आत्मा प्राप्त होने पर वे शक्तियाँ व्यक्त होने लगती है।

आत्मशक्तियों को तो आत्मवीर्य कहा जाता हैं। आत्मवीर्य कम हो तो उसमें कमज़ोरी उत्पन्न होती है। क्रोध-मान-माया-लोभ उत्पन्न हो जाते हैं, अहंकार के कारण आत्मवीर्य टूट जाता है, तो जैसे-जैसे अहंकार का विलय होता है वैसे-वैसे आत्मवीर्य उत्पन्न होता जाता है। जब-जब ऐसा लगे कि आत्मवीर्य कम हो रहा है, तब पच्चीस-पच्चीस बार ऊँची आवाज़ में बोलना कि 'मैं अनंत शक्तिवाला हूँ' तो शक्ति उत्पन्न होगी।

प्रश्नकर्ता : 'मैं अनंत शक्तिवाला हूँ' ऐसा बोलते हैं, लेकिन सिद्ध भगवानों के लिए वह शक्ति कौन-सी है?

दादाश्री : यह तो जब तक वाणी है तभी तक 'मैं अनंत शक्तिवाला हूँ' ऐसा बोलने की ज़रूरत है और मोक्ष में जाते हुए विघ्न अनंत प्रकार के हैं, इसलिए उनके सामने हम अनंत शक्तिवाले हैं, बाद में कुछ बाकी नहीं रहता। वाणी और विघ्न हैं, तभी तक बोलने की ज़रूरत है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा के मोक्ष में जाने के बाद में, ज्ञाता-दृष्टा के अलावा अन्य कौन-सी शक्ति है?

दादाश्री : अन्य कई शक्तियाँ हैं। खुद की शक्ति से वह यह सब पार कर लेता है। उसके बाद मोक्ष में जाने के बाद उन सभी शक्तियों का स्टॉक रहता है। आज भी वे सभी शक्तियाँ हैं, लेकिन जितनी काम में आएँ, उतना सही।

प्रश्नकर्ता : मोक्ष में जाने के बाद वे शक्तियाँ औरों के काम नहीं आतीं न?

दादाश्री : बाद में फिर किस में उपयोग करना है? और वहाँ पर किसलिए उपयोग करना है? खुद को अन्य कोई परेशानी नहीं आए, वैसी सेफसाइड रहती है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा की अनंत शक्तियाँ हैं, वे क्या देह के कारण हैं?

दादाश्री : देह के कारण तो नाशवंत शक्तियाँ हाज़िर होती हैं।

प्रश्नकर्ता : मोक्ष में भी अनंत शक्तियाँ हैं?

दादाश्री : हाँ। सभी शक्तियाँ हैं, लेकिन वहाँ उनका उपयोग नहीं करना है। मोक्ष में जाते हुए अनंत अंतराय हैं, अत: मोक्ष में जाने के लिए, उनके सामने अनंत शक्तियाँ हैं।

प्रश्नकर्ता : आत्मा की अनंत शक्तियों का उपयोग किस तरह से होता है? ज्ञाता-दृष्टा रहने में ही?

दादाश्री : ज्ञाता-दृष्टापन, वह मूल वस्तु है। वह आ जाएगा तो सभी शक्तियाँ उत्पन्न हो जाएँगी। उसके साथ 'हम' 'जोइन्ट' कर दें तो वे सभी शक्तियाँ ऑटोमेटिकली प्राप्त हो जाएँगी।

आत्मा की अनंत शक्तियाँ हैं, उनका यदि उल्टा उपयोग हो तो ऐसा भी कर डाले और सीधा उपयोग हो तो असीम आनंद उत्पन्न होगा। उल्टा उपयोग हुआ, उसीसे तो यह पूरा जगत् उत्पन्न हो गया है! सिद्ध भगवानों को तो निरंतर ज्ञाता-दृष्टा और परमानंद, उसमें ही निरंतर रहना है। उन्हें ग़ज़ब का सुख बर्तता है।

प्रश्नकर्ता : इसका मतलब क्या यह हुआ कि ये जो अनंत शक्तियाँ हैं, मोक्ष में जाते हुए उनका खुद के स्वभाव में रहने के लिए ही उपयोग करना है?

दादाश्री : इन उल्टी शक्तियों से संसार उत्पन्न हो गया है। अब सीधी शक्ति इतनी अधिक हैं कि जो सभी विघ्न तोड़ डाले। इसीलिए तो हम वह वाक्य बुलवाते हैं, 'मोक्ष में जाते हुए विघ्न अनंत प्रकार के होने से उनके सामने मैं अनंत शक्तिवाला हूँ।' ज्ञाता-दृष्टा रहने से तमाम विघ्नों का नाश हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : आत्मशक्तियाँ कब प्रकट होती है?

दादाश्री : खुद अनंत शक्तिवाला ही है! आत्मा होकर 'मैं अनंत

शक्तिवाला हूँ' बोले तो वे शक्तियाँ प्रकट होती जाती हैं। 'ज्ञानीपुरुष' जो रास्ता दिखाएँ, उस रास्ते चलकर छूट जाना है, नहीं तो छूटा जा सके ऐसा नहीं है। इसीलिए वे कहें उस रास्ते पर चलकर छूट जाना है।

कोई गा रहा हो और उसकी मज़ाक उड़ाओ, उस पर चिढ़ो या और कुछ करो तो वह उसकी विराधना कहलाएगी। विराधना का फल भयंकर आता है। और आराधना करो कि 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' तो आपको भी वह आ जाएगा।

आत्मा की कितनी सारी शक्तियाँ हैं? कोई ज़मीन का पूछे तो तुरन्त जवाब देता है कि इतनी बीघा है, आकार पूछे तो कहता है 'ऐसा है'। सामने से किसी आदमी को आता हुआ देखे तो तुरन्त कहेगा कि चाचा ससुर आए हैं! कभी भी कुछ भी पूछो तो भी कितनी तरफ का लक्ष्य एट ए टाइम रखता है!

आत्मा की चैतन्य शक्ति किससे आवृत है? 'यह चाहिए और वह चाहिए', लोगों की ज़रूरते हैं, तो उनका देखकर हम भी सीख गए वह ज्ञान। इसके बगैर नहीं चलेगा। मेथी की भाजी के बगैर नहीं चलेगा, ऐसे करते-करते उलझ गया! अनंत शक्तिवाला है, उस पर पत्थर डालते रहे!

आत्मा : अगुरु-लघु स्वभाव

आत्मा अगुरु-लघु स्वभाववाला है। अगुरु-लघु का मतलब अगुरु-अलघु! आत्मा गुरु नहीं है, लघु नहीं है, मोटा नहीं है, पतला नहीं है, ऊँचा नहीं है, नीचा नहीं हैं, आत्मा अगुरु-लघु स्वभावाला है। अन्य सबकुछ गुरु-लघु स्वभाववाले हैं। क्रोध-मान-माया-लोभ, राग-द्वेष, ये सभी गुरु-लघु स्वभाववाले हैं। जब क्रोध आता है तब शुरूआत में कम होता है, फिर बढ़ते-बढ़ते शिखर तक पहुँचता है और वहाँ से वापस उतरने लगता है, फिर खत्म हो गया, ऐसा पता चलता है; जब कि आत्मा में चढ़ाव-उतार होता ही नहीं। ये राग-द्वेष भी गुरु-लघु स्वभाववाले हैं। आत्मा का और राग-द्वेष का, इन दोनों का कोई लेना-देना ही नहीं है। यह तो आरोपित भाव है कि आत्मा को राग होता है, द्वेष होता है। ये व्यवहार के भाव

हैं। वास्तव में राग-द्वेष, वह सिर्फ पौद्‌गलिक आकर्षण और विकर्षण ही है। राग आकर्षण है और द्वेष विकर्षण है।

जो प्रेम अगुरु-लघु स्वरूपी है, वही परमात्मा प्रेम है। परमात्मा अगुरु-लघु प्रेम स्वरूपी है। जो प्रेम बढ़े नहीं, घटे नहीं, वह परमात्म प्रेम है। जो घड़ीभर में चढ़े और घड़ीभर में उतरे, वह प्रेम नहीं है, लेकिन आसक्ति है।

प्रश्नकर्ता : अगुरु-लघु स्वभाव सभी द्रव्यों में सामान्य है?

दादाश्री : हर एक द्रव्य में अगुरु-लघु स्वभाव एक सामान्य गुण है। लेकिन प्रकृति, जो विकृत स्वभाववाली है, वह गुरु-लघु स्वभाववाली होती है। जगत् में जो शुद्ध परमाणु हैं, वे अगुरु-लघु स्वभाववाले हैं। मनुष्य जब भाव करता है तब परमाणु खिंचते हैं, तब प्रयोगसा कहलाता है। उसके बाद मिश्रसा होता है। मिश्रसा फल देकर जाता है, उसके बाद वह वापस विश्रसा अर्थात् शुद्ध परमाणु बन जाते हैं। मिश्रसा और प्रयोगसा, वे गुरु-लघु स्वभाववाले हैं और विश्रसा परमाणु अगुरु-लघु स्वभाववाले हैं।

प्रश्नकर्ता : अगुरु-लघु स्वभाव अर्थात् हानि-वृद्धि करवाते हैं?

दादाश्री : नहीं, अगुरु-लघु स्वभाव अर्थात् बाहर हानि होती है, वृद्धि होती है, लेकिन 'खुद' अगुरु-लघु स्वभाव में आ जाता है। हर एक शुद्ध तत्व में अगुरु-लघु स्वभाव सामान्य है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा का अगुरु-लघु स्वभाव अर्थात् किसी भी प्रदेश को बाहर नहीं जाने दे, वैसा?

दादाश्री : हाँ, उसके प्रदेश से बाहर नहीं जाने देता, यानी कि स्थिरता नहीं छोड़ता।

क्रोध-मान-माया-लोभ, राग-द्वेष, ये आत्मा के अन्वय गुण नहीं हैं, व्यतिरेक गुण हैं। अन्वय गुण अर्थात् सहचारी गुण। हमेशा साथ में रहनेवाले गुण। यदि राग-द्वेष अन्वय गुण होते तो राग-द्वेष सिद्ध भगवंतों को भी नहीं छोड़ते। लेकिन ये तो व्यतिरेक गुण हैं यानी कि आत्मा की हाज़िरी से *पुद्‌गल* में उत्पन्न होनेवाले गुण! जिस प्रकार सूर्यनारायण की हाज़िरी

से संगमरमर का पत्थर दोपहर को गरम हो जाता है, तो इसमें संगमरमर का पत्थर कुछ गरम स्वभाव का नहीं है, वह तो मूलत: ठंडे स्वभाव का ही है। वह तो सूर्यनारायण के स्वभाव से गरम हो जाता है।

आत्मा को टंकोत्कीर्ण स्वभाववाला कहते हैं, वह उसके अगुरु-लघु स्वभाव के कारण है।

आत्मा : अरूपी

आत्मा अरूपी है, उसने बहुरूपी का रूप धारण किया है। बाहर जो बहुरूपी चलता है, उसे वह खुद जानता है कि मैं खुद बहुरूपी नहीं हूँ, लेकिन बहुरूपी का रूप धारण किया है। लोग हँसें तो खुद भी हँसता है। यानी कि खुद के स्वरूप को ही जानता है।

आत्मा अरूपी है। यानी भगवान ने क्या कहा है कि यदि अरूपी मानकर आत्मा की भजना करने जाएगा तो *पुद्गल* के अलावा अन्य तत्व भी अरूपी हैं, उनमें तू फँस जाएगा, इसलिए 'ज्ञानीपुरुष' के पास से आत्मा तत्व को जान लेना तो मूल आत्मा मिल जाएगा। आत्मा सिर्फ अरूपी ही नहीं है, उसके और भी अनंत गुण हैं। इसलिए एक गुण को पकड़कर रखेगा तो ठिकाना नहीं पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : आत्मा अरूपी है और कर्म रूपी हैं। तो अरूपी को रूपी कैसे चिपक गए?

दादाश्री : ये कर्म चिपके हैं, वह भ्रांति से ऐसा लगता है कि, 'मुझे चिपका', लेकिन ऐसा नहीं है। घर में यदि चंदूलाल सेठ अकेले हों और रात को सो रहे हों और दो बजे रसोई में कुछ खड़के तो पूरी रात 'भूत है' सोचकर घबराता रहता है। सुबह जाए और दरवाज़ा खोले तो अंदर मोटा चूहा होता है! तेरी नासमझी से ही कर्म चिपके हैं।

आत्मा : टंकोत्कीर्ण स्वभाव

प्रश्नकर्ता : 'टंकोत्कीर्ण है' ऐसा आप कहते हैं, तो टंकोत्कीर्ण का मतलब क्या है?

दादाश्री : टंकोत्कीर्ण, वह साइन्टिफिक शब्द है। लोकभाषा का शब्द नहीं है, ऋषभदेव भगवान का कहा हुआ शब्द है। पंडितों की समझ में आ सके, ऐसा नहीं है। फिर भी मैं संक्षिप्त में स्थूल भाषा में समझाता हूँ। इस *पुद्गल* को और आत्मा को चाहे कितना भी बिलोते रहें, तो भी वे कभी भी एकाकार-यानी की कम्पाउन्ड नहीं बन जाते। सदैव मिक्स्चर के रूप में ही रहता है। कम्पाउन्ड बन जाए तो आत्मा का मूल गुणधर्म बदल जाएँगे, लेकिन मिक्स्चर में नहीं बदलते।

तेल और पानी को चाहे कितना भी मिक्स करने जाएँ, फिर भी दोनों एकाकार नहीं होते। मूल वस्तु के रूप में आत्मा और *पुद्गल* एकाकार नहीं होते। अतः आत्मा वस्तु के रूप में है और अविनाशी है, और आत्मा के अलावा अन्य वस्तुएँ भी हैं कि जो अविनाशी हैं। वे सब इकट्ठी हुई हैं, लेकिन एकाकार नहीं हुई हैं और एकाकार हो भी नहीं सकतीं। क्योंकि हर एक मूल तत्व टंकोत्कीर्ण स्वभाव का है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कुछ नहीं कर सकता, वह टंकोत्कीर्ण स्वभाव के कारण है।

इस *पुद्गल* तत्व का स्वभाव ऐसा अलग ही प्रकार का है कि जो यह सब उत्पन्न कर देता है! वहाँ पर मति नहीं पहुँच सकती। आत्मा की मात्र बिलीफ़ बदलती है। इसमें 'कल्प' से विकल्प बने, इसी वजह से यह देह और संसार उत्पन्न हो जाता है। फिर भी इसमें आत्मा खुद स्वभावपरिणामी ही रहता है, कभी भी स्वभाव चूकता नहीं है।

टंकोत्कीर्ण शब्द तो बहुत बड़ा है, किसीकी बिसात नहीं है इसका संपूर्ण अर्थ करने की। अर्थ करते हैं, लेकिन हर कोई अपनी भाषा में करता है। 'ज्ञानीपुरुष' अंतिम भाषा में समझाते हैं, लेकिन अंतिम भाषा में शब्द नहीं निकलते। क्योंकि मूल वस्तु तक पहुँचने के लिए शब्द नहीं होते। हम जो बोलते हैं, वे संज्ञासूचक शब्द हैं, बाकी मूल वस्तु तो शब्दातीत है। आत्मा शब्द रखा गया है, वह भी संज्ञासूचक है। बाकी आत्मा वस्तु ही ऐसी है कि जिसका नाम नहीं है, रूप नहीं है।

टंकोत्कीर्ण, वह परमार्थ भाषा का शब्द है और स्वानुभव उसका प्रमाण है।

शुद्धचेतन टंकोत्कीर्ण स्वभाववाला है। पर-*पुद्गल* में रहने के बावजूद शुद्धचेतन टंकोत्कीर्ण स्वभाव की वजह से कभी भी तन्मयाकार नहीं हुआ है। एकत्व भाववाला नहीं हुआ है, सर्वथा अलग ही रहा है। सिर्फ भ्रांति से तन्मयाकार भासित होता है। किसी भी वस्तु में शुद्धचेतन मिक्स नहीं हो सकता।

शुद्धचेतन स्थूलतम से सूक्ष्मतम तक के तमाम पौद्गलिक पर्यायों का ज्ञाता-दृष्टा मात्र है, टंकोत्कीर्ण है, केवलज्ञान स्वरूप है।

आत्मा : अव्याबाध स्वरूप

'मैं शुद्धत्मा हूँ', ऐसा लक्ष्य में बैठ गया, तब से अनुभव श्रेणी शुरू हो जाती है। कोई जंतु पैर के नीचे कुचल गया तो 'उसे' शंका होती है, नि:शंकता नहीं रह सकती। अतः तब तक 'चंदूलाल' से 'आपको' प्रतिक्रमण करवाना पड़ेगा कि 'चंदूलाल, आपने जंतु को कुचला, इसलिए प्रतिक्रमण करो।' ऐसे करते-करते सूक्ष्म भाव की अनुभव श्रेणी प्राप्त होगी और खुद का स्वरूप अव्याबाध स्वरूप है, ऐसा लगेगा, दिखेगा और अनुभव में आएगा। उसके बाद शंका नहीं होगी। तब तक तो जप आत्मा, तप आत्मा, त्याग आत्मा, सत्य आत्मा में रहता है, वह शुद्धात्मा में नहीं है। उसे श्रेणी नहीं कहते। अर्थात् वह व्यक्ति मोक्ष में जाएगा या कहीं ओर जाएगा, यह कहा नहीं जा सकता। शुद्धात्मा का लक्ष्य बैठने के बाद में श्रेणियों की शुरूआत होती हैं, उसके बाद खुद का स्वरूप अव्याबाध है, सूक्ष्म है, अमूर्त है, ऐसा अनुभव में आता जाता है।

प्रश्नकर्ता : अव्याबाध का मतलब क्या है?

दादाश्री : अव्याबाध का अर्थ यह है कि मेरा स्वरूप ऐसा है कि कभी किसी जीव को किंचित् मात्र भी दु:ख नहीं दे सकता और सामनेवाले का स्वरूप भी वैसा ही है कि उसे कभी भी दु:ख नहीं हो सकता; उसी प्रकार से हमें भी सामनेवाला दु:ख नहीं दे सकता, ऐसा अनुभव हो जाता है। सामनेवाले को उसका अनुभव नहीं है, लेकिन मुझे तो अनुभव हो गया है, फिर मुझसे किसीको दु:ख होगा, ऐसी शंका नहीं रहती। जब तक सामनेवाले को मुझसे दु:ख होता है, ऐसी थोड़ी-सी भी शंका रहे तो उसका

प्रतिक्रमण करना चाहिए, उस शंका का निवारण करना चाहिए। और 'अपना' स्वरूप तो वही का वही है, अव्याबाध! 'ज्ञानीपुरुष' ने जिस सिंहासन पर बैठाया है, उस सिंहासन पर बैठे-बैठे काम करते रहना है!!

प्रश्नकर्ता : यह पीड़ा किसे होती है? आत्मा को?

दादाश्री : आत्मा को पीड़ा ने कभी भी स्पर्श किया ही नहीं। और यदि पीड़ा स्पर्श करे, आत्मा का स्पर्श हो जाए तो वह पीड़ा सुखमय हो जाएगी। आत्मा अनंत सुख का धाम है। माने हुए आत्मा को पीड़ा होती है, मूल आत्मा को कुछ भी नहीं होता। मूल आत्मा तो अव्याबाध स्वरूप है! बिल्कुल ही बाधा-पीड़ा रहित है!! इस देह को कोई छुरी मारे, काटे तो बाधा-पीड़ा उत्पन्न होती है, लेकिन आत्मा को कुछ भी नहीं होता।

आत्मा : अव्यय

आत्मा अव्यय है। मन-वचन-काया का निरंतर व्यय हो रहा है। व्यय दो प्रकार के : एक अपव्यय और दूसरा सद्व्यय। बाकी आत्मा तो अव्यय है। अनंत काल से भटक रहा है, कुत्ते में, गधे में गया, लेकिन आत्मा का इतना-सा भी व्यय नहीं हुआ है।

आत्मा : निरंजन, निराकार

प्रश्नकर्ता : आत्मा को निरंजन, निराकार क्यों कहा है?

दादाश्री : निरंजन अर्थात् उसे कर्म लग नहीं सकते। निराकार अर्थात् उसकी कल्पना की जा सके, ऐसा नहीं है। बाकी उसका आकार है, लेकिन वह स्वाभाविक आकार है, लोग समझते हैं वैसा आकार नहीं है, लोग तो कल्पना में पड़ते हैं कि आत्मा गाय जैसा है या घोड़े जैसा, लेकिन वह ऐसा नहीं है। आत्मा का स्वाभाविक आकार है, कल्पित नहीं है। आत्मा निराकार होने के बावजूद देह के आकार का है। जिस भाग पर देह का आवरण है, उस भाग में जो आत्मा है, उसका वैसा ही आकार है।

आत्मा भाजन के अनुसार संकुचन और विकास करता है, भाजन के अनुसार प्रकाश देता है (प्रकाशमान होता है)। अंतिम अवतार के बाद जब देह नहीं रहती, तब पूरे लोक को प्रकाशमान करता है।

प्रश्नकर्ता : सिद्ध क्षेत्र में आत्मा भाजन के अनुसार होता है?

दादाश्री : वह अंतिम देह के भाजन के अनुसार होता है। अंतिम देह जिस आकार का होता है, उससे थोड़ा ही छोटा होता है।

प्रश्नकर्ता : तो आत्मा का आकार है या निराकार है?

दादाश्री : निराकार है, फिर भी साकारी है। कोई मनुष्य ऐसा नहीं कह सकता कि साकारी ही है। निराकार तो है ही, लेकिन साकार भी है, वह। साकार उसका अलग-अलग स्वभाव का है।

प्रश्नकर्ता : जगत् में सबकुछ साकारी है, तो लोग निराकारी कहते हैं, वह किस प्रकार से?

दादाश्री : निराकार, वह चीज़ अलग है। लोग निराकार को 'वैक्यूम' जैसा समझते हैं, लेकिन यह आकाश जैसा है। आकाश निराकारी है।

प्रश्नकर्ता : संत कहते हैं कि परमात्मा निराकार है। वे फिर ऐसा भी कहते हैं कि राम और कृष्ण हो चुके हैं, वे भगवान हैं। देहवाले निराकार हैं, ऐसा कहते हैं, इसलिए हम उलझ जाते हैं।

दादाश्री : जो निराकार हैं, वे तो परमात्मा हैं। लेकिन निराकार को भजें किस तरह? वह तो जिनके अंदर परमात्मा प्रकट हुए हैं, उन्हें भजने से परमात्मा प्राप्त होंगे। भगवान तो विशेषण है, जब कि परमात्मा, वह विशेषण नहीं है। परमात्मा का, निराकार का, ध्यान नहीं किया जा सकता। लेकिन देहधारी परमात्मा हों, तो उनके दर्शन किए जा सकते हैं, निदिध्यासन किया जा सकता है।

आत्मा : अमूर्त

आत्मा अमूर्त है और मूर्त के अंदर रहा हुआ है। जो मूर्त है, वह रिलेटिव है और अंदर अमूर्त है, वह 'रियल' है। जिस मूर्ति में अमूर्त प्रकट हो गए हैं, वे मूर्तामूर्त भगवान कहलाते हैं। 'ज्ञानीपुरुष' प्रकट भगवान कहलाते हैं, वहाँ पर अपना आत्यंतिक कल्याण हो जाता है।

आत्मा : परम ज्योतिस्वरूप

प्रश्नकर्ता : आत्मा का स्वरूप कुछ भी नहीं है?

दादाश्री : आत्मा का ज्ञान स्वरूप और दर्शन स्वरूप है।

प्रश्नकर्ता : ज्योतिस्वरूप कहते हैं, वह क्या है?

दादाश्री : यह सामान्य रूप से ज्योतिस्वरूप मानते हैं, वह वैसा नहीं है। अपने यहाँ पर 'इलेक्ट्रिक' के तेज को तेज कहते हैं, वह ऐसा तेज नहीं है।

आत्मा परम ज्योतिस्वरूप है, स्व-पर प्रकाशक है। ज्योतिस्वरूप अर्थात् जब आत्मा के ज्ञान और दर्शन, ये दोनों इकट्ठे हो जाएँ, उसे कहा है। ज्योतिस्वरूप अर्थात् 'वही प्रकाशक है', उसे कहा है। 'इनर-आउटर' सभी वस्तुओं को जानता है; वस्तु को वस्तु के रूप में जानता है और अवस्था को अवस्था के रूप में जानता है। जितना जाने, उतना सुख उत्पन्न होता है।

आत्मा : स्व-पर प्रकाशक

प्रश्नकर्ता : आत्मा स्व-पर प्रकाशक है, तो वह स्वप्रकाशक और परप्रकाशक किस प्रकार से है?

दादाश्री : *पुद्गल* के जितने भी ज्ञेय हैं, वे पूरे ब्रह्मांड के ज्ञेय हैं। उन सब ज्ञेयों को प्रकाशित करनेवाला आत्मा है। खुद ज्ञाता है, दृष्टा है तथा ज्ञेयों और द्रश्यों को प्रकाशित कर सकता है और खुद खुद को भी प्रकाशित कर सकता है। अन्य तत्वों को जानता है तथा खुद ज्ञाता और दृष्टा रहता है।

प्रश्नकर्ता : तो आत्मा स्वप्रकाशक किस प्रकार से हैं?

दादाश्री : खुद के सभी गुणों को जानता है, खुद की अनंत शक्तियों को जानता है, इसलिए स्वप्रकाशक है।

प्रश्नकर्ता : उसका भान होना चाहिए न?!

दादाश्री : भान हुए बगैर तो लक्ष्य ही नहीं बैठेगा न!

प्रश्नकर्ता : मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार, यह सबकुछ 'पर' है?

दादाश्री : शुद्धात्मा के अलावा सभी कुछ 'पर' है, 'स्व' नहीं है।

प्रश्नकर्ता : देह के ज्ञेय कौन-कौन से हैं?

दादाश्री : वे बहुत प्रकार के हैं। अंदर अत:करण में तरह-तरह के विचार आते हैं, वे ज्ञेय हैं, अंतहीन गांठें फूटती हैं, उन सभी को देख सकता है। कषाय होते हैं, अतिक्रमण होता है, वे सभी ज्ञेय हैं। आवरण हट जाएँ तो पूरे ब्रह्मांड को प्रकाशमान करे, ऐसा है। आत्मा इटसेल्फ साइन्स है। विज्ञानघन है।

कुछ लोग कहते हैं कि मुझे ज्योति दिखती है, प्रकाश दिखता है, लेकिन वह प्रकाश ज्योति स्वरूप नहीं होता। उस ज्योति को जो देखता है, वह देखनेवाला आत्मा है। तुझे जो दिखता है, वह तो द्रश्य है। दृष्टा को ढूँढ निकाल।

आत्मा : सूक्ष्मतम ज्योतिर्लिंग

प्रश्नकर्ता : यह ज्योतिर्लिंग क्या होता है?

दादाश्री : आत्मा ज्योतिस्वरूप है। वह देहलिंग स्वरूप नहीं है, स्त्रीलिंग स्वरूप भी नहीं है, न ही पुरुषलिंग स्वरूपी है। यह स्थूल ज्योतिर्लिंग जो कहना चाहते हैं, उससे तो लाखों मील आगे सूक्ष्म ज्योतिर्लिंग है और उससे भी आगे सूक्ष्मतर और अंत में सूक्ष्मतम ज्योतिर्लिंग है, वह आत्मा है।

ज्योतिस्वरूप को लोग यह लाइट का फ़ोकस समझ बैठे हैं। यह जो प्रकाश दिखता है, उसमें से एक भी आत्मप्रकाश नहीं है।

आत्मा : प्रकाश स्वरूप

ये बान्द्रा की खाड़ी के पास से गुज़रें तो बदबू आती है, लेकिन वह बदबू प्रकाश को थोड़े ही स्पर्श करती है? प्रकाश तो प्रकाश स्वरूप से ही रहता है। आत्मा को सुगंध भी स्पर्श नहीं करती और दुर्गंध भी स्पर्श नहीं करती। गंध तो *पुद्गल* का गुण है, उसे वह स्पर्श करती है।

आत्मा : सर्वव्यापक

प्रश्नकर्ता : आत्मा तो सर्वव्यापक है न?

दादाश्री : प्रमेय के अनुसार प्रमाता! प्रमेय अर्थात् भाजन। घड़े में लाइट रखो तो पूरे रूम में फैल जाती है, और रूम से बाहर रखेंगे तो उससे भी अधिक लाइट फैल जाएगी। आत्मा ज्ञानभाव से जब देह से मुक्त हो जाता है, तब वह सर्वव्यापक पूरे ब्रह्मांड में व्याप्त हो जाता है, और यदि अज्ञानभाव से प्रकाशमान हो, तो कुछ ही भाग को प्रकाशमान कर सकता है।

आत्मा : एक स्वभावी

प्रश्नकर्ता : आत्मा तो सभीका एक ही है या अलग-अलग है?

दादाश्री : रामचंद्र जी मोक्ष में गए, वहाँ उनका आत्मा तो है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : है। यहाँ रखकर तो नहीं जाएँगे न।

दादाश्री : हं.... अब रामचंद्र जी मोक्ष का सुख भोग रहे हैं और यहाँ पर कितने ही लोग अंतहीन वेदनाएँ भोग रहे हैं। आत्मा यदि एक ही होता तो एक को सुख हो तो सभी को सुख होना चाहिए, एक मोक्ष में जाए तो सभी को मोक्ष में जाना चाहिए। अत: आत्मा एक नहीं है, लेकिन एक स्वभाववाला है। जिस प्रकार यहाँ पर २४ केरेट के सोने की एक लाख सिल्लियाँ हों और उन्हें गिनना हो तो एक लाख होंगी, लेकिन अंत में वह कहलाता क्या है?

प्रश्नकर्ता : सोना।

दादाश्री : उसी प्रकार से आत्मा की गिनती करनी हो तो अलग-अलग गिने जा सकते हैं, लेकिन अंत में यह चेतन, वही भगवान है। देहरहित स्थिति को परमात्मा कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो फिर आत्मा में से ही परमात्मा बनते हैं, ऐसा है?

दादाश्री : आत्मा ही परमात्मा है, सिर्फ उसे इसका भान होना चाहिए। 'मैं परमात्मा हूँ', ऐसा भान आपको एक मिनट के लिए भी हो जाए तो 'आप' 'परमात्मा' होने लगोगे।

आत्मा : स्वभाव का कर्ता

'ज्ञानीपुरुष' ने ज्ञान में क्या देखा? ऐसा तो उन्होंने क्या देखा कि आत्मा को अकर्ता कहा? तो कर्ता कौन है? यह जगत् किस तरह से चल रहा है, ये क्रियाएँ किस तरह से हो रही हैं उसे ज्ञान में देखा, तभी से सटीक हो गया। संसार का कर्ता आत्मा नहीं है, आत्मा तो खुद के ज्ञान का कर्ता है, स्वाभाविक और विभाविक ज्ञान का कर्ता है। वह तो प्रकाश का ही कर्ता है। उससे बाहर कभी भी गया ही नहीं।

क्रिया का कर्ता आत्मा नहीं है, खुद ज्ञानक्रिया और दर्शनक्रिया का ही कर्ता है। अन्य कहीं पर भी उसकी सक्रियता नहीं है। मात्र आत्मा की उपस्थिति से ही दूसरे सभी तत्वों की सक्रियता उत्पन्न हो जाती है।

आत्मा : चैतन्यघन स्वरूप

प्रश्नकर्ता : आत्मा चैतन्यघन स्वरूप है ऐसा कहते हैं, और फिर दूसरी तरफ ऐसा भी कहते हैं कि आत्मा आकाश जैसा सूक्ष्म है। तो इन दोनों का मेल कैसे पड़ेगा?

दादाश्री : आकाश तत्व हर एक जगह पर विद्यमान है। इस शरीर में और हीरे में भी आकाश तत्व है, लेकिन हीरे में सबसे कम है इसीलिए वह जल्दी से टूटता नहीं है। जितना आकाश तत्व कम, वस्तु उतनी अधिक सघन। आत्मा आकाश जैसा है यानी कि पूरे शरीर में आकाश की तरह सभी जगह पर रह सकता है। और फिर आकाश जैसा सूक्ष्म है, इसलिए आँखों से दिखता नहीं है, लेकिन अनुभव किया जा सकता है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा में आकाश है या नहीं?

दादाश्री : नहीं, आत्मा में आकाश नहीं होता। आकाश जैसा यानी कि सब ओर फैल जाए, ऐसा है।

चैतन्य का अर्थ क्या है? ज्ञान-दर्शन को इकट्‌ठा करें तो वह चैतन्य कहलाता है। अन्य किसी वस्तु में चैतन्य नहीं है। मात्र आत्मा में ही अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन है, इसलिए उसे चैतन्यघन कहा है।

आत्मा : अनंत प्रदेश

आत्मा के अनंत प्रदेश हैं और एक-एक प्रदेश में अनंत-अनंत ज्ञायक शक्ति है, लेकिन ज्ञेय को ज्ञायक मानते हैं, इसलिए आत्मा के प्रदेशों पर कर्मकलंक लगता है, उससे खुद की अनंत शक्तियाँ आवृत हो जाती हैं। इस घड़े के अंदर लाइट हो और उसका मुँह बंद कर दिया हो तो लाइट नहीं आएगी। पीपल के पेड़ की छाल पर लाख चिपक जाने से छाल नहीं दिखती, उसके जैसा है। इन एकेन्द्रिय जीवों में एक इन्द्रिय जितना छेद डलता है, उतना ही उसका प्रकाश बाहर आता है। दो इन्द्रिय जीवों में दो इन्द्रिय जितना, तीन में तीन और चार में चार जितना प्रकाश बाहर आता है। पाँच इन्द्रिय और उसमें भी मनुष्य का सबसे अंतिम प्रकार का डेवेलपमेन्ट है, वहाँ पर सभी प्रदेश खुले हुए हो सकते हैं, ऐसा है। जीव-मात्र में नाभि के सेन्टर पर आत्मा के आठ प्रदेश खुले ही होते हैं, जिसके कारण यह जगत् व्यवहार जान-पहचान वगैरह होता है। इसी कारण से किसी भी जीव को उलझन नहीं होती। ये आठ प्रदेश आवृत हो जाएँ तो कोई किसीको पहचान भी नहीं सकेगा और वापस घर पर लौट भी नहीं सकेगा। लेकिन देखो न, यह व्यवस्थित की व्यवस्था कितनी सुंदर है! आवरणों की भी लिमिट रखी है न? मनुष्यों में भी वकील में जो छेद डला हो उसके आधार पर उसका उस लाइन का दर्शन खुल जाता है। केमिस्ट का उस दिशा का छेद खुल गया होता है। छोटी चींटी में भी खुला हुआ होता है।

ज्ञानावरण और दर्शनावरण, इस प्रकार आवरणों से आत्मा की लाइट रुकी हुई रहती है। 'ज्ञानीपुरुष' के तो सभी आवरण टूट चुके होते हैं, इसलिए भगवान संपूर्ण प्रकाशमान हुए हैं! संपूर्ण निरावृत हो जाएँ तो खुद ही परमात्मा है। सिद्ध भगवंतों में प्रत्येक प्रदेश खुला हुआ होता है। प्रत्येक प्रदेश में खुद का अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन और अनंत सुख होता है! लेकिन

कहाँ गया वह सुख? 'स्वरूपज्ञान' मिलने के बाद जैसे-जैसे आत्म-प्रदेश निरावृत होते जाते हैं, वैसे-वैसे आनंद बढ़ता जाता है।

एक आत्मा में अनंत शक्तियाँ हैं। अनंत जीव हैं, हर एक जीव अलग-अलग प्रकृतिवाले हैं। हर एक में अलग-अलग शक्ति बाहर निकली है, इतनी एक आत्मा में शक्तियाँ है। जिसमें जो प्रकट हुई, उस शक्ति से कमाकर वह रोटियाँ खाता है।

आत्मा अनंत प्रदेशात्मक है। आत्मा एक ही है, उसके भाग अलग-अलग हैं, ऐसा कुछ भी नहीं है। लेकिन वह अनंत प्रदेशवाला हैं। यानी कि एक-एक प्रदेश पर एक-एक परमाणु चिपका हुआ है। जैसे मूँगफली के दाने पर चीनी चढ़ाकर हिला-हिलाकर शीरणी बनाते हैं न? उसी प्रकार से यह प्रकृति रात-दिन हिलती ही रहती है। तो इसमें भी जिस पर चीनी चढ़ गई, उतना सब आवृत हो गया और जितना जिसका बाकी रह गया, उसका उतना रह गया। सबकुछ नियमपूर्वक चलता ही रहता है। जहाँ-जहाँ से आवरण टूटा हुआ हो, वहाँ-वहाँ से उसकी शक्ति प्रकट होती है। किसीमें वाणी का आवरण टूटा हुआ होता है, बुद्धि का टूटा होता है तो वह वकालत ही करता रहता है। अब वकील से कहे कि साहब, ज़रा इतना खेत जोत दीजिए न, तो वह मना करेगा। क्योंकि उसका वह आवरण खुला हुआ नहीं होता।

लेकिन यह सब नियमपूर्वक होता है। कभी भी ऐसा नहीं होता कि सभी में सुथारी काम का आवरण टूट जाए, नहीं तो वे सभी सुथार ही बन जाएँगे, और फिर क्या दशा होगी? शिल्पकला का आवरण सब में टूट जाए और सभी शिल्पी बन जाएँ, तो कौन किसके यहाँ शिल्पी का काम करेगा फिर? सभी वॉरियर्स बन जाएँ तो? अतः यह 'व्यवस्थित' के अनुसार सबकुछ 'व्यवस्थित' प्रकार से ही पैदा होते रहते हैं। डॉक्टर, वकील वगैरह सभीकुछ बनते हैं, इसलिए हर किसीका काम चलता है। नहीं तो यदि सभी पुरुष बन जाएँ तो क्या होगा? स्त्रियाँ कहाँ से लाएँगे? शादी कौन करेगा?

एक भी प्रदेश में रहे हुए *पुद्गल* परमाणु को 'मेरा' नहीं माना जाए, तब खुद का संपूर्ण सुख बरतेगा।

पूरे ब्रह्मांड को प्रकाशित करने की शक्ति आत्मा में है। उसकी खुद की पूरे ब्रह्मांड को प्रकाशित करने की जो स्वसंवेदन शक्ति है, उसे केवलज्ञान कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : खुद के गुणधर्म, अनंत ज्ञान-अनंत दर्शन, उसका ध्यान करें तो वह प्राप्त हो जाएँगे?

दादाश्री : होंगे, अवश्य होंगे। आत्मा के जितने गुणों को जाना, उतने गुणों का ध्यान करे तो आत्मा के उतने प्रदेश खुलते जाएँगे, वैसे-वैसे ज्ञान प्रकाशित होगा और वैसे-वैसे आनंद बढ़ता जाएगा।

महावीर भगवान को तीन वस्तुओं का ज्ञान था:

१) एक परमाणु को देख सकते थे।

२) एक समय को देख सकते थे।

३) एक प्रदेश को देख सकते थे।

ऐसा तो वीतरागों का विज्ञान हैं!

आत्मा : वेदक? निर्वेदक?

प्रश्नकर्ता : जब दाढ़ दुखती हैं तब हम कहते हैं कि, 'दाढ़ मेरी नहीं है', लेकिन वहीं पर ध्यान जाता है, वह क्या है?

दादाश्री : 'मेरी दाढ़ दुःख रही है', बोलने से उसे ज़बरदस्त इफेक्ट होता है, दुःख १२५ प्रतिशत हो जाता है और दूसरा व्यक्ति दाढ़ दुःखने के बावजूद भी मौन रहे तो उसे सौ प्रतिशत वेदना होती है। और कोई यदि अहंकार से बोले कि, 'ऐसी तो बहुत बार दाढ़ दुःखती है', तो दुःख पचास प्रतिशत हो जाता है।

वेदना का स्वभाव कैसा है? यदि उसे पराई जाने तो वह जानता रहेगा, वेदेगा नहीं। 'यह मुझे हुआ है' ऐसा हुआ तो वेदेगा, और 'यह सहन नहीं होता' बोले तो दस गुना हो जाएगा। यदि एक पैर टूट रहा हो तो दूसरे से कहना कि 'तू भी टूट!'

'ज्ञानी' में अहंकार नहीं होता, इसलिए वे दु:ख नहीं भोगते। जब तक आत्मा का अस्पष्ट वेदन है, तब तक दु:ख को वेदता है, यानी कि दुखती हुई दाढ़ के ज्ञाता-दृष्टा रहने के प्रयत्न करता है। जब कि 'ज्ञानीपुरुष' कि जिन्हें आत्मा का स्पष्ट वेदन रहता हैं, वे दु:ख को वेदते नहीं हैं, लेकिन मात्र जानते हैं। 'स्वरूप ज्ञान'वाले की दाढ़ दु:ख रही हो तो वह दु:ख नहीं भोगता, लेकिन उसका उसे बोझ लगता रहता है, खुद का सुख रुक जाता है, जब कि हमारा सुख रुक नहीं जाता, आता ही रहता है। लोग समझते हैं कि 'दादा' को *अशाता* वेदनीय हैं, लेकिन हम पर वेदनीय असर नहीं रहता! व्यवहार में वेदनीय माना जाता है।

प्रश्नकर्ता : यह *शाता-अशाता* वेदनीय आत्मा को नहीं होती?

दादाश्री : नहीं, आत्मा को वेदन होता ही नहीं है। आत्मा यदि कभी *अशाता* को वेदे तो वह आत्मा ही नहीं है। आत्मा खुद अनंत सुख का धनी हैं! बर्फ़ पर यदि अंगारे रखे हों तो बर्फ़ जलेगा क्या?

प्रश्नकर्ता : अंगारे बुझ जाएँगे।

दादाश्री : यह तो स्थूल उदाहरण है, एक्ज़ेक्ट नहीं है। आत्मा तो अनंत सुख का धनी हैं, उसे दु:ख छूएगा ही कैसे? उसे सिर्फ छूने मात्र से सुख महसूस होता है।

प्रश्नकर्ता : तो यह वेदन कौन भोगता है?

दादाश्री : आत्मा को भोगना नहीं होता, शरीर भी नहीं भोगता है। सिर्फ अहंकार ही करता है कि 'मुझे *अशाता* हो रही है।' वास्तव में अहंकार भी खुद नहीं भोगता। वह तो सिर्फ अहंकार करता है कि 'मैंने भोगा!' आत्मा ने कभी भी किसी विषय को भोगा नहीं है, सिर्फ इगोइज़म करता है, सिर्फ इतना ही। 'रोंग बिलीफ़' से कर्तापन का अहम् उत्पन्न हुआ। 'मैंने यह किया' उसके फल स्वरूप *शाता-अशाता* का वेदन करता है।

अज्ञानी *अशाता* वेदनीय कल्पांत करके वेदता है, 'ज्ञानी' ज्ञान में रहकर *निकाल* करते हैं, जिससे नया कर्म नहीं बँधता। अज्ञानी कर्म बाँधता

हैं। या तो किसी पर द्वेष करता है, या तो डॉक्टर पर राग करता है, राग-द्वेष करता रहता है। जहाँ राग-द्वेष नहीं हों, वह आत्मज्ञान की निशानी है।

पूरा जगत् जहाँ पर उसे खुद को 'अच्छा लगे' वहाँ पर तन्मयाकार हो जाता है, उसी रूप हो जाता है। और स्वरूप ज्ञान के बाद में वह तन्मयाकार नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : निर्वेद का मतलब क्या है?

दादाश्री : निर्वेद अर्थात् मन-वचन-काया, इन तीनों के इफेक्टिव होने के बावजूद अन्‌इफेक्टिव रहता है, वेदना नहीं रहती। सिद्ध भगवान को निर्वेद नहीं कह सकते। क्योंकि उनमें मन-वचन-काया नहीं हैं। वेदना के आधार पर ही निर्वेद टिका है। यह द्वन्द्व हैं। सिर्फ वेद नहीं कहलाता।

जानने में आत्मा वेदक हैं और सहन करने में निर्वेदक हैं।

आत्मा तो परमात्मा स्वरूपी हैं। उस पर भी इस देह का असर होता है। उस असर को 'देखते' रहे तो मुक्त हो गए!

आत्मा : शुद्ध उपयोग

इस देह के साथ में जो आत्मा (व्यवहार आत्मा) है, उस आत्मा को उपयोग होना चाहिए। मनुष्य चार प्रकार से उपयोग कर रहे हैं। ये जानवर आत्मा का उपयोग नहीं करते। उपयोग सिर्फ अहंकारियों को होता है। जानवर तो सहजभाव में है। इन गायों-भैंसों को सहजभाव से रहता है कि यह खाने लायक है और यह खाने लायक नहीं है।

आत्मा के चार उपयोग हैं। अशुद्ध उपयोग, अशुभ उपयोग, शुभ उपयोग और शुद्ध उपयोग।

प्रश्नकर्ता : आत्मा के उपयोग, वे 'शुद्धात्मा' के हैं या 'प्रतिष्ठित आत्मा' के हैं?

दादाश्री : पहले तीन उपयोग प्रतिष्ठित आत्मा के हैं और शुद्ध उपयोग, वह शुद्धात्मा का है और वह भी वास्तव में तो प्रज्ञा का है।

इस उपयोग में मूल आत्मा खुद कुछ करता नहीं है।

अशुद्ध उपयोग अर्थात् मनुष्य को मार डाले, मनुष्य का माँस खाए। उसका फल नर्कगति।

अशुभ उपयोग अर्थात् कपट करे, मिलावट करे, स्वार्थ के लिए झूठ बोले, क्रोध-मान-माया-लोभ करे, वह सारा अशुभ उपयोग। उसका फल तिर्यंचगति, जानवरगति।

शुभ उपयोग अर्थात् मन की शक्ति, वाणी की, देह की, अंतःकरण की सभी शक्तियों का औरों के लिए उपयोग हो, वह! संपूर्ण शुभ में रहे तो देवगति प्राप्त करता है और शुभाशुभवाला मनुष्य में आता है।

'शुद्ध उपयोग' अर्थात् 'मैं शुद्धात्मा हूँ और यह मैं नहीं कर रहा हूँ लेकिन अन्य कोई कर रहा है' ऐसा भान हो जाए, खुद शुद्ध में रहे और सामनेवाले का शुद्धात्मा देखे, वह। कोई गालियाँ दे, जेब काट ले, फिर भी उसके शुद्धात्मा ही देखे, वह शुद्ध उपयोग! जगत् पूरा निर्दोष दिखता है उसमें। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', जब से यह लक्ष्य बैठे, तब से ही शुद्ध उपयोग की शुरूआत होती है, और संपूर्ण शुद्ध उपयोग को केवलज्ञान कहा है।

शुद्ध उपयोग के अलावा अन्य कोई पुरुषार्थ नहीं है। शुद्ध उपयोग को चूकना, उसे प्रमाद कहा है। एक क्षण के लिए भी गाफिल नहीं रहना चाहिए। यह ट्रेन सामने से आ रही हो तो वहाँ पर गाफिल रहते हो? जब कि यह तो अनंत जन्मों की भटकन है, तो वहाँ पर गाफिल कैसे रह सकते हैं?

प्रश्नकर्ता : उपयोग, एक्ज़ेक्टली किसे कहते हैं?

दादाश्री : ये पैसे गिनते हो, सौ-सौ के नोट, तब कैसा उपयोग रहता है आपको? उस घड़ी उपयोग चूक जाते हो? मैं तो कभी भी रुपये गिनने में उपयोग न दूँ। इसमें उपयोग देने से कैसे चलेगा? इसमें तो मेरा महामूल्यवान उपयोग बिगड़ेगा। उपयोग बेकार जाता है, इसका किसीको पता ही नहीं चलता। आत्मा का संपूर्ण उपयोग, उल्टा ही खर्च हुआ है।

जहाँ पर उपयोग देने की ज़रूरत नहीं है, जो उपयोग दिए बिना चल सके ऐसा है, वहाँ पर उपयोग देता है और जहाँ पर उपयोग देना है, उसकी ख़बर ही नहीं है।

नींद अच्छी आई या नहीं आई, उसके लिए उपयोग देना हो तो क्या होगा? नींद आएगी ही नहीं। यह गाड़ी चल रही हो और कोई व्यक्ति डिब्बे में जल्दबाज़ी करे, वह डिब्बे में ऐसे दौड़े, तो वह जल्दी पहुँच सकेगा क्या? उसी प्रकार इस संसार में लोग भाग-दौड़ करते हैं! ज़रा शांति रखो न! स्थिरता से देखो।

प्रश्नकर्ता : स्थिर करना, उसीको उपयोग कहते हैं?

दादाश्री : हाँ। आप मेरे साथ बातचीत कर रहे हों और आपका चित्त अन्य किसी जगह पर हो, तो वह उपयोग नहीं कहलाएगा। सेठ का शरीर यहाँ पर खा रहा हो और खुद गए हुए हों मिल में, चित्त का ठिकाना नहीं होता! बिना उपयोग के खाते हैं इसीलिए तो हार्टफेल और बल्ड प्रेशर होते हैं लोगों को!

प्रश्नकर्ता : उपयोगपूर्वक भोजन करने का अर्थ क्या है?

दादाश्री : कौर मुँह में रखने के बाद उसका स्वाद जाने, मेथी का स्वाद जाने, मिर्ची का स्वाद जाने, नमक, काली मिर्च, सभी का स्वाद जाने, उसे उपयोगपूर्वक भोजन करना कहते हैं।

लोभी को लोभ का उपयोग रहा करता है, मानी को मान का उपयोग रहा करता है। संसारियों को ये दो प्रकार के बड़े उपयोग रहते हैं। मानी यदि विवाह में गया हो और मेज़बान जल्दबाज़ी में हाथ जोड़कर नमस्ते करना भूल गया तो उसका दिल बैठ जाता है। और इसे यह कर दूँगा, वह कर दूँगा, ऐसा करता है। उससे अंदर भयंकर अशुभ उपयोग हो जाता है। लोभी सब्ज़ी लेने गया हो तो उसका उपयोग इसीमें होता है कि कौन-सी ढेरी सस्ती है, वह सड़ी हुई ही ले आता है।

विषयों में उपयोग कपट करने में ही रहा करता है।

अज्ञानदशा में भी मनुष्य आत्मा का शुभ उपयोग कर सकता है। गलत हो जाए तब शास्त्रों के आधार पर 'ऐसा नहीं करना चाहिए' ऐसा कहे तो वह आत्मा का उपयोग कहलाता है। मंदिर या जिनालय में जाए, शास्त्र पढ़े, वह सारा शुभ उपयोग कहलाता है।

प्रत्यक्ष 'ज्ञानीपुरुष' की आज्ञा का पालन करना, वह 'शुद्ध उपयोग' कहलाता है। जहाँ पर शुद्ध उपयोग होता है, वहाँ पर अविरति के साथ *संवरपूर्वक निर्जरा* (दोबारा कर्म बीज नहीं डलें और कर्म फल पूरा हो जाए) होती रहती है। आपका यदि शुद्ध उपयोग रहेगा तो सामनेवाला भले ही किसी भी उपयोग में हो, फिर भी वह उपयोग आपको स्पर्श नहीं करेगा।

'ज्ञानीपुरुष' निरंतर शुद्ध उपयोग में ही होते हैं। 'ज्ञानी' निर्ग्रंथ होते हैं, इसलिए एक क्षणभर के लिए भी उनका उपयोग अन्य कहीं अटकता नहीं है। मन की गाँठ फूटे, तब गाँठवाला तो पंद्रह मिनट, आधा घंटे तक एक ही वस्तु में रमणता करता है, 'ज्ञानी' कहीं भी एक क्षण के लिए भी अटकते नहीं हैं, इसलिए उनका उपयोग निरंतर फिरता रहता है, उनका उपयोग बाहर नहीं जाता। 'ज्ञानी' गृहस्थदशा में रहते हैं लेकिन गृहस्थ नहीं होते, निरंतर वीतरागता, वही उनका लक्षण! हमारा उपयोग में उपयोग रहता है।

प्रश्नकर्ता : हम आपसे प्रश्नोत्तरी करते हैं, तब आप किसमें रहते हैं?

दादाश्री : हम उसके ज्ञाता-दृष्टा रहते हैं, वही हमारा उपयोग हैं। ये शब्द निकल रहे हैं, वह रिकार्ड बोल रही है, उससे हमें कोई लेना-देना नहीं है। उस पर उपयोग रहता है, इसलिए हमें पता चल जाता है कि कहाँ पर भूल हुई और कहाँ उपयोग नहीं रख पाते हैं। यह रिकार्ड सुनो तो आपको कैसा स्पष्ट समझ आता है कि इसमें यह भूल है और यह करेक्ट है?! वैसा ही, जब हमारी वाणी की रिकार्ड बज रही होती है, तब हमें भी रहता है।

पाँचों इन्द्रियों का एट-ए-टाइम उपयोग रखें, वह शुद्ध उपयोग।

प्रश्नकर्ता : आप ज्ञाता-दृष्टा रहते हैं, उस समय स्व-उपयोग रहा, ऐसा नहीं कहलाएगा न?

दादाश्री : ज्ञाता-दृष्टा रहना, वही स्व-उपयोग है, और पर-उपयोग किसे कहते हैं? 'मैं चंदूलाल हूँ, मैं फ़लाना हूँ, मैं ज्ञानी हूँ', वह पर-उपयोग कहलाता है।

मन में तन्मयाकार परिणाम नहीं रहे, वाणी में तन्मयाकार परिणाम नहीं रहे और वर्तन में तन्मयाकार परिणाम नहीं रहे, उसीको शुद्ध उपयोग कहते हैं।

उपयोग में उपयोग, वही केवलज्ञान

प्रश्नकर्ता : आपने कहा कि 'हमें उपयोग में उपयोग रहता है', इसका मतलब दो उपयोग हो गए। तो कौन सा उपयोग कौन से उपयोग में रहता है?

दादाश्री : पहला उपयोग अर्थात् जो शुद्ध उपयोग है, वह है। वह उपयोग यानी खुद अपने आपको शुद्ध देखना, औरों को शुद्ध देखना, आज्ञा में रहना, वह सारा शुद्ध उपयोग कहलाता है। और उस शुद्ध उपयोग के ऊपर भी उपयोग रखना कि शुद्ध उपयोग कैसा रहता है, वह केवलज्ञान कहलाता है और पहलेवाला शुद्ध उपयोग कहलाता है। उपयोग उपयोग में रहे, वह केवलज्ञान है।

प्रश्नकर्ता : वह उपयोग ज्ञान स्वरूप कहलाता है?

दादाश्री : शुद्ध उपयोग ज्ञान स्वरूप कहलाता है और उपयोग उपयोग में, वह विज्ञान स्वरूप कहलाता है, केवलज्ञान स्वरूप कहलाता है। शुद्ध उपयोग की जो जागृति है, उसके ऊपर भी जो जागृति है, वह केवलज्ञान की जागृति है, अंतिम जागृति है। 'ज्ञानी' की जागृति, वह शुद्ध उपयोग कहलाती है। और उससे ऊपर की जागृति को केवलज्ञान का उपयोग कहते हैं। हमें जागृति पर जागृति रहती है, लेकिन जैसी तीर्थंकरों की रहती है, उतनी अधिक नहीं रह पाती।

प्रश्नकर्ता : जिस समय अंत:करण की क्रिया में उपयोग रहता है,

ज्ञेय-ज्ञाता संबंध रहता है, उस समय खुद ज्ञाता और अंतःकरण ज्ञेय रहता है, उसमें भी वापस केवलज्ञान में उपयोग रहता है?

दादाश्री : यह ज्ञेय-ज्ञाता संबंध के उपयोग को केवलज्ञानवाला उपयोग 'जानता' है कि कितना उपयोग कच्चा रह गया, कितना पक्का हुआ। तीर्थंकरों को ज्ञेय और ज्ञाता पर भी उपयोग रहता है, संपूर्ण 'केवल' होता है।

प्रश्नकर्ता : यानी कि केवलज्ञान में ज्ञेय से भी अलग हो गया है, ऐसा कह सकते हैं?

दादाश्री : केवलज्ञान में ज्ञेय से अलग ही होता है। लेकिन ज्ञेय-ज्ञातावाले संबंध में ज्ञेय से अलग नहीं हो जाता, उसका संबंध रहता है और संबंध को वह जानता है कि ऐसा संबंध है।

जब उपयोग उपयोग में रहे, तब जागृति जागृति में ही रहती है, बाहर नहीं खिंचती। बाहर जो दिखता है, वह सहज रूप से दिखता है।

पूरे जगत् को भगवत् स्वरूप समझे तो, वह शुद्ध उपयोग कहलाता है।

आत्मा : केवलज्ञान स्वरूप

खुद, खुद की पूरे ब्रह्मांड को प्रकाशित करने की जो स्वसंवेदन शक्ति है, वह केवलज्ञान है। 'केवल' आत्म-प्रवर्तन, उसीको केवलज्ञान कहते हैं। ज्ञानक्रिया और दर्शनक्रिया के अलावा अन्य कोई प्रवर्तन नहीं, वह केवलज्ञान कहलाता है। अनंत प्रकार के अनंत पर्यायों में, खुद के ज्ञान के अलावा अन्य कुछ भी नहीं हो, वह केवलज्ञान है।

जिसने आत्मज्ञान को जान लिया तो, फिर केवलज्ञान बहुत दूर नहीं है। आत्मज्ञान को जाना, वह कारण केवलज्ञान है और वह कार्य केवलज्ञान है। इसीलिए तो कहते हैं, 'आत्मज्ञान जानो'।

केवलज्ञान प्राप्त कर ले तब और कुछ भी जानने को नहीं बचता। केवलज्ञान अर्थात् एब्सोल्यूट! केवल खुद की ही सत्ता को जानता है!!

आत्मा देह स्वरूपी नहीं है, वाणी या विचार स्वरूपी नहीं है। आत्मा तो केवलज्ञान स्वरूपी है! मोक्ष दूर नहीं, खुद के पास में ही है। ये झाड़-झंखाड़ चिपके हैं, इसलिए अनुभव में नहीं आता है। मोक्ष का अर्थ यह है कि संसार स्पर्श न करे, कषाय नहीं हों। श्रद्धा से केवलज्ञान हुआ हो तो देहसहित मोक्ष है और केवलज्ञान हो जाए, तब मोक्ष होता है। श्रद्धा से केवलज्ञान अर्थात् केवलदर्शन।

प्रश्नकर्ता : केवलज्ञान के बारे में समझाइए।

दादाश्री : आत्मा खुद ही केवलज्ञान स्वरूप है। यह जो देह है, वह स्थूल स्वरूपी है। अंदर अंतःकरण और वे सब सूक्ष्म स्वरूप भी हैं, और आत्मा है। आत्मा तो केवलज्ञान स्वरूप अर्थात् प्रकाश स्वरूप ही है, प्रकाशमय ही है, अन्य कुछ भी नहीं है उसका। जैसे-जैसे परमाणु बढ़ते गए और हम मानते गए है कि 'मैं मनुष्य हूँ, मैं ऐसा हूँ, मैं वैसा हूँ' वैसे-वैसे अज्ञान की तरफ चले। समकित होने के बाद केवलज्ञान की तरफ जाना है। धीरे-धीरे जैसे-जैसे बोझे घटते जाते है, संसार के लफड़े छूटते जाते हैं, वैसे-वैसे आनंद बढ़ता जाता है। धीरे-धीरे खुद परमात्मा बन जाता है।

'केवल' अर्थात् एब्सोल्यूट, जिसमें अन्य कुछ भी मिला हुआ नहीं हो, वह एब्सोल्यूट ज्ञान।

अभी जर्मनीवाले कोई पूछें कि वर्ल्ड में थ्योरी ऑफ एब्सोल्यूटिज़म है किसी जगह पर? तो हम कहेंगे कि ये 'दादा' हैं कि जो थ्योरी ऑफ एब्सोल्यूटिज़म ही नहीं, लेकिन एब्सोल्यूटिज़म के थियरम में बैठे हुए हैं! तुझे जो पूछना हो वह पूछ। यह 'अक्रम विज्ञान' अर्थात् थ्योरी ऑफ एब्सोल्यूटिज़म है।

ज्ञान का स्वभाव ही है कि ज्ञान खुद तद्-रूपकार रहता है। तब वह दर्शन के स्वरूप में रहता है, प्रकाश के स्वरूप में रहता है और आनंद के स्वरूप में रहता है।

केवलज्ञान भीतर सत्ता में है, लेकिन (आप में) आज उपयोग में नहीं आ रहा है। ये सत्संग करते हैं, तो उसे व्यक्त करते हैं। एक दिन

संपूर्ण निरावृत हो जाएगा, तब संपूर्ण व्यक्त हो जाएगा! फिर मेरी तरह आपको भी आनंद जाएगा ही नहीं। आप कहो कि 'जा, यहाँ से', तो भी वह नहीं जाएगा।

प्रश्नकर्ता : 'एब्सोल्यूट नॉलेज' की डेफिनेशन दें सकेंगे?

दादाश्री : 'आम मीठा लगता है' यह ज्ञान है न? या अज्ञान है?

प्रश्नकर्ता : ज्ञान है।

दादाश्री : यह ज्ञान है, लेकिन उससे क्या मुहँ मीठा हो जाएगा? यानी की जिस ज्ञान से मुहँ मीठा नहीं हो, वह एब्सोल्यूट नहीं कहलाएगा। जिस ज्ञान से सुख ही बर्ते, उसे एब्सोल्यूट कहते हैं। जब 'मैं शुद्धात्मा हूँ' वह ज्ञान एब्सोल्यूट हो जाएगा, तब बाहर की *वळगण* (बला, पाश) छूट जाएगी, सर्व अंतराय टूट जाएँगे और निरंतर खुद का परमानंद स्वरूप रहेगा।

एब्सोल्यूट के अलावा अन्य जो भी ज्ञान है, वह आनंद नहीं देता, वह तो मार्गदर्शन करता है कि आम मीठा है। जैसे बोर्ड लगाते हैं कि 'मुंबई जाने का रास्ता'-उसी तरह का है। सिर्फ कहते हैं कि 'तू शादी करेगा तो सुखी हो जाएगा' उससे क्या सुखी हो गया? नहीं, जब कि एब्सोल्यूट ज्ञान में तो उसी रूप हो जाता है।

केवलज्ञान स्वरूप उसीको कहा जाता है कि जहाँ पर *पुद्‌गल* परिणती बंद हो जाए। सर्वथा निज परिणती को केवलज्ञान कहा जाता है। केवलदर्शन में निज परिणती उत्पन्न होती है। निज परिणती संपूर्ण हो जाए तो, उसे केवलज्ञान कहा जाता है। केवलदर्शन में निज परिणती उत्पन्न होती है और केवलज्ञान में संपूर्ण हो जाती है। निज परिणती उत्पन्न होने के बाद क्रम पूर्वक बढ़ती रहती है और केवलज्ञान स्वरूप में परिणामित होती है। निज परिणति, वह आत्मभावना है, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह आत्मभावना नहीं है।

जब तक केवलज्ञान नहीं होता, तब तक अंदर के ज्ञेय देखने हैं, उसके बाद ब्रह्मांड के ज्ञेय झलकेंगे। इस काल में कुछ ही अंशों तक ज्ञेय और द्रश्य झलकते हैं।

शुद्धात्मा पद प्राप्त करने के बाद अंदर जो ज्ञेय हैं कि जो 'डिस्चार्ज' के स्वरूप में हैं, उनके हम ज्ञाता हैं। 'डिस्चार्ज' अपने ताबे में नहीं है, व्यवस्थित के ताबे में है। अपना तो ज्ञायकभाव है।

शुद्धात्मा, वह परमात्मा नहीं है। शुद्धात्मा तो परमात्मा के यार्ड में आया हुआ एक स्थान है। शुद्धात्मा पद हो जाने के बाद आगे का पद केवलज्ञान स्वरूप रहता है, वह अंतिम पद है।

प्रश्नकर्ता : केवलज्ञान होने पर परमात्मा पद में आते हैं?

दादाश्री : यह शुद्धात्मा पद प्राप्त होना, यानी कि केवलज्ञान के अंशों की शुरूआत होती है। सर्वांश होने पर केवलज्ञान है। केवलज्ञान के कुछ अंशों का ग्रहण हो जाए, तो आत्मा बिल्कुल अगल ही दिखता रहता है, उसके बाद फिर एब्सोल्यूट होता है।

जागृति वही ज्ञान है और संपूर्ण जागृति को केवलज्ञान कहते हैं। तमाम प्रकार की जागृति, एक-एक अणु, एक-एक परमाणु की जागृति को केवलज्ञान कहते हैं। केवलज्ञान की जो आखरी सीढ़ी है, उसमें केवलस्वरूप की ही रमणता रहती है।

शुद्ध ज्ञान यानी व्हाट इज़ रियल? एन्ड व्हाट इज़ रिलेटिव? इस तरह दो भाग कर दे, वह और विशुद्ध ज्ञान अर्थात् थ्योरी ऑफ एब्सोल्यूटिज़म। विशुद्ध ज्ञान अर्थात् परमात्मा!

प्रश्नकर्ता : 'रियलिटी' और 'रियल' इन दोनों में क्या कहना चाहते हैं?

दादाश्री : हम क्या कहते हैं कि 'रियलिटी' से 'रियल' में जाओ। रियलिटी से अंदर ठंडक होती है और अनुभव होता है।

प्रश्नकर्ता : भगवान ने स्थितप्रज्ञ दशा होने के बाद एक पैर पर खड़े रहकर तपश्चर्या की थी, उसके बाद उन्हें केवलज्ञान हुआ था। तो हम वह सब नहीं करें, तब तक केवलज्ञान कहाँ से मिलेगा?

दादाश्री : केवलज्ञान तो ज्ञान क्रिया से होता है, और यह तो अज्ञान क्रिया कहलाती है। एक पैर पर खड़े रहना, वह तो हठाग्रह कहलाता है।

भगवान ऐसे हठाग्रही नहीं थे। भगवान को तो समझना मुश्किल है। लोग अपनी-अपनी भाषा में ले जाते हैं बात को।

प्रश्नकर्ता : यथाख्यात चारित्र, वही केवलज्ञान है?

दादाश्री : यथाख्यात चारित्र पूरा हो जाए, उसके बाद में फिर केवलज्ञान होता है। यथाख्यात के बाद में केवलचारित्र है। केवलज्ञान कब होता है? अंतिम जन्म के अंतिम दस-पंद्रह वर्ष या अंत में पाँच वर्षों में भी कोई रिश्ते, व्यवहारिक अथवा नाटकीय कुछ भी नहीं रहें, तब। भगवान महावीर के भी नाटकीय रिश्ते कब गए? भगवानने तो विवाह किया था, बेटी थी, फिर भी नाटकीय रूप से घर में रहते थे। तीसवें वर्ष में वह भी छूट गया। अनार्य देश में विचरे तब केवलज्ञान उपजा। सिद्धांत क्या कहता है कि 'केवलज्ञान' होने से पहले कुछ वर्ष 'कोरे' होने चाहिए। वह नियम से ही उदय में आता है, उसके लिए त्याग की ज़रूरत नहीं है।

गजसुकुमार को भगवान नेमिनाथ से शुद्धात्मा पद प्राप्त हुआ था। गजसुकुमार की ब्राह्मण कन्या के साथ सगाई हुई थी। बाद में तो उन्हें वैराग्य हो गया था, इसलिए दीक्षा ली। अब सोमेश्वर ब्राह्मण के मन में बैर उत्पन्न हुआ कि मेरी बेटी को दर-दर की ठोकरें खिला दी। एक दिन जंगल में तालाब के किनारे गजसुकुमार शुद्धात्मा का ध्यान कर रहे थे। पद्मासन लगाकर बैठे थे। उन्हें तो क्रमिक मार्ग में पद्मासन लगाना पड़ता था। अपने यहाँ पद्मासन लगाकर बैठे हों, तो पंद्रह मिनट में मुझे खोलने पड़ेंगे पैर। इसलिए हम तो कहते हैं, 'तुझे जैसे ठीक लगे वैसे बैठ।' यह तो अक्रमज्ञान हैं! अब गजसुकुमार ध्यान में बैठे थे और वहाँ से उस समय सोमेश्वर ब्राह्मण गुज़रा। उसने गजसुकुमार को देखा तो अंदर बैर भभक उठा, क्रोध से भरकर उन्होंने जमाई के माथे पर मिट्टी की सिगड़ी बनाई और अंदर अंगारे जलाए। तब गजसुकुमारने देख लिया था कि 'ओहोहो! आज तो ससुरजी मोक्ष की पगड़ी बाँध रहे हैं!' तब उन्होंने क्या किया?

भगवान ने उन्हें समझाया था कि ''बड़ा उपसर्ग आ पड़े, तब 'शुद्धात्मा-शुद्धात्मा' मत करना। शुद्धात्मा तो स्थूल स्वरूप है, शब्द रूप है, तब तो सूक्ष्म स्वरूप में चले जाना।'' उन्होंने पूछा, 'सूक्ष्म स्वरूप क्या है?'

तब भगवान ने समझाया था कि, 'सिर्फ केवलज्ञान ही है, अन्य कोई वस्तु नहीं है।' तब गजसुकुमार ने पूछा, 'मुझे केवलज्ञान का अर्थ समझाइए।' तब भगवानने समझाया, 'केवलज्ञान आकाश जैसा सूक्ष्म है', जब कि अग्नि स्थूल है। वह स्थूल, सूक्ष्म को कभी भी जला नहीं सकेगी। मारो, काटो, जलाओ तो भी खुद के केवलज्ञान स्वरूप पर कुछ भी असर हो सके, ऐसा नहीं है। और जब गजसुकुमार के सिर पर अंगारे धधक रहे थे, तब 'मैं केवलज्ञान स्वरूप हूँ' ऐसा बोले, तब खोपड़ी फट गई, लेकिन उन पर कुछ भी असर नहीं हुआ!

बात को समझनी ही है। आत्मा खुद केवलज्ञान स्वरूप ही है। केवलज्ञान को कहीं लेने नहीं जाना है।

प्रश्नकर्ता : गजसुकुमार ने सिर पर पगड़ी बँधवाई, उस समय उनकी स्थिति क्या थी? वेदना का असर नहीं हुआ उसका कारण क्या यह था कि उनका लक्ष्य आत्मा में चला गया था? इसलिए बाहर के भाग में क्या हो रहा है उसकी उन्हें खबर नहीं रही?

दादाश्री : वेदना का असर हुआ था। जब रहा नहीं गया, तब भगवान के शब्द याद आए कि अब चलो अपने देश में। असर हुए बगैर आत्मा होम डिपार्टमेन्ट में जाए, ऐसा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : उस समय लक्ष्य एट अ टाइम दो जगह पर रहता है? वेदना में और आत्मा में?

दादाश्री : शुरूआत में धुँधला रहता है। फिर वेदना में लक्ष्य छोड़ देता है और सिर्फ आत्मा में ही घुस जाता है। जिसे आत्मज्ञान नहीं मिला हो, उसे ऐसी *अशाता* वेदनीय अधोगति में ले जाती है, और ज्ञानी को तो वह मोक्ष में ले जाती है!

केवलज्ञान स्वरूप कैसा दिखता है? पूरे देह में आकाश जितना ही भाग खुद का दिखता है। सिर्फ आकाश ही दिखता है, अन्य कुछ नहीं दिखता, कोई मूर्त वस्तु उसमें नहीं होती। इस प्रकार धीरे-धीरे अभ्यास करते जाना है। अनादिकाल के अन्-अभ्यास को 'ज्ञानीपुरुष' के कहने से अभ्यास होता जाता है, अभ्यास हुआ अर्थात् शुद्ध हो गया!

प्रश्नकर्ता : 'मैं केवलज्ञान स्वरूप हूँ' ऐसा अधिक बोलें तो हर्ज है?

दादाश्री : कोई हर्ज नहीं है। लेकिन सिर्फ शब्द के रूप में बोलने का अर्थ नहीं है, समझकर बोलना बेहतर है। जब तक अशुद्ध बाबत आए और उस समय अंदर परिणाम ऊँचे-नीचे हो जाएँ, तब तक 'मैं शुद्धात्मा हूँ' बोलना अच्छा है। फिर आगे की श्रेणी में 'मैं केवलज्ञान स्वरूप हूँ' ऐसा बोल सकते हैं। गुणों की भजना करें, तो स्थिरता रहेगी! यह मेरा स्वरूप है और यह नहीं है, यह जो हो रहा है, वह मेरा स्वरूप नहीं है। ऐसा बोलो तो भी ऊँचे-नीचे परिणाम बंद हो जाएँगे। असर नहीं करेगा। आत्मा क्या है? उसके गुणसहित बोलना, देखना, तब वह प्रकाशमान होगा।

प्रश्नकर्ता : केवलज्ञानी और ज्ञानीपुरुष में कितना फर्क है?

दादाश्री : केवळ्ज्ञानी कौन कि जिन्हें सभी चीज़े ज्ञान से दिखें, जब कि 'ज्ञानीपुरुष' की समझ में सभी चीज़ें होती हैं, अस्पष्ट रूप से। जब कि केवलज्ञान में पूर्ण रूप से स्पष्ट होता है, अस्पष्ट नहीं होता। केवलज्ञानी कार्य स्वरूप हो चुके होते हैं और ज्ञानीपुरुष कारण स्वरूप हुए हैं, यानी कि केवलज्ञान के कारणों का सेवन कर रहे हैं। यह कैसा है कि एक व्यक्ति बड़ौदा जा रहा हो, यहाँ से दादर स्टेशन पर बड़ौदा जाने के लिए गया हो और हमें कोई पूछे तो कहते हैं कि, 'बड़ौदा गए।' हो रहे कार्य का कारण में आरोपण किया जा सकता है।

हमें तो केवलज्ञान उँगली छूकर निकल गया, पचा नहीं, चार डिग्री कम रहा। वह तो, इस केवलज्ञान में नापास हुआ तो आपके काम आया?

प्रश्नकर्ता : दादा, हम आपसे प्रश्न पूछते हैं, उनके जवाब बिल्कुल सटीक और तत्क्षण देते हैं, लेकिन वह किसी शास्त्र के आधारवाला नहीं होता। तो वह जवाब आप कहाँ से देते हैं?

दादाश्री : मैं सोचकर या पढ़ा हुआ नहीं बोलता हूँ, केवलज्ञान में ऐसे देखकर बोलता हूँ, यह जो आप सुन रहे हो, देख रहे हो, वह केवलज्ञान का प्रकाश है। ये सारी वाणी केवलज्ञानमय है। केवलज्ञान के कुछ ज्ञेय हमें नहीं दिखते हैं। यह तो दुषमकाल का केवलज्ञान है!!

अज्ञान से लेकर केवलज्ञान तक के सभी स्पष्टीकरण निकले हैं, किसी शास्त्र में नहीं मिलेंगी, ऐसी अपूर्व बातें हैं। ये बहुत सूक्ष्म बातें हैं, ये स्थूल नहीं हैं। स्थूल पूरा हुआ, सूक्ष्म पूरा हुआ, सूक्ष्मतर पूरा हुआ और ये सूक्ष्मतम की बातें हैं। इसीलिए जब तक 'यह' बुलबुला जी रहा है, तब तक काम निकाल लो। यह है, तब तक बातें सुनने को मिलेंगी, फिर यह लिखी हुई वाणी तथारूप फल नहीं देगी। प्रत्यक्ष सुना हुआ हो उसे शब्द उगे बगैर रहेंगे नहीं। इनमें से एक भी शब्द बेकार नहीं जाएगा। जिसकी जितनी शक्ति उसे उतना पच जाएगा। यह केवलज्ञानमयी वाणी है। यहाँ बुद्धि का अंत आता है, मतिज्ञान का अंत आता है, वहाँ पर केवलज्ञान खड़ा है। यह प्रकाश केवलज्ञान से ही उत्पन्न हुआ प्रकाश है।

इस जगत् में जो कुछ भी किया जाता है, वह जगत् को पुसाए या नहीं पुसाए, फिर भी मैं कुछ भी नहीं करता हूँ, ऐसा सतत ख्याल जो रहता है, वह केवलदर्शन है, ऐसी समझ रहना, वह केवलज्ञान है!

आत्मा : असंग

मन-वचन-काया की तमाम संगी क्रियाओं से 'शुद्धचेतन' बिल्कुल असंग ही है। 'शुद्धचेतन' मन-वचन-काया की तमाम संगी क्रियाओं का ज्ञाता-दृष्टा मात्र है। समीप रहने से भ्रांति उत्पन्न होती है। दोनों वस्तुएँ स्वभाव से जुदा ही हैं। आत्मा की कोई क्रिया है ही नहीं, तो फिर ये सब संगी क्रियाएँ किसकी हैं? *पुद्गल* की।

पुद्गल परेशान करे ऐसी चीज़ है, वह पड़ोसी है। *पुद्गल* कब परेशान नहीं कर सकता? खुद वीर्यवान हो, तब। या फिर आहार बिल्कुल कम ले, जीवित रहने जितना ही ले, तो *पुद्गल* परेशान नहीं करेगा।

शुद्धात्मा निर्लेप है, असंग है, उसे संग स्पर्श ही नहीं करता। हीरा मुठ्ठी के आकार का हो गया? या मुठ्ठी हीरा के आकार की हो गई? दोनों अपना-अपना काम करते हैं, दोनों अलग ही हैं। उसी प्रकार आत्मा और अनात्मा का है। आत्मा का स्वभाव संग में रहने के बावजूद असंगी है, उस पर कोई दाग़ नहीं लग सकता।

प्रश्नकर्ता : आत्मा असंग है, फिर भी शरीर में किसलिए रहना पड़ता है?

दादाश्री : देह का संग तो तीर्थंकरों को भी रहता है। उन्हें भी कान में कीलें खोंसी गईं, उनका भी वेदन करना पड़ा, वह भी हिसाब है। देह का आयुष्य कर्म हो, वह पूरा करना पड़ता है, फिर मोक्ष में जाया जा सकता है। देह में रहने के बावजूद भी असंग और निर्लेप रहा जा सके, ऐसा वीतरागों का विज्ञान है!

यदि तू शुद्धात्मा है तो 'संसार में हूँ'! ऐसी शंका मत रखना।

आत्मा : निर्लेप

मन-वचन-काया के तमाम लेपायमान भाव जो आते हैं, उनसे 'शुद्धचेतन' सर्वथा निर्लेप ही है।

मन के जो भाव उत्पन्न होते हैं, विचार उत्पन्न होते हैं, वे अज्ञान दशा का स्पंदन हैं। ज्ञानदशा में स्पंदन बंद होने पर मन उत्पन्न नहीं होता। वचन भी अज्ञानदशा का स्पंदन है। काया भी अज्ञानदशा का स्पंदन है। अज्ञानदशा में उत्पन्न हुए स्पंदन आज डिस्चार्ज स्वरूप में ही हैं। डिस्चार्ज में परिवर्तन हो ही नहीं सकता, उसकी तरफ उदासीन भाव से रहना चाहिए। ज्ञानदशा के बाद स्पंदन नहीं होने से मन-वचन-काया का उद्‌भव नहीं होता। मन विवाह दिखाए या मरण दिखाए तो उन दोनों में 'मैं' उदासीन हूँ, वाणी कठोर स्वरूप से निकले या सुंदर स्वरूप से निकले, तो भी 'मैं' उदासीन ही हूँ। वाणी कठोर स्वरूप से निकले और सामनेवाले को दुःख हो तो उस अतिक्रमण का प्रतिक्रमण 'मैं' करवाता हूँ।

मन-वचन-काया के भाव अर्थात् *पुद्‌गल* के जो भाव उत्पन्न होते हैं, उन पर से, माना हुआ आत्मा खुद के भाव करता है, उससे संसार उद्‌भव हो जाता है। मन-वचन-काया के जो-जो भाव होते हैं, वे सभी *पुद्‌गल* के भाव हैं, शुद्ध चेतन के नहीं हैं। इतना ही जो समझ गया, उसका काम हो गया।

साइन्स क्या कहता हैं कि ये सोना और तांबा हैं, तो इस सोने का

स्वभाव तांबे में नहीं आता और तांबे का स्वभाव सोने में नहीं आता। दोनों साथ-साथ रहें, फिर भी अपने-अपने स्वभाव में रहते हैं।

घर-बार, पत्नी, बच्चों का त्याग किया, वह भी *पुद्‌गल* भाव है और विवाह किया वह भी *पुद्‌गल* भाव है। *पुद्‌गल* के भावों को खुद के मानता है, उसीसे संसार चलता है। क्योंकि उसे ऐसा लगता है कि, 'मेरे अलावा अन्य कोई भाव कर ही नहीं रहा, अन्य सब जड़ हैं', लेकिन उसे ख़बर नहीं है कि इस जड़ के भी भाव होते हैं और वे भाव भी जड़ हैं। 'यह चेतनभाव है और यह जड़भाव है' इतना समझ में आया कि छूट गया।

पुद्‌गल के भाव कैसे हैं? आने के बाद चले जाते हैं। और जो नहीं जाता, वह आत्मभाव है। *पुद्‌गल* का भाव अर्थात् भरा हुआ भाव है, वह *गलन* हो जाएगा। यह बहुत सूक्ष्म बात है और अंतिम दशा की बात है। निरपेक्ष बात है।

हमने आप महात्माओं को जो आत्मा दिया है, वह निर्लेप ही दिया है। मन के विचार आते हैं, जो-जो भाव आते हैं, वे सभी लेपायमान भाव हैं। वे 'हमें' भी लेपने जाते हैं। निर्लेप को भी लेपने जाएँ, वैसे हैं। लेकिन ये तेरे भाव नहीं हैं। जो *पूरण* हो चुके भाव हैं उनका *गलन* हो रहा है, उसमें तुझे क्या है फिर? चार वर्ष पहले का गुनाह हो और वह कोर्ट में दब गया हो, तो आज चिठ्ठी आएगी या नहीं आएगी? पहले के *पूरण* का आज *गलन* हो रहा है, उसमें तू किसलिए डरता रहता है? इन मन-वचन-काया के तमाम लेपायमान भावों से 'मैं' मुक्त ही हूँ। मन-वचन-काया की तमाम संगी क्रियाओं से 'मैं' असंग ही हूँ। ये संगी क्रियाएँ, ये सभी स्थूल क्रियाएँ हैं, और आत्मा तो बिल्कुल सूक्ष्म है। दोनों को कभी इकट्ठा करना हो, फिर भी होंगे नहीं। यह तो भ्रांति से जगत् उत्पन्न हुआ है। आत्मा एक क्षण के लिए भी रागी-द्वेषी हुआ नहीं, यह तो भ्रांति से ऐसा लगता है। वह कभी भी अनात्मा नहीं हुआ है और अनात्मा, आत्मा कभी हुआ ही नहीं। सिर्फ रोंग बिलीफ़ ही बैठ गई है कि, 'यह मैं कर रहा हूँ।'

आत्मा असंग ही है। खाते समय जुदा है, पीते समय जुदा है। आत्मा जुदा है तभी वह जान सकेगा, नहीं तो वह जान ही नहीं सकेगा।

मन-वचन-काया की आदतें और उनका स्वभाव

मन-वचन-काया की आदतें और उनके स्वभाव को 'शुद्धचेतन' जानता है और खुद के स्व-स्वभाव को भी 'शुद्धचेतन' जानता है। क्योंकि वह स्व-पर प्रकाशक है।

आत्मा का स्वभाव मोक्षगामी है, ज्ञाता-दृष्टा है। और स्वरूप ज्ञान के बाद आप अपने स्वभाव को जानते हो और इन मन-वचन-काया की आदतों को भी जानते हैं। मन ऐसा है, वाणी की आदत ऐसी है, सामनेवाले को अप्रिय लगे ऐसी है, खराब भाषा है, ऐसा सब आप जानते हो या नहीं जानते? आप यह भी जानते हो और 'वह' भी जानते हो। क्योंकि आप स्व-पर प्रकाशक हो। खुद को, 'स्व' को भी प्रकाशमान कर सकता है और पर को भी प्रकाशमान कर सकता है। अज्ञानी मनुष्य सिर्फ 'पर' को ही प्रकाशमान कर सकता है, स्व को प्रकाशमान नहीं कर सकता। उसे ऐसा होता ज़रूर है कि मेरा मन बहुत खराब है, लेकिन वापस जाए कहाँ? वहीं के वहीं रहना पड़ता है। जब कि आत्माज्ञानवाला तो जुदा रहता है।

प्रश्नकर्ता : आदतें और उनका स्वभाव, वह समझ में नहीं आया।

दादाश्री : मन-वचन-काया की आदतें ही नहीं कहा है, साथ में उनका स्वभाव भी कहा है! स्वभाव अर्थात् कोई-कोई आदत खूब मोटी होती है, कोई आदत बिल्कुल पतली होती है, नाखून जितनी ही पतली होती है, वह एक या दो बार प्रतिक्रमण करने से खत्म हो जाती है। और जो आदत खूब मोटी होती है, उसके तो खूब प्रतिक्रमण करें, छीलते रहें तब वह घिसती है!

मन-वचन-काया की जो आदते हैं, वे तो मरने पर ही छूटें ऐसी हैं, लेकिन उनका जो स्वभाव है, उसे घिस देना चाहिए। पतले रस से बंधी हुई आदतों के तो दो-पाँच बार प्रतिक्रमण करोगे तो वे खत्म हो जाएँगी, लेकिन गाढ़ रुचिवाली के तो पाँच सौ-पाँच सौ बार प्रतिक्रण करने पड़ेंगे। और कुछ गांठें, लोभ की गांठें तो इतनी मोटी होती हैं कि रोज़ दो-दो, तीन-तीन घंटे लोभ के प्रतिक्रमण करता रहे तो भी छः वर्षों में भी पूरी

नहीं होतीं! और किसीकी लोभ की गांठ ऐसी होती है कि एक दिन में या तीन घंटे में ही खत्म कर दे! ऐसे तरह-तरह के स्वभाव रस होते हैं।

संयोग : पर और पराधीन

स्थूल संयोग, सूक्ष्म संयोग, वाणी के संयोग, पर हैं और पराधीन हैं और शुद्धचेतन उनका ज्ञाता-दृष्टा मात्र है।

स्थूल संयोग अर्थात् बाहर से मिलते हैं, वे हैं। स्थूल संयोग *उपाधि* स्वरूप हैं, फिर भी उनके हम ज्ञाता-दृष्टा रह सकते हैं। क्योंकि यह अक्रमविज्ञान है। सूक्ष्म संयोग, जो देह के अंदर उत्पन्न होते हैं, मन के, बुद्धि के, चित्त के, अहंकार के, वे सूक्ष्म संयोग हैं, और फिर वे चंचल भाग के हैं। चंचल भाग, वह सूक्ष्म है। वाणी के संयोग तो प्रकट रूप से पता चल जाते हैं। वाणी सूक्ष्म भाव से उत्पन्न होती है और स्थूल भाव से प्रकट होती है। वाणी के संयोग सूक्ष्म-स्थूल कहलाते हैं। ये सभी संयोग पर हैं और पराधीन हैं। उन्हें पकड़ने से पकड़ा नहीं जा सकता, और भगाने से भगाया नहीं जा सकता। संयोग मात्र ज्ञेय स्वरूप है और हम ज्ञाता हैं। संयोग खुद ही वियोगी स्वभाव का है। अतः ज्ञाता-दृष्टा रहेंगे तो उसका वियोग इटसेल्फ हो जाएगा। इसमें आत्मा का कोई कर्तव्य नहीं रहता। वह मात्र ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव में रह सकता है। संयोग इच्छित हों या अनिच्छित, उनका वियोग होता है। पसंद आनेवाले संयोग को पकड़ने से पकड़ा नहीं जा सकता, नापसंद संयोग को भगाने से भगाया नहीं जा सकता। इसलिए निश्चिंत रहना। संयोग अपने क़ाबू में नहीं हैं। यह 'दादा' की आज्ञा है, इसलिए यदि फाँसी का संयोग भी आ जाए तो वह भी वियोगी स्वभाव का है, ऐसा जानना। अपने पास जो नाशवंत है, उसीको ले जाएगा न? और वह भी वापस 'व्यवस्थित' के हिसाब में आ चुका होगा तो उसे कोई निकाल नहीं सकेगा। इसलिए 'व्यवस्थित' में जो हो सो भले हो।

यह बात उसी पर लागू होती है, जिसने आत्मा प्राप्त किया है। अन्य के लिए लागू नहीं होती। क्योंकि आत्मदशा में आए बिना गाली देगा और वापस बोलेगा कि वाणी पर है और पराधीन है तो उसका दुरुपयोग हो जाएगा। फिर मन में निश्चय नहीं करेगा कि ऐसा गलत नहीं बोलना चाहिए।

अतः उसकी प्रगति रुंध जाएगी। जब कि जिसे आत्मा प्राप्त हुआ है, वह तो अत्यंत जागृतिपूर्वक स्थूल संयोग, सूक्ष्म संयोग और वाणी के संयोगों का ज्ञाता-दृष्टा रहता है और जागृतिपूर्वक प्रतिक्रमण करवाकर उनका *निकाल* करता है। क्योंकि अब दुकान खाली करनी है, ऐसा नक्की होता है।

अक्रमविज्ञान अलग ही प्रकार का है। उसमें हम पहले चार्ज होता हुआ बंद कर देते हैं और जो डिस्चार्ज रहता है उसका समभाव से *निकाल* करने को कहते हैं, नया चार्ज नहीं हो ऐसा कर देते हैं। यह सबसे आसान आत्यंतिक मुक्ति का मार्ग है! जिन्हें यह मिल गया वे छूट गए!!

प्राकृत गुण : आत्म गुण

प्रश्नकर्ता : आत्मा प्राप्त करने के लिए, उसके लिए पात्र बनने के लिए अच्छे गुणों की ज़रूरत है क्या?

दादाश्री : नहीं। गुणों की ज़रूरत नहीं है, निष्कैफी होने की ज़रूरत है। गुण का क्या करना है? ये सभी तो प्राकृत गुण हैं, पौद्‌गलिक गुण हैं।

प्रश्नकर्ता : ये सभी गुण तो आत्मा के ही हैं न?

दादाश्री : इसमें एक भी आत्मा का गुण नहीं है। आप प्रकृति के अधीन हो, और प्रकृति के गुण और आत्मा के गुण सर्वथा जुदा हैं।

प्रकृति का एक भी गुण 'शुद्धचेतन' में नहीं है और 'शुद्धचेतन' का एक भी गुण प्रकृति में नहीं है, गुणों से दोनों सर्वथा भिन्न ही हैं।

[७]

आत्मा के बारे में प्रश्नावली

आवरण के आधार पर भिन्नता

प्रश्नकर्ता : आत्मा के आधार पर देह है या देह के आधार पर आत्मा है?

दादाश्री : आत्मा होगा तो देह रहेगी।

प्रश्नकर्ता : अज्ञानी का आत्मा, ज्ञानी का आत्मा और जो मोक्ष में जा चुके हैं उनका आत्मा, इन तीनों की शक्तियों में क्या फर्क है? सिद्ध क्या कर सकते हैं? सर्वज्ञ तो जो चाहे सो कर सकते हैं।

दादाश्री : अज्ञानी का आत्मा बंधन में है ऐसा लगता है, जब कि ज्ञानी का आत्मा अबंध-बंध में होता है, किसी अपेक्षा से बंध और किसी अपेक्षा से अबंध लगता है। और सिद्ध भगवंत तो अबंध ही रहते हैं, मोक्ष में ही रहते हैं। सिद्ध भगवंत करने के लिए रहे नहीं। सिर्फ देहधारी ही जो चाहे सो कर सकता है। सिद्ध भगवंतों की शक्ति संपूर्ण विकसित हुई है, लेकिन किसी के काम नहीं आती।

प्रश्नकर्ता : स्वभाव से, गुणधर्म से एक ही है तो शक्तियों की भिन्नता किस आधार पर है?

दादाश्री : वह भिन्नता आवरण के आधार पर है।

प्रश्नकर्ता : वस्तु की अवस्थाएँ कौन-सी शक्ति से बदलती हैं?

दादाश्री : कालतत्व से। जैसे-जैसे काल बदले, वैसे-वैसे अवस्था बदलती जाती है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान और हृदय में संबंध है क्या?

दादाश्री : दोनों का कोई लेना-देना नहीं है। हृदय 'रिलेटिव' है और ज्ञान 'रियल' है। लेकिन हृदय अच्छा हो, तभी ज्ञान में जल्दी प्रगति कर सकता है।

प्रश्नकर्ता : केवली को आत्मा दिखता होगा?

दादाश्री : केवली को आत्मा ज्ञान से दिखता है। देखना अर्थात् भान होना और जानना अर्थात् अनुभव होना। वह अरूपीपद है, अनुभवगम्य है।

प्रश्नकर्ता : केवली के अलावा अन्य कोई आत्मा देख सकते हैं क्या?

दादाश्री : नहीं।

अज्ञान से मुक्ति, वही मोक्ष

प्रश्नकर्ता : आत्मा को मुक्त किससे होना है?

दादाश्री : पहले अज्ञान से मुक्त होना है। फिर अज्ञान से उत्पन्न हुई इफेक्टस से मुक्त होना है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा का मोक्ष कहते हैं, वह मोक्ष कोई भौगोलिक स्थान है?

दादाश्री : वह भौगोलिक स्थान है, वह ठीक है, लेकिन वास्तव में आप खुद ही मोक्ष स्वरूप हो!

प्रश्नकर्ता : आत्मा और परमात्मा तो अलग ही हैं, उन दोनों का कोई संबंध तो है न?

दादाश्री : अलग नहीं हैं। वही आत्मा है, और वही परमात्मा है। सिर्फ दशा में फर्क है। घर आओ तब चंदूभाई और ऑफिस में बैठे तब कलेक्टर साहब कहलाते हो। 'मैं, बावो और मंगलदास' उसके जैसा है!

प्रश्नकर्ता : आत्मा परमात्मा एक हो जाएँ, वह तो अंतिम स्टेज कहलाती है न?

दादाश्री : हाँ, वह अंतिम स्टेज कहलाती है। उससे आगे फिर कुछ करने को नहीं रहता।

आत्मा का द्रव्य, क्षेत्र

प्रश्नकर्ता : आत्मा क्षेत्र के रूप में किस तरह से रहा हुआ है?

दादाश्री : आत्मा का स्वक्षेत्र, खुद का अनंत प्रदेशी भाग है, वह। उसे वास्तव में क्षेत्र नहीं कहना चाहता हूँ। वह तो परक्षेत्र में से निकालने के लिए स्वक्षेत्र का वर्णन किया है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा का द्रव्य बदलता है?

दादाश्री : आत्मा का स्वद्रव्य नहीं बदलता। लेकिन आत्मा को जो द्रव्य इस संसारभाव से लागू हुए हैं, वे सब बदलते रहते हैं। क्षेत्र बदलता रहता है, काल बदलता रहता है और उसके आधार पर भाव बदलते रहते हैं। भयवाली जगह पर गए, तो वहाँ पर भय उत्पन्न होता है। जीवमात्र के प्रत्येक समय में भाव बदलते रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : आत्मा के प्रकार अलग-अलग होते हैं?

दादाश्री : नहीं, आत्मा एक ही प्रकार के हैं।

प्रश्नकर्ता : आत्मा के लिए राग-द्वेष लागू होते हैं?

दादाश्री : नहीं, राग-द्वेष आत्मा का गुण नहीं है। यह तो रोंग बिलीफ़ से राग-द्वेष होते हैं।

आत्मा ही परमात्मा

प्रश्नकर्ता : 'आत्मा ही परमात्मा है' यह समझाइए।

दादाश्री : 'रिलेटिव' में आत्मा है और 'रियल' में परमात्मा है। जब तक विनाशी चीज़ों का व्यापार है तब तक संसारी आत्मा है, और संसार में नहीं है तो परमात्मा है। 'रिलेटिव' को भजे तो विनाशी है और जो 'रियल' को भजे, वह परमात्मा है। यदि तुझे भान है तो परमात्मा में रहेगा और भान नहीं है तो तू चंदूभाई है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा को पहचानने से हम क्या समझें कि हमें क्या प्राप्त हुआ?

दादाश्री : सनातन सुख।

प्रश्नकर्ता : आत्मा चेतन है। सनातन है, या उसका विलीनीकरण होता है? क्या उसकी स्थिति बदलती है?

दादाश्री : आत्मा सनातन है, वही का वही रहता है, जैसे कि अँगूठी में सोना और तांबा मिला हुआ हो तो सोने की स्थिति बदलती नहीं है, उसके गुणधर्म बदलते नहीं हैं, उसी प्रकार। आत्मा के गुणधर्म अनात्मा के साथ रहने के बावजूद बदलते नहीं हैं, लेकिन सोने को प्रयोग से अलग किया जा सकता है।

प्रश्नकर्ता : गेहूँ के दाने में और पक्षी में चेतना अलग है न?

दादाश्री : नहीं, चेतना तो समान ही है, मुझमें, आपमें और गेहूँ के दाने में चेतना तो एक समान ही है लेकिन हर एक के आवरण में फर्क है।

प्रश्नकर्ता : चेतन दूसरों को हिलाता है?

दादाश्री : नहीं, सिर्फ उसके स्पर्श से ही सबकुछ चलता है। संयोगों के दबाव से एक बिलीफ़ उत्पन्न हो जाती है कि 'मैं कर रहा हूँ।' उस विभाविक भाव में होने के बावजूद आत्मा 'खुद' स्वाभाविक भाव में ही होता है।

प्रश्नकर्ता : मृतदेह में तो सभी तत्व रहते हैं न?

दादाश्री : नहीं। सिर्फ *पुद्‌गल* और आकाश दो ही तत्व रहते हैं। बाकी के उड़ जाते हैं। फिर सभी तत्व अलग-अलग हो जाते हैं और सब अपने-अपने मूल तत्वों में चले जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसमें भी स्पेस तो रोकते हैं न?

दादाश्री : मूल *पुद्‌गल* तत्व की खुद की स्वाभाविक स्पेस तो होती ही है। लेकिन इन दूसरे परमाणुओं के सम्मेलन से जो देह उत्पन्न होता

है, वह भी जगह रोकता है। आत्मा के निकल जाने के बाद में सभी खुद के मूल तत्व में आ जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : मनुष्य ने निश्चय किया हो कि स्वरूप में रहना है, तो वह बुद्धिगम्य है? यह मन से होता है? या उससे परे है?

दादाश्री : स्वरूप में रहना-वह मन से, बुद्धि से, सभी से बिल्कुल परे है, लेकिन स्वरूप का भान होना चाहिए। मन 'कम्प्लीट फ़िज़िकल' है।

निद्रा में चेतन की स्थिति

प्रश्नकर्ता : रात को सो गए और सुबह जगे, वह किसे पता चलता है कि एक ही नींद में सुबह हो गई?

दादाश्री : ये सब मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार अर्थात् अंत:करण के धर्म हैं सारे। आत्मा चैतन्य अक्रिय भाग हैं, ज्ञाता-दृष्टा और अक्रिय हैं। इसमें अंत:करण अक्रिय हो जाए, तो सुखमय परिणाम रहा करता है। रात को सो जाता है यानी अक्रिय हो गया, उसका सुख बरतता है। जब तक क्रिया है, तब तक कम सुख रहता है। यह अहंकार के कारण सोता है, और अहंकार के कारण जगता है। और 'एक ही नींद में सुबह हो गई' कहता है, वह भी अहंकार ही है।

प्रश्नकर्ता : उसमें आत्मा का भास है क्या?

दादाश्री : नहीं, नहीं।

प्रश्नकर्ता : रात को सो जाने के बाद आत्मा की दशा कैसी रहती है?

दादाश्री : जो निरंतर शुद्धात्मा के भान में रहता है, वह तो नींद में भी उसी स्थिति में रहता है। और जो 'मैं चंदूलाल हूँ' के भानवाला है, उसे भी नींद में 'मैं चंदूलाल हूँ' का भान चला नहीं जाता। इसीलिए तो वह बोलता हैं कि 'मुझे अच्छी नींद आई।' अरे, तू तो सो रहा था तो फिर यह पता किसे चला? वह अहंकार ने जाना।

प्रश्नकर्ता : मनयोगी और आत्मयोगी में क्या फर्क है?

दादाश्री : बहुत फर्क है, आकाश-पाताल जितना अंतर है। लेकिन जो देहयोगी हैं, उसके बजाय मनयोगी बहुत उच्च हैं। मन के योग द्वारा आत्मा के योग तक नहीं पहुँच सकते।

प्रश्नकर्ता : अंतर्मुखी और बहिर्मुखी, इन दोनों के बारे में समझाइए।

दादाश्री : अविनाशी का विचार आया कि अंतर्मुखी हो जाता है। जब तक विनाशी चीज़ों की रुचि हैं, इच्छा हैं, वृत्तियाँ बाहर भटकती हैं, तब तक बहिर्मुखी रहता है।

आत्मा-अनात्मा का भेदांकन

प्रश्नकर्ता : आत्मा और अनात्मा को अलग करना हो तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : सोना और तांबा अँगूठी में मिला हुआ रहता है और उसमें से सोने को अलग करना हो तो क्या करना चाहिए? सुनार से पूछो तो वह क्या कहेगा? 'हमें अँगूठी दे जाओ तो काम हो जाएगा।' उसी प्रकार आपको हमें इतना ही कहना है कि 'हमारा निबेड़ा ला दीजिए', तो काम हो जाएगा। आत्मा एक सेकन्ड के लिए भी अनात्मा नहीं हुआ है। ज्ञानी को कहने जैसा है, इसमें आपको करने जैसा कुछ भी नहीं है। 'करना', वह भ्रांति है, जिसे 'ज्ञानी' मिल गए उसका निबेड़ा आ गया।

प्रश्नकर्ता : परमात्मा को पहचानने में दुःख और अशांति का अनुभव क्यों होता है?

दादाश्री : परमात्मा तो हैं ही, लेकिन आप परमात्मा के साथ जुदापन रखते हो। अंदर परमात्मा बैठे हैं, उनकी भक्ति उत्पन्न हो जाए तो दुःख उत्पन्न नहीं होगा। लेकिन बिना पहचाने किस तरह से भक्ति उत्पन्न होगी? प्रत्यक्ष भक्ति से सुख है और परोक्ष भक्ति से घड़ीभर में शांति और घड़ीभर में अशांति होती है।

प्रश्नकर्ता : भगवान यदि दुःख के हर्ता हैं और सुख के कर्ता हैं, तो फिर अशांति क्यों है?

दादाश्री : भगवान दु:ख के हर्ता भी नहीं हैं और सुख के कर्ता भी नहीं। भगवान के प्रति भेदबुद्धि चली जाए, अभेदबुद्धि उत्पन्न हो जाए, तब दु:ख जाएगा। भगवान किसीका दु:ख लेते नहीं है और सुख देते भी नहीं, वे तो ऐसा कहते हैं कि मेरे साथ तन्मयाकार हो जा, एक हो जा, तो दु:ख नहीं रहेगा। एक भी बात सही न समझे, वह भ्रांति है।

राहबर मिटाए भव की भटकन

प्रश्नकर्ता : मोक्ष में जाने का सरल रास्ता कौन-सा है?

दादाश्री : 'राहबर से मिलना'-वह, राहबर मिला कि हल आ गया। उससे अधिक सीधा और सरल मार्ग भला और कौन-सा है?

भगवान ने कहा है कि क्या करने से मोक्ष में जाया जा सकता है? समकित हो जाए तो जाया जा सकता है अथवा 'ज्ञानीपुरुष' की कृपा हो जाए तो जाया जा सकता है। 'ज्ञानी' दो प्रकार के हैं। एक शास्त्रज्ञानी और दूसरे अनुभव ज्ञानी, यथार्थ ज्ञानी। यथार्थ ज्ञानी तो अंदर से पाताल फोड़कर बोलते हैं, वह यथार्थ ज्ञान है। यथार्थ ज्ञान से आत्मज्ञान होता है। बाकी जब तक 'मैं चंदूलाल हूँ' ऐसा ममताभाव है, तब तक समताभाव कहाँ से आएगा? एक बार समकित को स्पर्श करे उसके बाद ही यथार्थ समताभाव आएगा। ये लोग जो कहते हैं, वह तो लौकिक समताभाव कहलाता है। शास्त्र और पुस्तकें पढ़-पढ़कर पुस्तकों का मोक्ष हो गया, लेकिन उनका नहीं हुआ!

आत्मसुख की अनुभूति

प्रश्नकर्ता : मन शांत हो जाए, मन परेशान नहीं करे, तब वह कौन-सा सुख उत्पन्न होता है? चित्त भटके नहीं तो वह कौन-सा सुख उत्पन्न होता है?

दादाश्री : यह मन ही सब करता है। मन ही चित्त को, अहंकार को, सभी को उकसाता है। मन शांत हो जाए तो सबकुछ शांत हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : आत्मदशा में आत्मा का सुख किस तरह से पता चलता है कि यह आत्मा का ही सुख है?

दादाश्री : बाहर से किसी भी चीज़ में सुख नहीं हो, कुछ भी देखने से

सुख उत्पन्न नहीं हुआ हो, कुछ सुनने से, खाने से, स्पर्श से, ठंडक से या किसी भी प्रकार का इन्द्रिय सुख नहीं हो, पैसों के कारण सुख नहीं हो, कोई ऐसा कहनेवाला नहीं हो, विषयसुख नहीं हो, वहाँ पर अदंर जो सुख बरतता है, वह आत्मा का सुख है। लेकिन इस सुख का आपको खास पता नहीं चलेगा। जब तक विषय होते हैं, तब तक आत्मा का स्पष्ट सुख नहीं आता।

छूटे देहाध्यास, वहाँ....

प्रश्नकर्ता : 'देहाध्यास गया', ऐसा किसे कहते हैं?

दादाश्री : जेब काट ले, गालियाँ दे, मारे फिर भी आपको राग-द्वेष नहीं हो तब, देहाध्यास चला गया, कहा जाएगा। जब तक आत्मज्ञान प्राप्त नहीं होता, तब तक पूरा जगत् देहाध्यास से बंधा हुआ है। जितने विकल्प उतने देहाध्यास। देह गुनहगारी में बंधने के लिए नहीं है, मुक्ति के लिए है, जन्मों-जन्म की गुनहगारी लाए हुए हैं उसका *निकाल* तो करना पड़ेगा न? देहाध्यास जाए तो चारित्र में आया कहलाएगा।

प्रश्नकर्ता : देह में आत्मा का स्थान कहाँ पर है?

दादाश्री : इन बालों में और नाखून में नहीं है, बाकी सभी जगह पर आत्मा का स्थान है। जहाँ पर भी अंगारा लगाएँ और पता चले, वहाँ पर आत्मा का स्थान है।

प्रश्नकर्ता : जड़ में चेतन रखा जा सकता है?

दादाश्री : 'यह पेन मेरा है' कहा, वह आपने मेरेपन का चेतन रखा, इसलिए यदि यह मुझसे खो जाए तो आपको दु:ख होगा!

देह और आत्मा का भिन्नत्व

प्रश्नकर्ता : आत्मा और देह का संबंध क्या है?

दादाश्री : आत्मा और देह का कोई संबंध नहीं है। जैसे कि मनुष्य के पीछे परछाई है, उसका मनुष्य के साथ जितना कनेक्शन है, उतना ही आत्मा का और देह का संबंध है। जिस प्रकार से परछाई सूर्यनारायण की

हाज़िरी से उत्पन्न होती है, उसी प्रकार आत्मा की हाज़िरी से यह सब उत्पन्न होता है। यह तो, पराई चीज़ को ले बैठे हैं।

आत्मा और देह का संबंध इतना अलग है, जितना कि लिफ्ट में खड़ा हुआ व्यक्ति और लिफ्ट, वे दोनों अलग हैं। लिफ्ट सभी कार्य करती है। आपको तो सिर्फ बटन ही दबाना पड़ता है, इतना ही कार्य करना होता है। इतना नहीं समझने से लोग भयंकर *अशाता* और पीड़ाएँ भोगते हैं। इस लिफ्ट को उठाने जाएँ, यह तूफान उसके जैसा है। ये मन-वचन-काया तीनों ही लिफ्ट हैं। सिर्फ 'लिफ्ट' का बटन ही दबाना है। एक आत्मा है और दूसरा अहंकार है। जिसे सांसारिक पौद्‌गलिक वस्तुओं की आवश्यकता हो, उसे अहंकार करके बटन दबाना है। और जिसे संसारी वस्तुएँ नहीं चाहिए, उसे आत्मा के भाव से बटन दबाना है। आत्मा के भाव से क्यों? तो इसलिए कि, 'छूटना है, मोक्ष में जाना है। अब उसे अहंकार करके आगे नहीं बढ़ाना है।'

यहाँ पर लग गई हो तो अहंकार कहता है कि 'मुझे बहुत लग गई', तो दु:ख उठाता है और यदि अहंकार कहे कि 'मुझे बिल्कुल नहीं लगी', तो दु:ख नहीं होगा। मनुष्य सिर्फ अहंकार की करता है। वीतरागों के इस गूढ़ विज्ञान को यदि समझो तो इस जगत् में किसी तरह का दु:ख होता होगा!? आत्मा खुद तो परमात्मा ही है! आत्मा चैतन्य है और जड़ संबंध है। खुद संबंधी और जड़ संबंध मात्र है। हमारे साथ संयोगों का संबंध हुआ है, बंध नहीं हुआ। और फिर संयोग वियोगी स्वभाव के हैं। एक बार 'ज्ञानीपुरुष' से आत्मा प्राप्त कर लेने के बाद संयोग संबंध पूरा ही वियोगी स्वभाव का है।

. . .वहाँ पर है सच्चा ज्ञान

सही ज्ञान हो तो उसकी निशानी क्या है? छोटे बच्चे से लेकर वृद्ध तक के, छोटे बालक अर्थात् डेढ़ वर्ष से लेकर अस्सी वर्ष तक के, संसारी पद से लेकर संन्यासी पद तक के, सभी मनुष्यों को आकर्षित करता है क्योंकि फेक्ट वस्तु है। बालक को भी अंदर दर्शन होते हैं। जिन धर्मस्थानों पर बालकों को हेडेक हो जाए, वहाँ पर सही धर्म नहीं है, वह सब रिलेटिव है।

जिस वाद पर विवाद नहीं हो, वह सच्चा ज्ञान कहलाता है। और वाद पर विवाद हो, संवाद हो, प्रतिवाद हो, ज़बानदराज़ी हो, वहाँ पर सच्चा ज्ञान नहीं होता।

ज्ञान दो प्रकार के हैं- एक वह कि संसार में क्या सही और क्या गलत है, क्या अहितकारी है और क्या हितकारी है और दूसरा मोक्षमार्ग का ज्ञान। उसमें यदि मोक्षमार्ग का ज्ञान प्राप्त हो जाए तो संसार का ज्ञान तो सहज ही उत्पन्न हो जाएगा क्योंकि उसे दृष्टि मिली है न! दिव्यदृष्टि मिली! मोक्षमार्ग का ज्ञान नहीं मिले तो संसार के हिताहित का ज्ञान देनेवाले संत मिलने चाहिए। इस काल में ऐसे संत दुर्लभ होते हैं।

वज्रलेपम् भविष्यति

प्रश्नकर्ता : लोग भगवान को धोखा देकर धर्म में भ्रष्टाचार करते हैं।

दादाश्री : वह बहुत गलत कहलाता है। इसलिए तो पहले से ही पहले के ज्ञानियों ने श्लोक कहा है-

अन्य क्षेत्रे कृतम् पापम्, धर्मक्षेत्रे विनश्यति,

धर्मक्षेत्रे कृतम् पापम्, वज्रलेपम् भविष्यति।

वज्रलेप अर्थात् लाखों वर्षों के लिए खत्म हो जाए! नर्क मिलता है! जो खुद का ही अहित कर रहे हैं, उन्हें हम ऐसा कहते हैं कि 'जागते हुए सो रहे हैं।' इससे तो मनुष्यपन चला जाएगा, दुःख के पहाड़ खड़े कर रहे हैं। इसे सिर्फ ज्ञान ही रोक सकता है। सत्यज्ञान मिलना चाहिए। सिर्फ पछतावा करने से कुछ नहीं होगा। पछतावा तो धर्म की एक शुरूआत की एक सीढ़ी है।

प्रश्नकर्ता : गलत काम करता है और पछतावा करता है, फिर वापस वही चलता रहता है न?

दादाश्री : पछतावा हार्टिली होना चाहिए।

उल्टा ज्ञान मिलता है, उसमें से तृष्णाएँ उत्पन्न होती हैं और उल्टे ज्ञान की आराधना के फल स्वरूप दुःख आता है। बाकी, कुदरत किसीको

दु:ख देने के लिए सर्जित नहीं हुई है। मनुष्य के अलावा अन्य प्राणियों को कोई चिंता या दु:ख नहीं है।

विकल्पी होने के बाद मनुष्य अहंकारी हो जाता है। तब तक अहंकार नोर्मल कहलाता है। साहजिक, वास्तविक अहंकार कहलाता है। विकल्पी हुआ तो उसके लिए ज़िम्मेदार बना। और ज़िम्मेदार बनने के बाद में दु:ख आता है। जब तक विकल्पी नहीं होता, ज़िम्मेदार नहीं बनता, तब तक कुदरत कभी भी किसीको दु:ख नहीं देती।

प्रश्नकर्ता : मनुष्य ही दु:ख खड़े करते हैं?

दादाश्री : हमने ही खड़े किए हैं, कुदरत ने नहीं। कुदरत तो हेल्पफुल है। ज्ञान का दुरुपयोग हुआ तो शैतान का राज आपके ऊपर हो गया, वहाँ पर फिर भगवान खड़े नहीं रहेंगे।

भगवान स्वरूप, कब?

प्रश्नकर्ता : जीव, आत्मा और भगवान में फर्क क्या है?

दादाश्री : स्वसत्ता में आ जाए, उसके बाद भगवान कहलाता है। पुरुष हो जाने के बाद पुरुषार्थ में आए, तब भगवान कहलाता है, और जब तक प्रकृति की सत्ता में है, तब तक जीव है।

'मैं मर जाऊँगा', जिसे ऐसा भान है, वह जीव है और 'मैं नहीं मरूँगा', ऐसा भान आए वह आत्मा, और फुल स्टेज में आ गए, वे भगवान।

प्रश्नकर्ता : आत्मा भगवान का स्वरूप कब माना जाता है?

दादाश्री : खुद के स्वरूप का भान हो जाए, तब भगवान स्वरूप होने लगता है और फिर जब कर्म के बोझ कम हो जाएँ, और अंत में फुल स्वरूप हो जाए, तब खुद ही परमात्मा बन जाता है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा दैहिक रूप धारण करे, तब जीव कहलाता है?

दादाश्री : आत्मा दैहिक रूप धारण नहीं करता, सिर्फ बिलीफ़ बदलती है। 'मैं चंदूलाल हूँ', यह रोंग बिलीफ़ बैठ गई है। सचमुच में

आप आत्मा स्वरूप ही हो और आत्मस्वरूप में कभी मरते ही नहीं, सिर्फ 'बिलीफ़' ही मरती है।

प्रश्नकर्ता : हर एक के आत्मा एक स्वरूप है, तो फिर हर एक को अनुभव अलग-अलग क्यों होते हैं?

दादाश्री : हर एक आत्मा समसरण मार्ग में है। उसके प्रवाह अलग-अलग होने के कारण हर एक को अलग-अलग अनुभव होते हैं।

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा और अशुद्धात्मा दोनों आत्मा एक हैं?

दादाश्री : अशुद्ध तो अपेक्षा के आधार पर कहलाता है। 'मैं चंदूलाल हूँ' तब अशुद्ध कहलाता है, वह जीवात्मा कहलाता है। और वह रोंग बिलीफ़ फ्रेक्चर हो जाए और राइट बिलीफ़ बैठ जाए तब 'शुद्धात्मा' कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा बोलता हूँ, उसमें कोई प्रचंड अहंकार तो नहीं घुस जाता न?

दादाश्री : नहीं, वह तो (यह ज्ञान मिलने के बाद) आप खुद ही उसी रूप होकर बोलते हो। खुद के स्वरूप में ही बोले, इसलिए अहंकार नहीं कहलाएगा। जहाँ पर खुद नहीं हो, वहाँ पर 'मैं हूँ' ऐसा माने तो वह अहंकार है।

प्रश्नकर्ता : सच्चे जीववाले किसे कहते हैं?

दादाश्री : सच्चे जीववाले तो जिसने आत्मा, शुद्धात्मा को जाना, वही खुद कहलाता है। बाकी, इस मंदिर को भगवान मानें तो भगवान कहाँ जाएँ? मंदिर को भगवान कहकर उससे चिपक जाएँ तो भगवान हँसते रहते हैं कि 'अरे, तू अंधा है या क्या? यह मुझे पहचानता नहीं और इस मंदिर से चिपक पड़ा!' मंदिर को ही चेतन मानता है।

आत्मा मोक्षस्वरूप, तो मोक्ष किसका?

प्रश्नकर्ता : आत्मा अजर है, अमर है, देह से भिन्न है, तो मोक्ष किसका होता है?

दादाश्री : अहंकार का। अहंकार का मोक्ष हो जाए तो वह विलय हो जाता है। जिसका उद्भव हुआ है, उसका विलय होता है। अहंकार ही बंधा हुआ है, आत्मा बंधा हुआ नहीं है। जब ज्ञानीपुरुष समझाएँ, तब अहंकार का मोक्ष हो जाता है।

आत्मा शुद्ध ही है, मोक्ष स्वरूप ही है! कभी भी अशुद्ध हुआ ही नहीं या बंधा ही नहीं!!

यह जगत्, वह 'इगोइज़म' का विज़न है। आकाशकुसुमवत् दिखाए उसका नाम इगोइज़म। कभी आँख पर हाथ दब गया हो तो दो चंद्रमा दिखते हैं। इसमें क्या सत्य है? क्या रहस्य है? अरे भाई, चंद्रमा तो एक का एक ही है। तेरी नासमझी से यों दो दिखते हैं।

दर्पण के आगे चिड़िया बैठती है, वहाँ पर दो चिड़िया होती हैं? फिर भी उसे भ्रांति हो जाती है कि दूसरी चिड़िया है, वह चोंच मारती रहती है। उसे लगती भी होगी। उसे निकाल दें तो भी वह वापस आ जाती है। अगर उसे पूछें कि 'क्या ढूँढ रही हो बहन? आपके न तो पति हैं, न देवर, न ही सास तो क्या ढूँढ रही हो?' वैसे ही इन लोगों को *आँटी* (गाँठ पड़ जाए उस तरह से उलझा हुआ) पड़ गई है। यह दर्पण तो बड़ा साइन्स है। आत्मा का फ़िज़िकल वर्णन करना हो तो सिर्फ दर्पण ही एक साधन है!

'मैं हूँ, मैं हूँ' करता है तो आत्मा कहता है कि 'जा! तू और मैं अलग!' वह इगोइज़म खत्म हो गया तो 'तू ही है।' अहंकार यों ही खत्म नहीं हो जाएगा, वह चटनी की तरह पीसा जा सके, ऐसा नहीं है। वह तो खुद की भूलें दिखने पर अहंकार खत्म होता है। अहंकार अर्थात् भूल का स्वरूप।

ब्रह्म और परब्रह्म की पहचान

प्रश्नकर्ता : ब्रह्म और परब्रह्म का मतलब क्या है?

दादाश्री : ब्रह्म, वह आत्मा है और परब्रह्म, वह परमात्मा है। जब तक देहधारी होता है, तब तक वह आत्मा माना जाता है, परमात्मा

नहीं माना जाता। तीर्थंकर और ज्ञानीपुरुष देहधारी परमात्मा माने जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : यह जो ब्रह्म है, वह क्या है?

दादाश्री : आपका नाम क्या है?

प्रश्नकर्ता : चंदूलाल।

दादाश्री : आप चंदूलाल हो, वह बिल्कुल गलत नहीं है। बाइ रिलेटिव व्यू पोइन्ट यू आर चंदूभाई एन्ड बाइ रियल व्यू पोइन्ट यू आर ब्रह्म! ब्रह्म अर्थात् आत्मा, लेकिन ब्रह्म का भान होना चाहिए न?

प्रश्नकर्ता : मायिक ब्रह्म और अमायिक ब्रह्म, वह समझाइए।

दादाश्री : ऐसा है न, मायिक ब्रह्म को ब्रह्म कहना गुनाह है। जो भ्रमणा में पड़ा है, उसे ब्रह्म कहेंगे ही किस तरह? मायिक अर्थात् भ्रमणा में पड़ा हुआ। सच्चे ब्रह्म को ब्रह्म कह सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : जो मनुष्य संपूर्ण ब्रह्मस्वरूप, परमात्मास्वरूप हो गया, तो वह बात कर सकता है?

दादाश्री : जो बात नहीं कर सकते, वे ब्रह्मस्वरूप हुए ही नहीं हैं। संपूर्ण ब्रह्मस्वरूप कब कहलाएगा कि बाहर का संपूर्ण भान हो, संसारियों से भी अधिक भान हो। देहभान चला जाए, वह तो एकाग्रता है। उसे 'आत्मा प्राप्त हुआ', नहीं कहा जाएगा। संपूर्ण ब्रह्मस्वरूप होने के बाद में वाणी रहती है, सबकुछ रहता है। क्योंकि देह और आत्मा दोनों भिन्न ही बरतते हैं। जैसे यह कोट और शरीर भिन्न बरतते हैं, वैसे। अपने-अपने निजधर्म में रहते हैं, ब्रह्म, ब्रह्म के धर्म में और अनात्मा, अनात्मा के भाग में रहता है। देहभान नहीं रहे, वह ज्ञान की पूर्णता की, निर्विकल्प दशा की निशानी नहीं है। एकाग्रता करे, कुंडलिनी जागृत करे, वह टेम्परेरी अवस्था है। बाद में फिर वापस जैसा था वैसे का वैसा ही हो जाता है। यह हेल्पिंग चीज़ है, लेकिन पूर्ण दशा नहीं है।

[८]

सूझ, उदासीनता

सूझ, समसरण मार्ग की देन

प्रश्नकर्ता : सूझ का मतलब क्या है? इसे प्रेरणा कहते हैं?

दादाश्री : प्रेरक, वह डिस्चार्ज है। अंदर एकदम लाइट कर देती है और उससे प्रेरणा होती है। वह जो लाइट होती है, वह सूझ है। सूझ तो अविरत प्रवाह है, लेकिन उस पर आवरण आ गए हैं इसलिए दिखता नहीं है, इसलिए कोई सूझ नहीं पड़ती। अतः लोग ज़रा सिर खुजलाते हैं तो अंदर लाइट होती है और सूझ पड़ जाती है। यह सिर खुजलाते हैं तब क्या होता है, वह पता है?

प्रश्नकर्ता : नहीं, दादा।

दादाश्री : जो चित्त वृत्तियाँ इधर-उधर खिंची हुई हों, वे सिर खुजलाने से ज़रा एकाग्र हो जाती हैं। एकाग्रता हुई कि अंदर एकदम सूझ पड़ जाती है।

सूझ पड़ती है, जगत् उसे पुरुषार्थ कहता है। वास्तव में यह पुरुषार्थ है ही नहीं। सूझ तो कुदरती बख़्शीश है।

हर एक को सूझ होती है। उसकी सूझ पर से हमें मालूम हो जाता है कि यह समसरण मार्ग के प्रवाह में कितने मील पर है। छह महीनों पहले की और अभी की सूझ में फर्क पड़ चुका होता है, बढ़ गई हो तो समझ में आता है कि वह कौन-से मील पर पहुँचा है। इस दुनिया में देखने जैसी वही एक वस्तु है। इन मनुष्यों के शरीर में सिर्फ सूझ ही डिस्चार्ज नहीं है, बाकी का सभीकुछ डिस्चार्ज है। सूझ खुद चार्ज नहीं

करती, लेकिन सूझ में से चार्ज उत्पन्न हो जाता है। सूझ में अहंकार मिल जाए तो चार्ज उत्पन्न हो जाता है। सूझ में अहंकार नहीं है, लेकिन बाद में उसमें अहंकार मिल जाता है।

प्रश्नकर्ता : सूझ और दर्शन एक ही हैं क्या?

दादाश्री : एक हैं, लेकिन लोग दर्शन को बहुत निचली भाषा में ले जाते हैं। दर्शन तो बहुत उच्च वस्तु हैं। वीतरागों ने सूझ को दर्शन कहा है। भटकते हुए ग्यारहवें मील से आगे चले तो वहाँ का दर्शन हुआ। जैसे-जैसे आगे चलता है, वैसे-वैसे उसका डेवेलपमेन्ट बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे उसका दर्शन बढ़ता जाता है। और एक दिन अंदर दर्शन हो जाए कि 'मैं यह नहीं हूँ, लेकिन मैं आत्मा हूँ', तो दर्शन निरावरण हो जाता है!

आप जो प्रोजेक्ट करते हो, वह सूझ के आधार पर करते हो, फिर जो प्रेरणा होती है वह लिखते हो। सूझ बहुत सूक्ष्म वस्तु है।

जगत् में अंतरसूझ को किसीने हेल्प नहीं की है। योग में अंतरसूझ बहुत स्पीडिली खिलती है। लेकिन लोग उल्टे मार्ग पर गए इसलिए सिर्फ चक्र ही देखते रहते हैं!

सूझ के बाद भाव उत्पन्न होता है, जगत् में शायद ही कुछ लोग, सूझ में और भाव में जागृत रहते हैं। सूझ और भाव जो सहज प्रयत्न से मिलते हैं, अप्रयास प्रयत्न से मिलते हैं, वही उसके लिए प्रकाश स्तंभ बन जाते हैं बाकी जिसे भावजागृति हो उसीको जागृत कहते हैं, और सूझ जागृति तो बहुत उच्च वस्तु है। भावजागृति में आने का मतलब जैसे सपने में से अँगड़ाई लेकर उठने पर कुछ भान हो, वैसा समझ में आता है।

प्रश्नकर्ता : सूझ और प्रज्ञा में क्या फर्क है?

दादाश्री : प्रज्ञा, वह परमानेन्ट वस्तु है और सूझ चेन्ज होती रहती है। जैसे-जैसे आगे बढ़ता है, वैसे-वैसे सूझ चेन्ज होती रहती है। प्रज्ञा, वह 'टेम्परेरी परमानेन्ट' वस्तु है। जब तक संपूर्णपद प्राप्त नहीं हो जाता,

सिद्धदशा नहीं हो जाती, तभी तक प्रज्ञा रहती है। प्रज्ञा स्वरूपज्ञान के बाद ही उत्पन्न होती है; जब कि सूझ तो हर एक को समसरण मार्ग के मील पर उत्पन्न होनेवाली बख़्शीश है।

अब जो सूझ पड़ती है, वह भी संपूर्ण स्वतंत्र नहीं है। आत्मा परमात्मस्वरूप है। वह गलत भी नहीं सुझाता और सच भी नहीं सुझाता। वह तो जब पाप का उदय आए तब गलत सूझता है और पुण्य का उदय आए तब सही दिखाता है। आत्मा कुछ भी नहीं करता, वह तो मात्र स्पंदनों को देखता ही रहता है।

प्रश्नकर्ता : समझ और सूझ में फर्क है?

दादाश्री : समझ को सूझ कहते हैं, समझ, वह दर्शन है, वह आगे बढ़ते-बढ़ते ठेठ केवलदर्शन तक जाती है।

यह हम आपको समझाते हैं और आपको उसकी *गेड़* बैठना यानी कि वह आपको फुल समझ में आ जाता है। यानी मैं जो कहना चाहता हूँ वह आपको पोइन्ट टु पोइन्ट एक्ज़ेक्टली समझ में आ जाता है। उसे *गेड़* बैठी कहा जाता है। हर एक का व्यू पोइन्ट अलग-अलग होता है इसीलिए अलग-अलग तरह से समझ में आता है। हर एक को उसकी दर्शनशक्ति के आधार पर बात फ़िट होती है।

प्रश्नकर्ता : जब सूझ पड़ती है, तब सूझ में सूझ है या अहंकार बोलता है, यह पता नहीं चलता।

दादाश्री : अहंकार के प्रतिस्पंदन हैं इसीलिए मनुष्य सूझ का पूरा-पूरा लाभ नहीं उठा सकता। सूझ तो हर एक को पड़ती ही रहती है। जैसे-जैसे अहंकार शून्यता को प्राप्त करता जाता है, वैसे-वैसे सूझ बढ़ती जाती है।

इन साइन्टिस्टों को सूझ में दिखता है, उन्हें ज्ञान में नहीं दिखता। सूझ, वह कुदरती बख़्शीश है।

उदासीनता किसे कहते हैं?

मैं सर्व परतत्वों से सर्वथा उदासीन ही हूँ।

मैं सर्व परतत्वों से सर्वथा वीतराग ही हूँ।

इस उदासीन का मतलब लोकभाषा का उदास नहीं, लेकिन मैं स्वतत्ववाला हुआ इसलिए अब मुझे इन पराये तत्वों की ज़रूरत नहीं है। इसलिए 'उसे' उदासीन भाव रहता है, खुद का सुख अनंत ऐश्वर्यवाला है ऐसा भान हो जाए तो बाह्यवृत्तियाँ नहीं होतीं, यानी कि परद्रव्यों के प्रति वीतराग भाव रहता है। खुद के स्वरूप का ज्ञान नहीं हो, वैसी उदासीनता हमें (आत्मज्ञान प्राप्त महात्मा) नहीं रहती। लेकिन उल्लासित उदासीनता रहती है। जब भक्त लोगों के घर पर विवाह होता है तो भी उन्हें उदासीनता लगती है, वैसा हमें नहीं होता।

आत्मस्वरूप प्राप्त करने के बाद में पहले बाकी सभी जगह से उदासीनता आती है और अंत में वीतरागता आती है।

प्रश्नकर्ता : वैराग्य, उदासीनता और वीतरागता में क्या फर्क है?

दादाश्री : वैराग्य क्षणजीवी है। वैराग्य उत्पन्न होने से लेकर संपूर्ण वैराग्य रहे, उस सारे भाग को वैराग्य कहा है। बैराग का अर्थ है जो 'नहीं भाए,' जो नापसंद हो जाए, वह। लेकिन वह सही (प्रोपर) नहीं है। दु:ख आए तो वैराग्य आता है, और उदासीनता वीतरागता का प्रवेशद्वार है।

उदासीनता, वह क्रमिकमार्ग की बहुत ऊँची वस्तु है। क्रमिकमार्ग में उदासीनता आना अर्थात् सभी नाशवंत चीज़ों के प्रति भाव टूट जाता है और अविनाशी की खोज होने के बावजूद वह प्राप्त नहीं होता।

बैरागी को जो 'अच्छा नहीं लगता,' वह उसकी खुद की शक्ति से नहीं होता। कुछ पसंद आए और कुछ नहीं पसंद आए, ऐसा होता है; जब की उदासीनतावाले को तो सिर्फ आत्मा जानने के अलावा अन्य किसी वस्तु में रुचि नहीं होती।

प्रश्नकर्ता : वीतरागता बरत रही है या उदासीनता बरत रही है, यह कैसे समझ में आए? दोनो में फर्क क्या है?

दादाश्री : उदासीनता का मतलब राग-द्वेष पर पर्दा डाल देना, वह

और वीतरागता में राग-द्वेष ही नहीं होते। उदासीनता में पहले सभी वृत्तियाँ मंद पड़ जाती है, फिर वीतरागता उतपन्न होती है। उदासीनता अर्थात् रुचि भी नहीं होती और अरुचि भी नहीं होती।

प्रश्नकर्ता : बाहर कहीं भी उल्लास महसूस नहीं हो और अंदर राग-द्वेष नहीं हों, तो वह क्या कहलाता है?

दादाश्री : उदासीनता में अंदर उल्लास होता है और बाहर उल्लास नहीं दिखता; जब कि वीतरागता में अंदर बाहर सब तरफ उल्लास होता है।

[१]

प्रतिष्ठित आत्मा : शुद्धात्मा

जगत् का अधिष्ठान क्या है?

'प्रतिष्ठित आत्मा' इस जगत का अधिष्ठान है। 'प्रतिष्ठित आत्मा' कौन है? 'मैं चंदूलाल हूँ, यह देह मेरी है, यह मेरा है, मन मेरा है' ऐसी प्रतिष्ठा करने से प्रतिष्ठित आत्मा बनता है। यह किससे उत्पन्न हुआ? अज्ञान में से। इस मूर्ति में प्रतिष्ठा करो तो वह फल देती है, जबकि यह तो भगवान के साक्षी में प्रतिष्ठा होती है, वह कैसा फल देगी!

यह 'प्रतिष्ठित आत्मा,' यह हमने नया शब्द दिया है। लोगो को सादी भाषा में समझ में आ जाए और भगवान की बात आसानी से समझ में आए, उस तरह से रखा है।

प्रश्नकर्ता : 'प्रतिष्ठित आत्मा' *पुद्गल* है या चेतन है?

दादाश्री : *पुद्गल* है, लेकिन चेतन भाव को प्राप्त किए हुए है, उसे हम 'चार्ज हो चुका है', ऐसा कहते हैं। वह विशेषभाव से परिणमित होता हुआ *पुद्गल* है। उसे हम मिश्रचेतन कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : आहार, भय, निद्रा और मैथुन, ये चार संज्ञाएँ गांठें हैं या प्रतिष्ठित आत्मा का स्वभाव है?

दादाश्री : वह प्रतिष्ठित आत्मा का स्वभाव नहीं है, प्रतिष्ठित आत्मा, 'इगोइज़्म' का पुतला है। जितने भाव भरे हुए हैं, उतने भाव उत्पन्न हुए। आहार देखा कि आहार की गांठ फूटती है। लकड़ी दिखी तो भय की गांठ फूटती है। आहार, भय, मैथुन, निद्रा वे संज्ञाएँ गांठों के रूप में हैं; संयोग मिला के गांठ फूटती है।

प्रतिष्ठित आत्मा में क्रोध-मान-माया-लोभ की प्रतिष्ठा हो चुकी है, वह अभी फल दे रही है। स्वरूप का ज्ञान हो गया के प्रतिष्ठा बंद हो गई।

जगत् के लोग कहते हैं न कि 'मेरा आत्मा पापी है,' वे प्रतिष्ठित आत्मा के लिए कहा जाता है। मूल आत्मा तो शुद्धात्मा है, वह एक क्षण के लिए भी अशुद्ध हुआ ही नहीं। आत्मा के जो पयार्य हैं, वे अशुद्ध हुए हैं, इसलिए प्रतिष्ठा की कि 'यह मैं हूँ, यह मेरा है।'

'चार्ज' में प्रतिष्ठित आत्मा नहीं होता। 'चार्ज' में 'खुद' होता है। 'डिस्चार्ज' में प्रतिष्ठित आत्मा होता है।

व्यवहार आत्मा : निश्चय आत्मा!

प्रश्नकर्ता : ये शुभ-अशुभ भाव होते हैं, वे किसे होते हैं? प्रतिष्ठित आत्मा को?

दादाश्री : ऐसा है कि जब प्रतिष्ठित आत्मा शुभ और अशुभ भाव करें, उस समय वह 'प्रतिष्ठित आत्मा' नहीं माना जाता, उस घड़ी 'वह व्यवहार आत्मा' माना जाता है। प्रतिष्ठित आत्मा तो, जिसे स्वरूप ज्ञान मिला, उसके बाद जो बाकी रहा, वह प्रतिष्ठित आत्मा है। देह में 'मैं पन' करके जो प्रतिष्ठा की थी, उस प्रतिष्ठा का फल बाकी बचा है। स्वरूप ज्ञान से पहले प्रतिष्ठित आत्मा नहीं कहलाता, व्यवहार आत्मा कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : जब व्यवहार आत्मा शुभ-अशुभ भाव करता है, तब चैतन्य आत्मा को वळगण किस तरह लगती है?

दादाश्री : ये शुभ-अशुभ भाव होते हैं, उनमें व्यवहार आत्मा अकेला नहीं है, निश्चय आत्मा साथ में होता है, 'उसकी' मान्यता ही यह है कि यही मैं एक हूँ।

प्रश्नकर्ता : निश्चय-आत्मा का अर्थ क्या है?

दादाश्री : निश्चय-आत्मा अर्थात् शुद्धात्मा। ऐसा है कि, यह जो 'व्यवहार आत्मा' है, वह व्यवहार से कर्ता है और निश्चय से आत्मा अकर्ता है।

प्रश्नकर्ता : निश्चय आत्मा भाव का तो कर्ता है न?

दादाश्री : वह भाव का भी कर्ता नहीं है। भाव का भी कर्ता स्वरूप की अज्ञानता है!

प्रश्नकर्ता : भाव कब होते हैं?

दादाश्री : स्वरूप की अज्ञानता हो, तब भाव और अभाव होते हैं।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान हो, तब भाव होता हैं?

दादाश्री : ज्ञान हो तो भाव ही नहीं होते। जहाँ ज्ञान होता है, वहाँ स्वभाव भाव होता है और जहाँ ज्ञान नहीं है वहाँ पर भाव होते हैं। जहाँ मिथ्यात्व है, वहाँ पर भाव या अभाव है; जहाँ समकित है वहाँ वे नहीं होते हैं।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान हाज़िर होगा तभी भाव-अभाव होंगे न?

दादाश्री : हाँ, आत्मा होगा तभी भाव-अभाव होंगे, नहीं तो इस 'टेपरेकर्ड' में भाव-अभाव नहीं होंगे।

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा ने परलक्ष्य किया इसलिए भाव-अभाव हुए?

दादाश्री : शुद्धात्मा परलक्ष्य करता ही नहीं। 'शुद्धात्मा,' तो 'शुद्धात्मा' ही रहता है। निरंतर ज्ञान सहित, संपूर्ण ज्ञान सहित है। परलक्ष्य को भी वह खुद जानता है कि यह परलक्ष्य किसने किया!

प्रश्नकर्ता : परलक्ष्य करनेवाला कौन हैं?

दादाश्री : इतना ही 'ज्ञानीपुरुष' से समझ जाए तो इस संसार के सभी स्पष्टीकरण मिल जाएँगे। यहीं पर यह *गेड़* बैठ जानी चाहिए कि यह प्रेरणा देनेवाला कौन है?

प्रश्नकर्ता : भाव का उद्‌भव होना, उसे प्रेरणा कहते हैं?

दादाश्री : नहीं, वह आत्मा का गुण नहीं है। वह आपकी अज्ञानता से हुआ है।

प्रश्नकर्ता : अज्ञानता कब होती है? ज्ञान की हाजरी में ही न?

दादाश्री : हाँ, ज्ञान है तो अज्ञान है। जैसे कोई दारू पिया हुआ आदमी हो, वह चंदूलाल सेठ हो और बोले कि 'मैं सयाजीराव गायकवाड़ हूँ,' तभी से हम नहीं समझ जाएँ कि इसे दारू का अमल है? उसी प्रकार यह अज्ञान का अमल है।

प्रश्नकर्ता : अज्ञान ज्ञानमय हो जाए तो?

दादाश्री : तब उसे अज्ञान नहीं कह सकते। फिर तो ज्ञानमय परिणाम ही बरतते रहेंगे। और जब तक अज्ञान है, तब तक अज्ञानमय परिणाम ही बरतते रहेंगे। फिर तप करे, जप करे, शास्त्र पढ़े या चाहे कुछ भी क्रिया करे, लेकिन उससे कर्म ही बंधेंगे। लेकिन वे कर्म भौतिक सुख देनेवाले होते हैं।

प्रश्नकर्ता : आत्मा का इसमें दोष नहीं है, तो उसे बंधन क्यों होता है?

दादाश्री : खुद का दोष कब कहलाता है कि खुद संपूर्ण दोषित हो तभी दोष कहलाता है। नैमित्तिक दोष को दोष नहीं कहते। मेरे धक्के से ही आपको धक्का लगा और उससे उसे लगा, इसलिए वह व्यक्ति आपको गुनहगार मानता है। इसी प्रकार आत्मा खुद इस भाव का कर्ता नहीं है लेकिन इन नैमित्तिक धक्कों के कारण, 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स' के कारण होता है।

प्रश्नकर्ता : 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स' चेतन पर लागू होता है या अचेतन पर?

दादाश्री : मान्यता पर लागू होता है, प्रतिष्ठित आत्मा पर लागू होता है। प्रतिष्ठित आत्मा में भी बहुत शक्ति है। आप, चंदूलाल यहाँ पर बैठे-बैठे शारदाबहन के लिए थोड़ा-सा भी उल्टा विचार करो तो वे उन्हें घर पर पहुँच जाएँगे, ऐसा है!

प्रश्नकर्ता : आपके और हमारे प्रतिष्ठित आत्मा में क्या फर्क है?

दादाश्री : कोई फर्क नहीं है। आपमें अज्ञानता थी उसके कारण चंचलता रहती है। हम में नाम मात्र की भी चंचलता नहीं है।

'ज्ञानी' कौन? 'दादा भगवान' कौन?

प्रश्नकर्ता : 'दादा भगवान' का अर्थ क्या है? 'ए.एम.पटेल' का आत्मा, वही 'दादा भगवान' हैं?

दादाश्री : हाँ। दो प्रकार के आत्मा हैं, एक 'मिकेनिकल आत्मा' और एक 'दरअसल आत्मा'। 'मिकेनिकल आत्मा' चंचल होता है और 'दरअसल आत्मा', वह 'दादा भगवान' हैं।

यह सबकुछ जो बोलता करता है, खाता है, पीता है, व्यापार करता है, शास्त्र पढ़ता है, धर्मध्यान करता है, वह सब 'मिकेनिकल' है, वह 'दरअसल आत्मा' नहीं है। आपमें भी जो 'दरअसल आत्मा', वही 'दादा भगवान' हैं, वही 'परमात्मा' है।

जो यह सारा व्यवहार करता है, वह 'मिकेनिकल' आत्मा करता है। जप, तप, ध्यान, शास्त्रों का पठन, वह सबकुछ 'मिकेनिकल' आत्मा करता है। किसलिए? तो यह कि, 'अविचल आत्मा प्राप्त करने के लिए।' लेकिन मूल में भूल यह है कि 'मैं आत्मा हूँ' ऐसा जिसे मानता है, वह 'मिकेनिकल' आत्मा है। और उसे सुधारने जाता है। क्रोध-मान-माया-लोभ को दबाने के लिए, उनका छेदन करने के लिए उठा-पठक करके रख देता है। लेकिन ये गुण किसके हैं? आत्मा के हैं? इसकी पहचान नहीं होने से अनंत जन्मों से यह मार खाता रहा है। क्रोध-मान-माया-लोभ, वे आत्मा के व्यतिरेक गुण हैं, अन्वय गुण नहीं हैं। अन्वय गुण अर्थात् आत्मा के स्वाभाविक गुण, निरंतर साथ में रहनेवाले गुण। जब कि व्यतिरेक गुण अर्थात् सिर्फ आत्मा की हाज़िरी से ही *पुद्‌गल* में उत्पन्न होनेवाले गुण!

प्रश्नकर्ता : 'मिकेनिकल आत्मा' और 'शुद्धात्मा' में क्या फर्क है?

दादाश्री : 'मिकेनिकल आत्मा', वह आत्मा से प्रतिबिंब उत्पन्न हुआ है, उसी स्वरूप में दिखता है। उसमें 'दरअसल आत्मा' के गुणधर्म नहीं

होते, लेकिन वैसे ही लक्षण दिखते हैं। पूरा जगत् इसी में फँसा है। मिकेनिकल आत्मा में अचलता नहीं होती।

प्रश्नकर्ता : आपमें 'ज्ञानी' कौन है और 'दादा भगवान' कौन है, यह समझ में नहीं आता।

दादाश्री : ज्ञान के वाक्य जो बोलते हैं, उन्हें व्यवहार में 'ज्ञानी' कहते हैं। और अंदर प्रकट हुए हैं, उनके बिना तो ज्ञान वाक्य निकलेंगे ही नहीं। अंदर प्रकट हुए हैं, वे 'दादा भगवान' हैं। हमें भी वही पद प्राप्त करना है, इसलिए हम भी 'दादा भगवान' को नमस्कार करते हैं। किसी समय हम 'दादा भगवान' के साथ अभेद रहते हैं, तन्मय रहते हैं और वाणी बोलते समय अंदर 'भगवान' अलग और 'हम' अलग!

[१०]

जगसंचालक की हकीकत

जिसे भगवान मानते हैं....

कोई बाप भी आपका *ऊपरी* नहीं है। कोई *ऊपरी* ही नहीं है, कोई बोस नहीं। बगैर बात के डरता रहता है। अरे, भगवान भी तेरा *ऊपरी* नहीं है। तू खुद ही भगवान है, लेकिन उसका भान होना चाहिए। और जब तक ऐसा भान नहीं होता कि खुद भगवान है, तब तक भगवान को *ऊपरी* मानना चाहिए, तब तक भक्त रहना चाहिए और भान होने के बाद में भक्तपन छूट गया!

कोई बाप भी तेरा *ऊपरी* नहीं है, उसकी यह गारन्टी मैं देता हूँ। यह तो बगैर बात के डर घुस गया है कि 'ऐसा कर देंगे, वैसा कर देंगे।' इसलिए तेरे डरने का कोई कारण नहीं है, और तेरा 'व्यवस्थित' होगा तो तुझे कोई छोड़ेगा नहीं। यह 'इन्कमटैक्सवाले' की चिट्ठी आई कि सेठ डर जाता है। अरे, यह काग़ज़ तो तेरे 'व्यवस्थित' का एक एविडेन्स है। 'इन्कमटैक्सवाला' कोई सर्वेसर्वा नहीं है, इसलिए भगवान को *ऊपरी* बनाने की पीड़ा रहने दे न! इन भगवान को *ऊपरी* बनाने के बजाय तुम्हारी 'वाइफ' को *ऊपरी* बनाओ तो वह पकौड़े तो बनाकर देगी! अरे, तू खुद ही भगवान है। लेकिन यह जानता नहीं है। जब तक यह जान लेता नहीं, तब तक भगवान को *ऊपरी* की तरह रखता है लेकिन कौन-से भगवान? यदि तुझे भगवान को ही *ऊपरी* रखना हो तो कौन-से भगवान को रखेगा? ऊपरवाले को नहीं। ऊपर तो कोई बाप भी नहीं है, ऊपर तो सिर्फ आकाश है। भगवान तो जो अंदर बैठे हैं, वे हैं। वास्तविक 'थ्योरी' तो, जो अंदर बैठे हैं, वे ही भगवान हैं। उन्हीं का नाम 'शुद्धात्मा'। उन्हें कोई भी नाम

दो, लेकिन अंदर बैठे हुए की ही खोज करे तब काम होगा। भगवान ऊपर हैं, ऊपर हैं - ऐसे गप्प लगाए, चिट्ठियाँ लिखे, विनती करे, तो उससे कुछ होगा नहीं।

बाकी, लोग भगवान का अवलंबन लेते हैं, लेकिन वह किस आधार पर? भगवान को पहचाने बिना उनका सीधा अवलंबन किस तरह से लिया जा सकता है? भगवान की तो पहले पहचान होनी चाहिए। पूरा जगत् भगवान को जानता ही नहीं।

...वह तो 'मिकेनिकल एडजस्टमेन्ट'

इस जगत् को जो शक्ति चला रही है, उसे ही पूरा जगत् भगवान मानता है। वास्तव में जगत् को चलानेवाला भगवान नहीं है, वह तो एक 'मिकेनिकल एडजस्टमेन्ट' है, 'कॉम्प्यूटर' जैसा है। 'मशीनरी' वीतराग होती है या राग-द्वेषवाली होती है?

प्रश्नकर्ता : वीतराग होती है।

दादाश्री : तो यह जगत् चलानेवाली शक्ति वीतराग है। जो 'मिकेनिकल एडजस्टमेन्ट' है, उसे लोग ऐसा समझते हैं कि यही भगवान है। इस शक्ति में वीतरागता का गुण है, लेकिन वह शक्ति भगवान है ही नहीं, वह तो ओन्ली 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स' है। लेकिन लोगों को उसका भान नहीं है, अभानता से सब चल रहा है। और खुद के स्वरूप का जिसे भान हो गया, उसके बाद उसका 'एविडेन्स' बदलता है। वह छूट जाता है, मुक्त हो जाता है! 'मैं ही चंदूभाई हूँ' यह 'रोंग बिलीफ़' है।

'द वर्ल्ड इज़ द कम्प्लीट ड्रामा इटसेल्फ।' ड्रामा की व्यवस्था भी अपने आप ही इटसेल्फ हुई है, और वह भी फिर 'व्यवस्थित' के वश में है।

खंड : २

व्यवहार ज्ञान

[१]

जीवन जीने की कला!

ऐसी 'लाइफ' में क्या सार?

इस जीवन का हेतु क्या होगा, वह समझ में आता है? कोई हेतु तो होगा न? छोटे थे, फिर बूढ़े होते हैं और फिर अर्थी निकालते हैं। जब अर्थी निकालते हैं, तब दिया हुआ नाम ले लेते हैं। यहाँ आए कि तुरंत ही नाम दिया जाता है, व्यवहार चलाने के लिए! जैसे ड्रामे में भर्तृहरि नाम देते हैं न? 'ड्रामा' पूरा तब फिर नाम पूरा। इस प्रकार ये व्यवहार चलाने के लिए नाम देते हैं, और उस नाम पर बंगला, मोटर, पैसे रखते हैं और अर्थी निकालते हैं, तब वह सब ज़ब्त हो जाता है। लोग जीवन गुज़ारते हैं और फिर गुज़र जाते हैं। ये शब्द ही 'इटसेल्फ' कहते हैं कि ये सब अवस्थाएँ हैं। गुज़ारा का मतलब ही राहखर्च! अब इस जीवन का हेतु मौज-मज़े करना होगा या फिर परोपकार के लिए होगा? या फिर शादी करके घर चलाना, वह हेतु होगा? यह शादी तो अनिवार्य होती है। किसीको शादी अनिवार्य न हो तो शादी हो ही नहीं। परंतु बरबस शादी होती है न?! यह सब क्या नाम कमाने का हेतु है? पहले सीता और ऐसी सतियाँ हो गई हैं, जिनका नाम हो गया। परंतु नाम तो यहीं का यहीं रहनेवाला है। लेकिन साथ में क्या ले जाना है? आपकी गुत्थियाँ!

आपको मोक्ष में जाना हो तो जाना, और नहीं जाना हो तो मत जाना।

परंतु यहाँ आपकी गुत्थियों के सभी खुलासे कर जाओ। यहाँ तो हरएक प्रकार के खुलासे होते हैं। ये व्यवहारिक खुलासे होते हैं तो भी वकील पैसे लेते हैं! लेकिन यह तो अमूल्य खुलासा, उसका मूल्य ही नहीं है न। यह सब उलझा हुआ है! और वह आपको अकेले को ही है, ऐसा नहीं है, पूरे जगत् को है। 'द वर्ल्ड इज़ द पज़ल इटसेल्फ।' यह 'वर्ल्ड' इटसेल्फ पज़ल हो गया है।

धर्म वस्तु तो बाद में करना है, परंतु पहले जीवन जीने की कला जानो और शादी करने से पहले बाप होने का योग्यतापत्र प्राप्त करो। एक इंजन लाकर उसमें पेट्रोल डालें और उसे चलाते रहें, लेकिन वह मीनिंगलेस जीवन किस काम का? जीवन तो हेतु सहित होना चाहिए। यह तो इंजन चलता रहता है, चलता ही रहता है, वह निरर्थक नहीं होना चाहिए। उससे पट्टा जोड़ दें, तब फिर भी कुछ पीसा जाएगा। लेकिन यह तो सारी ज़िंदगी पूरी हो जाए, फिर भी कुछ भी पीसा नहीं जाता और ऊपर से अगले भव के गुनाह खड़े करता है।

यह तो लाइफ पूरी फ्रेक्चर हो गई है। किसलिए जी रहे हैं, उसका भान भी नहीं रहा कि यह मनुष्यसार निकालने के लिए मैं जी रहा हूँ! मनुष्यसार क्या है? तब कहे, जिस गति में जाना हो, वह गति मिले या फिर मोक्ष में जाना हो तो मोक्ष में जाया जा सके। ऐसे मनुष्यसार का किसीको भान ही नहीं है, इसलिए भटकते रहते हैं।

परंतु वह कला कौन सिखलाए?!

आज जगत् को हिताहित का भान ही नहीं है, संसार के हिताहित का कुछ लोगों को भान होता है, क्योंकि वह बुद्धि के आधार पर कितनों ने निश्चित किया होता है। लेकिन वह संसारी भान कहलाता है कि संसार में किस तरह मैं सुखी होऊँ? असल में तो यह भी करेक्ट नहीं है। करेक्टनेस तो कब कहलाती है कि जीवन जीने की कला सीखा हो तब। यह वकील हुआ, फिर भी कोई जीवन जीने की कला आई नहीं। तब डॉक्टर बना फिर भी वह कला नहीं आई। यह आप आर्टिस्ट की कला सीख लाए या दूसरी कोई भी कला सीख लाए, वह कोई जीवन जीने

की कला नहीं कहलाती। जीवन जीने की कला तो, कोई मनुष्य अच्छा जीवन जी रहा हो, उसे आप कहो कि आप यह किस तरह जीवन जीते हो, ऐसा कुछ मुझे सिखाओ। मैं किस तरह चलूँ, तो वह कला सीख सकता हूँ? उसके कलाधर चाहिए, उसका कलाधर होना चाहिए, उसका गुरु होना चाहिए। लेकिन इसकी तो किसीको पड़ी ही नहीं है न! जीवन जीने की कला की तो बात ही खत्म कर दी? हमारे पास रहे तो उसे यह कला मिल जाए। फिर भी, पूरे जगत् को यह कला नहीं आती ऐसा हमसे नहीं कहा जा सकता। परंतु यदि कम्पलीट जीवन जीने की कला सीखे हुए हों न तो लाइफ इज़ी रहे, परंतु धर्म तो साथ में चाहिए ही। जीवन जीने की कला में धर्म मुख्य वस्तु है। और धर्म में भी अन्य कुछ नहीं, मोक्षधर्म की भी बात नहीं, मात्र भगवान के आज्ञारूपी धर्म का पालन करना है। महावीर भगवान या कृष्ण भगवान या जिस किसी भगवान को आप मानते हों, उनकी आज्ञाएँ क्या कहना चाहती हैं, वे समझकर पालो। अब सभी नहीं पाली जा सकें तो जितनी पाली जा सकें, उतनी ठीक। अब आज्ञा में ऐसा हो कि 'ब्रह्मचर्य पालना' और आप शादी कर लो तो वह विरोधाभास हुआ कहलाएगा। असल में वे ऐसा नहीं कहते कि आप ऐसा विरोधाभासवाला करना। वे तो ऐसा कहते हैं कि 'हमारी जितनी आज्ञाएँ तुझ से एडजस्ट हो पाएँ, उतनी एडजस्ट कर।' आप से दो आज्ञाएँ एडजस्ट नहीं हुई तो क्या सभी आज्ञाएँ रख देनी चाहिए? आपसे नहीं हो पाता, इसीलिए क्या छोड़ देना चाहिए? आपको कैसा लगता है? दो नहीं हो सकें लेकिन दूसरी दो आज्ञाएँ पाल सकें, तो भी बहुत हो गया।

लोगों को व्यवहारधर्म भी इतना ऊँचा मिलना चाहिए कि जिससे लोगों को जीवन जीने की कला आए। जीवन जीने की कला आए, उसे ही व्यवहारधर्म कहा है। कोई तप, त्याग करने से वह कला नहीं आती। यह तो अजीर्ण हुआ हो, तो कुछ उपवास जैसा करना। जिसे जीवन जीने की कला आ गई उसे तो पूरा व्यवहारधर्म आ गया, और निश्चयधर्म तो डेवेलप होकर आए हों, तो प्राप्त होता है और इस अक्रम मार्ग में तो निश्चयधर्म ज्ञानी की कृपा से ही प्राप्त हो जाता है! 'ज्ञानीपुरुष' के पास तो अनंत ज्ञानकलाएँ होती हैं और अनंत प्रकार की बोधकलाएँ होती

हैं! वे कलाएँ इतनी सुंदर होती हैं कि सर्व प्रकार के दुःखों से मुक्त करती हैं।

समझ कैसी? कि दुःखमय जीवन जिया!!

'यह' ज्ञान ही ऐसा है कि जो सीधा कर दे, और जगत् के लोग तो ऐसे हैं कि आपने सीधा डाला हो, फिर भी उल्टा कर देते हैं। क्योंकि समझ उल्टी है। उल्टी समझ है, इसीलिए उल्टा करते हैं, नहीं तो इस हिंदुस्तान में किसी जगह पर दुःख नहीं हैं। ये जो दुःख हैं वे नासमझी के दुःख हैं और लोग सरकार को कोसते हैं, भगवान को कोसते हैं कि 'ये हमें दुःख देते हैं!' लोग तो बस कोसने का धंधा ही सीखे हैं।

अभी कोई नासमझी से, भूल से खटमल मारने की दवाई पी जाए तो क्या वह दवाई उसे छोड़ देगी?

प्रश्नकर्ता : नहीं छोड़ेगी।

दादाश्री : क्यों, भूल से पी ली थी न? जान-बूझकर नहीं पी, फिर भी वह नहीं छोड़ेगी?

प्रश्नकर्ता : नहीं। उसका असर नहीं छोड़ेगा।

दादाश्री : अब उसे कौन मारता है? वह खटमल मारने की दवाई उसे मारती है, भगवान नहीं मारते, यह दुःख देना या अन्य कोई चीज़, वह भगवान नहीं करते, *पुद्गल* (जो पूरण और गलन होता है) ही दुःख देता है। यह खटमल की दवाई भी *पुद्गल* ही है न? आपको इसका अनुभव होता है या नहीं होता? इस काल के जीव पूर्वविराधक वृत्तियोंवाले हैं, पूर्वविराधक कहलाते हैं। पहले के काल के लोग तो खाने-पीने का नहीं हो, कपड़े-लत्ते नहीं हों, फिर भी चला लेते थे, और अभी तो कोई भी कमी नहीं, फिर भी इतनी अधिक कलह ही कलह! उसमें भी पति को इन्कम टैक्स, सेल्स टैक्स के लफड़े होते हैं, इसीलिए वहाँ के साहब से वे डरते हैं और घर लेकिन बाईसाहब को पूछें कि आप क्यों डरती हो? तब वह कहती है कि मेरे पति सख्त हैं।

चार वस्तुएँ मिली हों और कलह करें, वे सब मूर्ख, फूलिश कहलाते हैं। टाइम पर खाना मिलता है या नहीं मिलता? फिर चाहे जैसा हो, घी वाला या बिना घी का, लेकिन मिलता है न? टाइम पर चाय मिलती है या नहीं मिलती? फिर दो टाइम हो या एक टाइम, लेकिन चाय मिलती है या नहीं मिलती? और कपड़े मिलते हैं या नहीं मिलते? कमीज़-पेन्ट, सर्दी में, ठंड में पहनने को कपड़े मिलते हैं या नहीं मिलते? पड़े रहने के लिए कोठड़ी है या नहीं? इतनी चार वस्तुएँ मिलने पर भी शोर मचाएँ, उन सभी को जेल में डाल देना चाहिए! फिर भी उसे शिकायत रहती हो तो उसे शादी कर लेनी चाहिए। शादी की शिकायत के लिए जेल में नहीं डालते। इन चार वस्तुओं के साथ इसकी ज़रूरत है। उमर हो जाए, उसे शादी के लिए मना नहीं कर सकते। लेकिन इसमें भी, कितने ही शादी होने के बाद उसे तोड़ डालते हैं, और फिर अकेले रहते हैं और दु:ख मोल लेते हैं। हो चुकी शादी को तोड़ डालते हैं, किस तरह की पब्लिक है यह?! ये चार-पाँच वस्तुएँ न हों तो हम समझें कि इसे ज़रा अड़चन पड़ रही है। वह भी दु:ख नहीं कहलाता, अड़चन कहलाती है। यह तो सारा दिन दु:ख में निकालता है, सारा दिन *तरंग* (शेखचिल्ली जैसी कल्पनाएँ) करता ही रहता है। तरह-तरह के तरंग करता रहता है!

एक व्यक्ति का मुँह ज़रा हिटलर जैसा था, उसका नाक उससे ज़रा मिलता-जुलता था। वह अपने आपको मन में खुद मान बैठा था कि मैं तो हिटलर जैसा हूँ! घनचक्कर! कहाँ हिटलर और कहाँ तू? क्या मान बैठा है? हिटलर तो यों ही आवाज़ दे, तो सारी दुनिया हिल उठे! अब इन लोगों के तरंगों का कहाँ पार आए?

इसलिए वस्तु की कोई ज़रूरत नहीं है, यह तो अज्ञानता का दु:ख है। हम 'स्वरूपज्ञान' देते हैं, फिर दु:ख नहीं रहते। हमारे पाँच वाक्यों में आप कहाँ नहीं रहते, उतना ही बस देखते रहना है! अपने टाइम पर खाना खाने का सब मिलता रहेगा। और वह फिर 'व्यवस्थित' है। यदि दाढ़ी अपने आप उगती है तो क्या तुझे खाने-पीने का नहीं मिलेगा? इस दाढ़ी की इच्छा नहीं है, फिर भी वह बढ़ती है न! अब आपको अधिक वस्तुओं की ज़रूरत नहीं है न? अधिक वस्तुओं की देखो न कितनी सारी परेशानी है! आपको

स्वरूपज्ञान मिलने से पहले तरंगें आती थीं न? तरंगो को आप पहचानते हो न?

प्रश्नकर्ता : जी हाँ, तरंगें आती थीं।

दादाश्री : भीतर तरह-तरह की तरंगें आया करती हैं, उन तरंगों को भगवान ने आकाशी फूल कहा है। आकाशी फूल कैसा था और कैसा नहीं था? उसके जैसी बात! सभी तरंग में और अनंग में, दो में ही पड़े हुए हैं। ऐसे, सीधी *धौल* (हथेली से मारना) नहीं मारते हैं। सीधी *धौल* मारें वह तो पद्धतिपूर्वक का कहलाता है। भीतर 'एक *धौल* लगा दूँगा' इस तरह अनंग *धौल* मारता रहता है। जगत् तरंगी भूतों में तड़पता रहता है। ऐसा होगा तो, ऐसा होगा और वैसा होगा।

ऐसे शौक की कहाँ ज़रूरत है?

जगत् पूरा 'अन्नेसेसरी' परिग्रह के सागर में डूब गया है। 'नेसेसरी' को भगवान परिग्रह नहीं कहते हैं। इसलिए हरएक को खुद की नेसेसिटी कितनी है, यह निश्चित कर लेना चाहिए। इस देह को मुख्य किसकी ज़रूरत है? मुख्य तो हवा की। वह उसे हर क्षण फ्री ऑफ कॉस्ट मिलती ही रहती है। दूसरा, पानी की ज़रूरत है। वह भी उसे फ्री ऑफ कॉस्ट मिलता ही रहता है। फिर ज़रूरत खाने की है। भूख लगी यानी क्या कि फायर हुई, इसीलिए उसे बुझाओ। इस फायर को बुझाने के लिए क्या चाहिए? तब ये लोग कहते हैं कि 'श्रीखंड, बासुंदी!' अरे नहीं, जो हो वह डाल दे न अंदर। खिचड़ी-कढ़ी डाली हो तब भी वह बुझ जाती है। फिर सेकन्डरी स्टेज की ज़रूरत में पहनने का, पड़े रहने का वह है। जीने के लिए क्या मान की ज़रूरत है? यह तो मान को ढूँढता है और मूर्छित होकर फिरता है। यह सब 'ज्ञानीपुरुष' के पास से जान लेना चाहिए न?

एक दिन यदि नल में चीनी डाला हुआ पानी आए तो लोग ऊब जाएँ। अरे! ऊब गए? तो कहे, 'हाँ, हमें तो सादा पानी ही चाहिए।' ऐसा यदि हो न तो उसे सच्चे की क़ीमत समझ में आए। ये लोग तो फेन्टा और कोकाकोला खोजते हैं। अरे, तुझे किसकी ज़रूरत है वह जान ले

न! शुद्ध हवा, शुद्ध पानी और रात को खिचड़ी मिल गई तो यह देह शोर मचाता है? नहीं मचाता। इसलिए ज़रूरतें क्या है, इतना निश्चित कर लो। जब कि ये लोग खास प्रकार की आइस्क्रीम ढूँढेंगे। कबीर साहब क्या कहते हैं?

'तेरा बैरी कोई नहीं, तेरा बैरी फ़ेल।'

अन्नेसेसरी के लिए बेकार ही भागदौड़ करता है, वही 'फ़ेल' कहलाता है। तू हिन्दुस्तान में रहता है और नहाने के लिए पानी माँगे तो हम तुझे फ़ेल नहीं कहेंगे?

'अपने फ़ेल मिटा दे, फिर गली-गली में फिर।'

इस देह की ज़रूरतें कितनी? शुद्ध घी, दूध चाहिए। जबकि वे शुद्ध नहीं देते और पेट में कचरा डालते हैं। वे फ़ेल किस काम के? ये सिर में क्या डालते हैं? शेम्पू, साबुन जैसा नहीं दिखता और पानी जैसा दिखता है, ऐसा सिर में डालेंगे। इन अक्ल के खज़ानो ने ऐसी खोज की कि जो फ़ेल नहीं थे वे भी फ़ेल हो गए! इससे अंतरसुख घट गया! भगवान ने क्या कहा था कि बाह्यसुख और अंतरसुख के बीच में पाँच-दस प्रतिशत फर्क होगा तो चलेगा, लेकिन यह नब्बे प्रतिशत का फर्क हो तब तो नहीं चलेगा। इतना बड़ा होने के बाद फिर वह फ़ेल होता है, मरना पड़ेगा। लेकिन ऐसे नहीं मरा जाता और सहन करना पड़ता है। ये तो केवल फ़ेल ही हैं, अन्नेसेसरी ज़रूरतें खड़ी करी हैं।

एक घंटा बज़ार बंद हो जाए तो लोगों को चिंता हो जाती है! अरे, तुझे क्या चाहिए कि तुझे चिंता होती है? तो कहे कि, मुझे ज़रा आइस्क्रीम चाहिए, सिगरेट चाहिए। यह तो फ़ेल ही बढ़ाया न? यह अंदर सुख नहीं है, इसीलिए लोग बाहर ढूंढते रहते हैं। भीतर अंतरसुख की जो सिलक थी, वह भी आज चली गई है। अंतरसुख का बैलेन्स मत तोड़ना। यह तो जैसे अच्छा लगे वैसे *सिलक* (राहखर्च, पूँजी) खर्च कर डाली। तो फिर अंतरसुख का बैलेन्स ही किस तरह रहे? नकल करके जीना अच्छा या असल? ये बच्चे एक-दूसरे की नकल करते हैं। हमें नकल कैसी? ये फॉरिन के लोग अपनी नकल कर जाते हैं। लेकिन ये तो फॉरिन के

थोड़े हिप्पी यहाँ आए और यहाँ के लोगों ने उनकी नकल कर डाली। इसे जीवन कहा ही कैसे जाए?

लोग 'गुड़ मिलता नहीं, चीनी मिलती नहीं' ऐसे शोर मचाते रहते हैं। खाने की चीज़ों के लिए क्या शोर मचाना चाहिए? खाने की चीज़ों को तो तुच्छ माना गया है। खाने का तो, पेट है तो मिल ही जाता है। दाँत है उतने कौर मिल ही जाते हैं। दाँत भी कैसे हैं! चीरने के, फाड़ने के, चबाने के, अलग-अलग। ये आँखें कितनी अच्छी हैं? करोड़ रुपये दें तब भी ऐसी आँखें मिलेंगी? नहीं मिलेंगी। अरे, लाख रुपये हों तब भी अभागा कहेगा, 'मैं दुःखी हूँ'। अपने पास इतनी सारी क़ीमती वस्तुएँ हैं, उनकी क़ीमत समझता नहीं है। अगर सिर्फ आँख की ही क़ीमत समझे, तब भी सुख लगे।

ये दाँत भी अंत में तो दिवालिया निकालनेवाले हैं, लेकिन आजकल बनावटी दाँत डालकर उन्हें पहले जैसे बना देते हैं। लेकिन वह भूत जैसा लगता है। कुदरत को नये दाँत देने होते तो वह नहीं देती? छोटे बच्चे को नये दाँत देती है न?

इस देह को गेहूँ खिलाए, दाल खिलाई, फिर भी अंत में अर्थी! सबकी अर्थी! अंत में तो यह अर्थी ही निकलनेवाली है। अर्थी यानी कुदरत की ज़ब्ती। सब यहीं रखकर जाना है और साथ में क्या ले जाना है? घरवालों के साथ की, ग्राहकों के साथ की, व्यापारियों के साथ की गुत्थियाँ! भगवान ने कहा है कि 'हे जीवों! समझो, समझो, समझो। मनुष्यपन फिर से मिलना महादुर्लभ है।'

जीवन जीने की कला इस काल में है ही नहीं। मोक्ष का मार्ग तो जाने दो, लेकिन जीवन जीना तो आना चाहिए न?

किसमें हित? निश्चित करना पड़ेग!

हमारे पास व्यवहार जागृति तो निरंतर होती है! कोई घड़ी की कंपनी मेरे पास से पैसे नहीं ले गई है। किसी रेडियोवाले की कंपनी मेरे पास से पैसे नहीं ले गई है। हमने तो खरीदा ही नहीं। इन सबका अर्थ ही क्या

है? मीनिंगलेस है। जिस घड़ी ने मुझे परेशान किया, जिसे देखते ही अंदर अत्यंत दु:ख लगे, वह किस काम का? काफी कुछ लोगों को बाप को देखने से अंदर द्वेष और चिढ़ होती है। खुद पढ़ता नहीं हो, किताब एक तरफ रखकर खेल में पड़ा हो, और अचानक बाप को देखे तो उसे द्वेष और चिढ़ होती है, वैसे ही इस घड़ी को देखते ही चिढ़ होती है तो फिर रखो घड़ी को एक तरफ। और यह दूसरा सब, रेडियो, टी.वी. तो प्रत्यक्ष पागलपन है, प्रत्यक्ष 'मेडनेस' है।

प्रश्नकर्ता : रेडियो तो घर-घर में हैं।

दादाश्री : वह बात अलग है। जहाँ ज्ञान ही नहीं, वहाँ पर क्या हो? उसे ही मोह कहते हैं न? मोह किसे कहते हैं? बिना ज़रूरत की चीज़ को लाना और ज़रूरत की चीज़ में कमी करना, उसीको मोह कहते हैं।

यह किसके जैसा है, वह कहूँ? कोई प्याज़ को चीनी की चाशनी में डालकर दे तो ले आए, उसके जैसा है। अरे, तुझे प्याज़ खानी है या चाशनी खानी है, वह पहले पक्का तो कर। प्याज़ वह प्याज़ होनी चाहिए। नहीं तो प्याज़ खाने का अर्थ ही क्या है? यह तो सारा पागलपन है। खुद का कोई डिसीज़न नहीं, खुद की सूझ नहीं और कुछ भान ही नहीं है! किसीको प्याज़ को चीनी की चाशनी में खाते हुए देखे तो खुद भी खाता है! प्याज़ ऐसी वस्तु है कि चीनी की चाशनी में डाला कि वह यूज़लेस हो जाता है। यानी किसीको भान नहीं है, बिल्कुल बेभानपना है। खुद अपने आप को मन में मानता है कि मैं कुछ हूँ और उसे ना भी कैसे कहा जाए हमसे? ये आदिवासी भी मन में समझते हैं कि मैं कुछ हूँ। क्योंकि उसे ऐसा लगता है कि इन दो गायों और इन दो बैलों का मैं *ऊपरी (*बॉस, वरिष्ठ मालिक*)* हूँ! और उन चार जनों का वह *ऊपरी* ही माना जाएगा न? जब उन्हें मारना हो, तब वह मार सकता है, उसका अधिकार है उसे। और किसी का *ऊपरी* न हो तो अंत में पत्नी का तो *ऊपरी* होगा ही। इसे कैसे पहुँच सकेंगे? जहाँ विवेक नहीं, सार-असार का भान नहीं, वहाँ क्या हो? मोक्ष की बात तो जाने दो, लेकिन सांसारिक हिताहित का भी भान नहीं है।

संसार क्या कहता है कि यदि रेशमी चादर मुफ्त में मिल रही हो तब भी उसे लाकर मत बिछाओ और कॉटन मोल मिल रही हो तब भी लाओ। अब आप पूछोगे कि इसमें क्या फायदा! तो कहे, यह मुफ्त लाने की आदत पड़ने के बाद यदि कभी नहीं मिलेगा तो मुश्किल में पड़ जाओगे। इसलिए ऐसी आदत रखना कि हमेशा मिलता रहे। इसलिए कॉटन की खरीदकर लाना। नहीं तो आदत पड़ने के बाद मुश्किल लगेगा। यह जगत् ही सारा ऐसा हो गया है, उपयोग नाम को भी नहीं मिलता। बड़े-बड़े आचार्य महाराजों को कहें कि साहब आज इन चार गद्दों पर सो जाइए। तो उन्हें *महाउपाधि* (बाहर से आनेवाले दु:ख) लगेगी, नींद ही नहीं आएगी सारी रात! क्योंकि दरी पर सोने की आदत पड़ी हुई है न! इन्हें दरी की आदत हो गई है और ये चार गद्दो की आदतवाले हैं। भगवान को तो दोनों ही कबूल नहीं हैं। साधु के तप को या गृहस्थी के विलास को भगवान कबूल नहीं करते। वे तो कहते हैं कि यदि आपका उपयोगपूर्वक होगा तो वह सच्चा। उपयोग नहीं और ऐसे ही आदत पड़ जाए तो सब मीनिंगलेस कहलाता है।

बातें ही समझनी हैं कि इस रास्ते पर ऐसा है और इस रास्ते पर ऐसा है। फिर निश्चित करना है कि कौन-से रास्ते जाना चाहिए! नहीं समझ में आए तो 'दादा' से पूछना। तब दादा आपको बताएँगे कि ये तीन रास्ते जोखिमवाले हैं और यह रास्ता बिना जोखिम का है, उस रास्ते पर हमारे आशीर्वाद लेकर चलना।

और ऐसी *गोठवणी* से सुख आता है

एक व्यक्ति मुझे कहता है कि, 'मुझे कुछ समझ नहीं पड़ती है। मुझे कुछ आशीर्वाद दीजिए।' उसके सिर पर हाथ रखकर मैंने कहा, 'जा, आज से सुख की दुकान खोल। अभी तेरे पास जो है वह दुकान खाली कर डाल।' सुख की दुकान मतलब क्या? सुबह से उठे तब से दूसरे को सुख देना, दूसरा व्यापार नहीं करना। अब उस मनुष्य को तो यह बहुत अच्छी तरह से समझ में आ गया। उसने तो बस यह शुरू कर दिया, इसलिए वह तो खूब आनंद में आ गया! सुख की दुकान खोलेगा न, तब फिर तेरे भाग में सुख ही रहेगा और लोगों के भाग में भी सुख ही जाएगा।

यदि हमारी हलवाई की दुकान हो तो फिर किसी के वहाँ जलेबी मोल लेने जाना पड़ेगा? जब खानी हो तब खा सकते हैं। दुकान ही हलवाई की हो वहाँ फिर क्या? इसलिए तू सुख की ही दुकान खोलना। फिर कोई परेशानी ही नहीं।

आपको जिसकी दुकान खोलनी हो उसकी खोली जा सकती है। यदि हररोज़ न खोली जा सके तो सप्ताह में एक दिन रविवार के दिन तो खोलो! आज रविवार है, 'दादा' ने कहा है कि सुख की दुकान खोलनी है। आपको सुख के ग्राहक मिल जाएँगे। 'व्यवस्थित' का नियम ही ऐसा है कि ग्राहक मिलवा देता है। व्यवस्थित का नियम यह है कि तूने जो निश्चित किया हो, उस अनुसार तुझे ग्राहक भिजवा देता है।

जिसे जो अच्छा लगता हो, उसे उसकी दुकान खोलनी चाहिए। कितने तो उकसाते ही रहते हैं। उसमें से उन्हें क्या मिलता है? किसीको हलवाई का शौक हो तो वह किसकी दुकान खोलेगा? हलवाई की ही न। लोगों को किसका शौक है? सुख का। तो सुख की ही दुकान खोल, ताकि लोग सुख पाएँ और खुद के घरवाले भी सुख भोगें। खाओ, पीओ और मज़े करो। आनेवाले दुःख के फोटो मत उतारो। सिर्फ नाम सुना कि मगनभाई आनेवाले हैं, अभी तक आए नहीं हैं, सिर्फ पत्र ही आया है, तब से ही उसके फोटो खींचने शुरू कर देते हैं।

ये 'दादा' तो 'ज्ञानीपुरुष', उनकी दुकान कैसी चलती है? पूरा दिन! यह दादा की सुख की दुकान, उसमें किसी ने पत्थर डाला हो, फिर भी उसे गुलाबजामुन खिलाते हैं। सामनेवाले को थोड़े ही पता है कि यह सुख की दुकान है, इसलिए यहाँ पत्थर नहीं मारा जाए? वह तो, निशाना लगाए बिना जहाँ मन में आया वहाँ मारता है।

'हमें किसीको दुःख नहीं देना है', ऐसा निश्चित किया फिर भी देनेवाला तो दे ही जाएगा न? तब क्या करेगा तू? देख मैं तुझे एक रास्ता बताऊँ। तुझे सप्ताह में एक दिन 'पोस्ट ऑफिस' बंद रखना है। उस दिन किसी का मनीऑर्डर स्वीकारना नहीं है और किसीको मनीऑर्डर करना भी नहीं है। और यदि कोई भेजे तो उसे एक तरफ रख देना और कहना

कि आज पोस्ट ऑफिस बंद है, कल बात करेंगे। हमारा तो पोस्ट ऑफिस हमेशा बंद ही होता है।

ये दिपावली के दिन सब किसलिए समझदार हो जाते हैं? उनकी 'बिलीफ़' बदल जाती है, इसलिए। आज दिवाली का दिन है, आनंद में जाने देना है ऐसा निश्चित करते हैं, इसलिए उनकी बिलीफ़ बदल जाती है, इसलिए आनंद में रहते हैं। 'हम' मालिक हैं, इसलिए *गोठवणी* (सेटिंग) कर सकते हैं। तूने निश्चित किया हो कि आज मुझे हल्कापन नहीं करना है। तो तुझसे हल्कापन नहीं होगा। इस हफ्ते में एक दिन हमें नियम में रहना है, एक दिन पोस्ट ऑफिस बंद करके बैठना है। फिर चाहे लोग चिल्लाएँ कि आज पोस्ट ऑफिस बंद है?

बैर खपे और आनंद भी रहे

इस जगत् में किसी भी जीव को किंचित् मात्र दुःख नहीं देने की भावना हो, तभी कमाई कहलाती है। ऐसी भावना रोज़ सुबह करनी चाहिए। कोई गाली दे, वह आपको पसंद नहीं हो तो भी उसे जमा ही करना चाहिए, पता नहीं लगाना है कि 'मैंने उसे कब दी थी।' आपको तो तुरंत ही जमा कर लेनी चाहिए कि हिसाब पूरा हो गया। और यदि चार वापस दे दीं तो बहीखाता चलता ही रहेगा, उसे ऋणानुबंध कहते हैं। बही बंद की यानी खाता बंद। ये लोग तो क्या करते हैं कि उसने एक गाली दी हो तो यह ऊपर से चार देता है! भगवान ने क्या कहा है कि जो रकम तुझे अच्छी लगती हो, वह उधार दे और अच्छी नहीं लगती हो, तो उधार मत देना। कोई व्यक्ति कहे कि आप बहुत अच्छे हो तो कहना कि, 'भाई आप भी बहुत अच्छे हो।' ऐसी अच्छी लगनेवाली बातें उधार दो तो चलेगा।

यह संसार, पूरा हिसाब चुकाने का कारखाना है। बैर तो सास बनकर, बहू बनकर, बेटा बनकर, अंत में बैल बनकर भी चुकाना पड़ता है। बैल लेने के बाद, रुपये बारह सौ चुकाने के बाद, फिर दूसरे दिन वह मर जाता है! ऐसा है यह जगत्!! अनंत जन्म बैर में ही गए हैं! यह जगत् बैर से खड़ा है! ये हिन्दू तो घर में बैर बाँधते हैं और इन मुस्लिमों को तो देखो वे घर में बैर नहीं बाँधते हैं, बाहर झगड़ा कर आते हैं। वे जानते हैं कि

'हमें तो इसी के इसी कमरे में और इसी के साथ ही रात को पड़े रहना है, वहाँ झगड़ा करना कैसे पुसाए?' जीवन जीने की कला क्या है कि संसार में बैर न बंधे और छूट जाएँ। तो ये साधु-संन्यासी भी भाग जाते हैं न? भागना नहीं चाहिए। यह तो जीवन संग्राम है, जन्म से ही संग्राम शुरू! वहाँ लोग मौज-मज़े में पड़ गए हैं!

घर के सभी लोगों के साथ, आसपास, ऑफिस में सब लोगों के साथ समभाव से *निकाल* करना। नहीं भाए, घर में ऐसा भोजन थाली में आए, वहाँ समभाव से *निकाल* करना। किसीको परेशान मत करना, जो थाली में आए, वह खाना। जो सामने आया वह संयोग है और भगवान ने कहा है कि संयोग को धक्का मारेगा तो वह धक्का तुझे लगेगा! इसलिए नहीं भाए, ऐसी चीज़ परोसी हो, फिर भी हम उसमें से दो चीज़ें खा लेते हैं। नहीं खाएँ, तो दो लोगों के साथ झगड़े होंगे। एक तो जो लाया, जिसने बनाया, उसके साथ झंझट होगी, उसे तिरस्कार लगेगा, और दूसरी तरफ खाने की चीज़ के साथ। खाने की चीज़ कहती है कि 'मैंने क्या गुनाह किया? मैं तेरे पास आई हूँ, और तू मेरा अपमान किसलिए करता है? तुझे ठीक लगे उतना ले, लेकिन अपमान मत करना मेरा।' अब क्या उसे हमें मान नहीं देना चाहिए? हमें तो कोई दे जाए, तब भी हम उसे मान देते हैं। क्योंकि एक तो मिलता नहीं है और मिल जाए तो मान देना पड़ता है। यह खाने की चीज़ दी और उसकी आपने कमी निकाली तो इससे सुख घटेगा या बढ़ेगा?

प्रश्नकर्ता : घटेगा।

दादाश्री : जिसमें घटे वह व्यापार तो नहीं करोगे न? जिससे सुख घटे ऐसा व्यापार ही नहीं करना चाहिए न? मुझे तो बहुत बार नहीं भाती हो ऐसी सब्ज़ी हो, वह खा लेता हूँ और ऊपर से कहता हूँ कि आज की सब्ज़ी बहुत अच्छी है।

प्रश्नकर्ता : वह द्रोह नहीं कहलाता? न भाता हो और हम कहें कि भाता है, तो वह गलत तरह से मन को मनाना नहीं हुआ?

दादाश्री : गलत तरह से मन को मनाना नहीं है। एक तो 'भाता है' ऐसा कहें तो अपने गले उतरेगा। 'नहीं भाता' कहा तो फिर सब्ज़ी को गुस्सा चढ़ेगा। बनानेवाले को गुस्सा चढ़ेगा। और घर के बच्चे क्या समझेंगे कि ये दख़लवाले व्यक्ति हमेशा ऐसा ही किया करते हैं? घर के बच्चे अपनी आबरू (?) देख लेते हैं।

हमारे घर में भी कोई नहीं जानता कि 'दादा' को यह नहीं भाता या भाता है। यह भोजन बनाना क्या बनानेवाले के हाथ का खेल है? वह तो खानेवाले के व्यवस्थित के हिसाब से थाली में आता है, उसमें दख़ल नहीं करनी चाहिए।

साहिबी, फिर भी भोगते नहीं

जब होटल में खाते हैं तो बाद में पेट में मरोड़ उठते हैं। होटल में खाने के बाद धीरे-धीरे ऐसे सिमट जाता है और एक तरफ पड़ा रहता है। फिर वह जब परिपाक होता है, तब मरोड़ उठते हैं। ऐंठन होती है, वह कितने ही वर्षों के बाद परिपाक होता है। हमें तो जब से यह अनुभव हुआ, उसके बाद से सबसे कहते कि होटल का नहीं खाना चाहिए। हम एक बार मिठाई की दुकान पर खाने गए थे। वह मिठाई बना रहा था उसमें पसीना टपक रहा था, कचरा गिर रहा था! आजकल तो घर पर भी जो भोजन बनाते हैं, वह कहाँ चोखा होता है? आटा गुँधते हैं, तब हाथ नहीं धोए होते, नाखून में मैल भरा होता है। आजकल नाखून काटते नहीं न? यहाँ कितने ही आते हैं, उनके नाखून लंबे होते हैं, तब मुझे उन्हें कहना पड़ता है, 'बहन, इससे आपको लाभ है क्या? लाभ हो तो नाखून रहने देना। तुझे कोई ड्रॉइंग का काम करना हो तो रहने देना।' तब वह कहती है कि 'नहीं, कल काटकर आऊँगी।' इन लोगों को कोई सेन्स ही नहीं है! नाखून बढ़ाते हैं और कान के पास रेडियो लेकर फिरते हैं! खुद का सुख किसमें है वह भान ही नहीं है, और खुद का भी भान कहाँ है? वह तो लोगों ने जो भान दिया, वही भान है।

बाहर भोगने के लिए कितने सारे ऐशो-आराम हैं! ये लाख रुपये की डबलडेकर बस में आठ आने दें तो यहाँ से ठेठ चर्चगेट तक बैठकर

जाने को मिलता है! उसमें भी फिर गद्दी कितनी अच्छी! अरे! खुद के घर पर भी ऐसी नहीं होती! अब इतने अच्छे पुण्य मिले हैं फिर भी भोगना नहीं आता, नहीं तो हिन्दुस्तान के मनुष्य के भाग्य में लाख रुपये की बस कहाँ से हो? यह मोटर में जाते हो तो कहीं धूल उड़ती है? ना। वह तो रास्ते बगैर धूल के हैं। चलो तो पैरों पर भी धूल नहीं चढ़ती। बादशाह के लिए भी उसके समय में रास्ते धूलवाले थे, वह बाहर जाकर आता तो धूल से भर जाता था! और इस की तो बादशाह से भी ज़्यादा साहिबी है, परंतु भोगना ही नहीं आता न? यह बस में बैठा हो तब भी अंदर चक्कर चलता रहता है!

संसार सहज ही चले, वहाँ...

कुछ दुःख जैसा है ही नहीं और जो है वे नासमझी के दुःख हैं। इस दुनिया में कितने सारे जीव हैं। असंख्य जीव हैं! परंतु किसी की पुकार नहीं है कि हमारे यहाँ अकाल पड़ा है! और ये मूर्ख हर साल शोर मचाया करते हैं! इस समुद्र में कोई जीव भूखा मर गया हो, ऐसा है? ये कौए वगैरह भूखे मर जाएँ, क्या ऐसा है? ना, वे भूख से नहीं मरनेवाले, वह तो कहीं टकरा गए हों, एक्सिडेन्ट हो गया हो, या फिर आयुष्य पूरा हो गया हो, तब मरते हैं। कोई कौआ आपको दुःखी दिखा है? कोई सूखकर दुबला हो गया हो, ऐसा कौआ देखा है आपने? इन कुत्तों को कभी नींद की गोलियाँ खानी पड़ती हैं? वे तो कितने आराम से सो जाते हैं। ये अभागे ही सोने के लिए बीस-बीस गोलियाँ खाते हैं! नींद तो कुदरत की भेंट है, नींद में तो सचमुच का आनंद होता है! और ये डॉक्टर तो बेहोश होने की दवाईयाँ देते हैं। गोलियाँ खाकर बेहोश होना, वह तो शराब पीते हैं, उसके जैसा है। कोई ब्लडप्रेशरवाला कौआ देखा है आपने! यह मनुष्य नाम का जीव अकेला ही दुःखी है। इस मनुष्य अकेले को ही कॉलेज की ज़रूरत है।

ये चिड़ियाँ सुंदर घोंसला बनाती हैं, तो उन्हें कौन सिखाने गया था? ये संसार चलाना तो अपने आप ही आ जाए, ऐसा है। हाँ, 'स्वरूपज्ञान' प्राप्त करने के लिए पुरुषार्थ करने की ज़रूरत है। संसार को चलाने के लिए कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं है। ये मनुष्य अकेले ही ज़रूरत से

ज़्यादा अक्लवाले हैं। इन पशु-पक्षियों के क्या बीवी-बच्चे नहीं हैं? उन्हें शादी करवानी पड़ती है? यह तो, मनुष्यों के ही पत्नी-बच्चे हुए हैं। मनुष्य ही शादी करवाने में पड़े हुए हैं। पैसे इकट्ठे करने में पड़े हुए हैं। अरे, आत्मा जानने के पीछे मेहनत कर न! दूसरे किसी के लिए मेहनत-मज़दूरी करने जैसी है ही नहीं। अभी तक जो कुछ किया है, वह दुःख मनाने जैसा किया है। इन बच्चों को चोरी करना कौन सिखाता है? सब बीज में ही मौजूद है। यह नीम हरएक पत्ते में कड़वा क्यों है? उसके बीज में ही कड़वाहट मौजूद है। ये मनुष्य अकेले ही दुःखी-दुःखी हैं, परंतु उसमें उनका कोई दोष नहीं। क्योंकि चौथे आरे तक सुख था, और यह तो पाँचवाँ आरा, इस *आरे* (कालचक्र का बारहवाँ हिस्सा) का नाम ही दूषमकाल! इसलिए महादुःख उठाकर भी समता उत्पन्न नहीं होती है। काल का नाम ही दूषम!! फिर सुषम ढूंढना वह भूल है न?

[२]

योग-उपयोग परोपकाराय

जीवन में, महत् कार्य ही ये दो!

मनुष्य का जन्म किसलिए है? खुद का यह बंधन, हमेशा का बंधन टूटे इस हेतु के लिए है, 'एब्सोल्यूट' होने के लिए है और यदि यह 'एब्सोल्यूट' होने का ज्ञान प्राप्त नहीं हो पाए, तो तू दूसरों के लिए जीना। ये दो ही कार्य करने के लिए हिन्दुस्तान में जन्म है। ये दो कार्य लोग करते होंगे? लोगों ने तो मिलावट करके मनुष्य में से जानवर में जाने की कला खोज निकाली है।

परोपकार से पुण्य साथ में

जब तक मोक्ष नहीं मिले, तब तक सिर्फ पुण्य ही मित्र समान काम करता है और पाप-दुश्मन के समान काम करता है। अब आपको दुश्मन रखना है या मित्र रखना है? वह आपको जो अच्छा लगे, उसके अनुसार निश्चित करना है। और मित्र का संयोग कैसे हो, वह पूछ लेना और दुश्मन का संयोग कैसे जाए, वह भी पूछ लेना। यदि दुश्मन पसंद हो उसका संयोग कैसे हो वह पूछे, तो हम उसे कहेंगे कि जितना चाहे उतना उधार करके घी पीना, चाहे जहाँ भटकना, और जैसे तुझे ठीक लगे वैसे मज़े करना, फिर आगे जो होगा देखा जाएगा! और पुण्यरूपी मित्र चाहिए तो हम बता दें कि भाई इस पेड़ के पास से सीख ले। कोई वृक्ष क्या अपना फल खुद खा जाता है? कोई गुलाब अपना फूल खा जाता होगा? थोड़ा-सा तो खाता होगा, नहीं? जब हम नहीं हों, तब रात को खा जाता होगा, नहीं? नहीं खाता?

प्रश्नकर्ता : नहीं खाता।

दादाश्री : ये पेड़-पौधे तो मनुष्यों को फल देने के लिए मनुष्यों की सेवा में हैं। अब पेड़ों को क्या मिलता है? उनकी ऊर्ध्वगति होती है और मनुष्य आगे बढ़ते हैं, उनकी हेल्प लेकर! ऐसा मानो न कि, आपने आम खाया, उससे आम के पेड़ का क्या गया? और आपको क्या मिला? आपने आम खाया, इसलिए आपको आनंद हुआ। उससे आपकी वृत्तियाँ जो बदलीं, उससे आप सौ रुपये जितना अध्यात्म में कमाते हो। अब आम खाया, इसलिए उसमें से पाँच प्रतिशत आम के पेड़ को आपके हिस्से में से जाता है और पँचानवे प्रतिशत आपके हिस्से में रहता है। यानी वे पेड़ आपके हिस्से में से पाँच प्रतिशत ले लेते हैं और वे बेचारे ऊर्ध्वगति में जाते हैं और आपकी अधोगति नहीं होती, आप भी आगे बढ़ते हो। इसलिए ये पेड़ कहते हैं कि 'हमारा सबकुछ भोगो, हरएक प्रकार के फल-फूल भोगो।'

इसलिए, यह संसार यदि आपको पुसाता हो, संसार आपको पसंद हो, संसार की चीज़ों की इच्छा हो, संसार के विषयों की वांछना हो तो इतना करो, 'योग-उपयोग परोपकाराय।' योग यानी इस मन-वचन-काया का योग, और उपयोग यानी बुद्धि का उपयोग, मन का उपयोग करना, चित्त का उपयोग करना, इन सभी का दूसरों के लिए उपयोग करना और अगर दूसरों के लिए नहीं खर्च करते, फिर भी लोग आख़िर में घरवालों के लिए भी खर्च तो करते हैं न? इस कुतिया को खाने का क्यों मिलता है? जिन बच्चों के भीतर भगवान रहते हैं, उन बच्चों की वह सेवा करती है। इसलिए उसे सब मिल जाता है। इस आधार पर सारा संसार चल रहा है। इस पेड़ को खुराक कहाँ से मिलती है? इन पेड़ों ने कोई पुरुषार्थ किया है? वे तो ज़रा भी 'इमोशनल' नहीं हैं। वे कभी 'इमोशनल' होते हैं? वे तो कभी आगे-पीछे होते ही नहीं। उन्हें कभी ऐसा होता नहीं कि यहाँ से एक मील दूर विश्वामित्री नदी है, तो वहाँ जाकर पानी पी आऊँ!

परोपकार, परिणाम में लाभ ही

प्रश्नकर्ता : इस संसार में अच्छे कृत्य कौन-से कहलाते हैं? उसकी परिभाषा दी जा सकती है?

दादाश्री : हाँ, अच्छे कृत्य तो ये सभी पेड़ भी करते हैं। और वे बिल्कुल अच्छे कृत्य ही करते हैं। लेकिन वे खुद कर्ता भाव में नहीं हैं। ये पेड़ जीवित हैं। सभी दूसरों के लिए अपने फल देते हैं। आप अपने फल दूसरों को दे दो। आपको अपने फल मिलते रहेंगे। आपके जो फल उत्पन्न हों-दैहिक फल, मानसिक फल, वाचिक फल, 'फ्री ऑफ कॉस्ट' लोगों को देते रहो तो आपको आपकी हरएक वस्तु मिल जाएगी। आपके जीवन की ज़रूरतों में किंचित् मात्र अड़चन नहीं आएगी और जब वे फल आप अपने आप खा जाओगे तो अड़चन आएगी। यदि आम का पेड़ अपने फल खुद खा जाए तो उसका जो मालिक होगा, वह क्या करेगा? उसे काट देगा न? इसी तरह ये लोग अपने फल खुद खा जाते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि ऊपर से फ़ीस माँगते हैं। एक अर्ज़ी लिखने के बाईस रुपये माँगते हैं! जिस देश में 'फ्री ऑफ कॉस्ट' वकालत करते थे और ऊपर से अपने घर भोजन कराकर वकालत करते थे, वहाँ यह दशा हुई है। यदि गाँव में झगड़ा हुआ हो, तो नगरसेठ उन दो झगड़नेवालों से कहता, 'भैया मगनलाल आज साढ़े दस बजे आप घर आना और नगीनदास, आप भी उसी समय घर आना।' और नगीनदास की जगह यदि कोई मज़दूर होता या किसान होता, जो लड़ रहे होते तो उनको घर बुला लेता। दोनों को बिठाकर, दोनों की सुलह करवा देता। जिसके पैसे चुकाने हों, उसे थोड़े नक़द दिलवाकर, बाकी के किश्तों में देने की व्यवस्था करवा देता। फिर दोनों से कहता, 'चलो, मेरे साथ भोजन करने बैठ जाओ।' दोनों को खाना खिलाकर घर भेज देता। हैं आज ऐसे वकील? इसलिए समझो और समय को पहचानकर चलो। और यदि खुद, खुद के लिए ही करे, तो मरते समय दु:खी होगा। जीव निकलता नहीं और बंगले-मोटर छोड़कर जा नहीं पाता!

और यह लाइफ यदि परोपकार के लिए जाएगी तो आपको कोई भी कमी नहीं रहेगी। किसी तरह की आपको अड़चन नहीं आएगी। आपकी जो-जो इच्छाएँ हैं, वे सभी पूरी होंगी और ऐसे उछल-कूद करोगे, तो एक भी इच्छा पूरी नहीं होगी। क्योंकि वह रीति, आपको नींद ही नहीं आने देगी। इन सेठों को तो नींद ही नहीं आती, तीन-

तीन, चार-चार दिन तक सो ही नहीं पाते, क्योंकि लूटपाट ही की है, जिस-तिस की।

प्रश्नकर्ता : परोपकारी मनुष्य लोगों के भले के लिए कहे, तो भी लोग वह समझने के लिए तैयार ही नहीं हैं, उसका क्या?

दादाश्री : ऐसा है कि यदि परोपकार करनेवाला सामनेवाले की समझ देखे तो वह वकालत कहलाती है। इसलिए सामनेवाले की समझ देखनी ही नहीं चाहिए। यह आम का पेड़ है, वह फल देता है। तब वह आम का पेड़ अपने कितने आम खाता होगा?

प्रश्नकर्ता : एक भी नहीं।

दादाश्री : तो वे सारे आम किसके लिए हैं?

प्रश्नकर्ता : दूसरों के लिए।

दादाश्री : हाँ, तब वह आम का पेड़ देखता है कि यह बुरा है या भला है, ऐसा देखता है? जो आकर ले जाए, उसके वे आम, मेरे नहीं। परोपकारी जीवन तो वह जीता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जो उपकार करे, उसके ऊपर ही लोग दोषारोपण करते हैं, फिर भी उपकार करना चाहिए?

दादाश्री : हाँ, वही देखना है न! अपकार पर उपकार करे वही सच्चा है। ऐसी समझ लोग कहाँ से लाएँ? ऐसी समझ हो तब तो फिर काम ही हो गया! परोपकारी की तो बहुत ऊँची स्थिति है, यही सारे मनुष्य जीवन का ध्येय है। और हिन्दुस्तान में दूसरा ध्येय, अंतिम ध्येय मोक्षप्राप्ति का है।

प्रश्नकर्ता : परोपकार के साथ 'इगोइज़म' की संगति होती है?

दादाश्री : हमेशा जो परोपकार करता है, उसका 'इगोइज़म' नॉर्मल ही होता है, उसका वास्तविक 'इगोइज़म' होता है और जो कोर्ट में डेढ़ सौ रुपये फ़ीस लेकर दूसरों का काम करें, उनका 'इगोइज़म' बहुत बढ़ा

हुआ होता है। अर्थात् जो 'इगोइज़म' नहीं बढ़ाना है, वह 'इगोइज़म' बहुत बढ़ जाता है।

इस जगत् का कुदरती नियम क्या है कि आप अपने फल दूसरों को दोगे तो कुदरत आपका चला लेगी। यही गुह्य साइन्स है। यह परोक्ष धर्म है। बाद में प्रत्यक्ष धर्म आता है, आत्मधर्म अंत में आता है। मनुष्य जीवन का हिसाब इतना ही है! अर्क़ इतना ही है कि मन-वचन-काया का उपयोग दूसरों के लिए करो।

[३]

दुःख वास्तव में है?

'राइट बिलीफ़' वहाँ दुःख नहीं

प्रश्नकर्ता : दादा, दुःख के विषय में कुछ बताइए। यह दुःख किसमें से उत्पन्न होता है?

दादाश्री : आप यदि आत्मा हो तो आत्मा को दुःख होगा ही नहीं कभी भी और आप चंदूलाल हो तो दुःख है। यदि आप आत्मा हो तो दुःख है ही नहीं, बल्कि जो दुःख हो, वह भी खत्म हो जाता है। 'मैं चंदूलाल हूँ' वह 'रोंग बिलीफ़' है। यह मेरी वाइफ है, ये मेरी मदर हैं, फादर हैं, चाचा हैं, या मैं एक्सपोर्ट-इम्पोर्ट का व्यापारी हूँ, ये सभी तरह-तरह की रोंग बिलीफ़ हैं। इन सभी रोंग बिलीफ़ों के कारण दुःख उत्पन्न होता है। यदि रोंग बिलीफ़ चली जाएँ और राइट बिलीफ़ बैठ जाए तो जगत् में कोई दुःख है ही नहीं। और आप जैसे लोगों (खाते-पीते सुखी घर के) को दुःख है नहीं। यह तो, सब बिना काम के नासमझी के दुःख हैं।

दुःख तो कब माना जाता है?

दुःख किसे कहते हैं? इस शरीर को भूख लगे, तब फिर खाने का आठ घंटे-बारह घंटे न मिले, तब दुःख माना जाता है। प्यास लगने के बाद दो-तीन घंटे पानी नहीं मिले तो वह दुःख जैसा लगता है। संडास लगने के बाद संडास में जाने नहीं दे, तो फिर उसे दुःख होगा या नहीं होगा? संडास से भी अधिक, ये पेशाबघर हैं. वे सब बंद कर दें न, तो सभी लोग शोर मचाकर रख दें। इन पेशाबघरों का तो महान दुःख है लोगों को। इन सभी दुःखों को दुःख कहा जाता है।

प्रश्नकर्ता : यह सब ठीक है, परंतु अभी संसार में देखें तो दस में से नौ लोगों को दुःख है।

दादाश्री : दस में से नौ नहीं, हज़ार में से दो लोग सुखी होंगे, थोड़े-बहुत शांति में होंगे। बाकी सब रात-दिन जलते ही रहते हैं। शक्करकंद भट्टी में रखे हों, तो कितनी तरफ से सिकते हैं?

प्रश्नकर्ता : यह दुःख जो कायम है, उसमें से फायदा किस तरह उठाना चाहिए?

दादाश्री : इस दुःख पर विचार करने लगोगे तो दुःख जैसा नहीं लगेगा। दुःख का यदि यथार्थ प्रतिक्रमण करोगे तो दुःख जैसा नहीं लगेगा। यह बिना सोचे ठोकमठोक किया है कि यह दुःख है, यह दुःख है! ऐसा मानो न, कि आपके वहाँ बहुत पुराना सोफासेट है। अब आपके मित्र के घर पर सोफासेट है ही नहीं, इसलिए वह आज नयी तरह का सोफासेट लाया। वह आपकी पत्नी देखकर आईं। फिर घर आकर आपसे कहे कि आपके मित्र के घर पर कितना सुंदर सोफासेट है और अपने यहाँ खराब हो गए हैं। तो यह दुःख आया! घर में दुःख नहीं था वह देखने गए, वहाँ से दुःख लेकर आए।

आपने बंगला नहीं बनवाया और आपके मित्र ने बंगला बनवाया और आपकी वाइफ वहाँ जाए, देखे, और कहे कि 'उन्होंने कितना अच्छा बंगला बनवाया और हम तो बिना बंगले के हैं!' वह दुःख आया!!! इसीसे ये सब दुःख खड़े किए हुए हैं।

मैं न्यायाधीश होऊँ तो सबको सुखी करके सज़ा करूँ। किसीको उसके गुनाह के लिए सज़ा देने का मौका आए, तो पहले तो मैं उसे 'पाँच वर्ष से कम सज़ा हो सके ऐसा नहीं है', ऐसी बात करूँ। फिर वकील कम करने का कहे, तब मैं चार वर्ष, फिर तीन वर्ष, दो वर्ष, ऐसे करते-करते अंत में छह महीने की सज़ा दूँ। इससे वह जेल में तो जाएगा, लेकिन सुखी होगा। मन में सुखी होगा कि छह महीने में ही पूरा हो गया, यह तो मान्यता का ही दुःख है। यदि उसे पहले से ही ऐसा कहा जाए कि छह महीने की सज़ा होगी तो उसे वह बहुत ज़्यादा लगेगा।

'पेमेन्ट' में तो समता रखनी चाहिए

यह आपको गद्दी पर बैठे हों वैसा सुख है, फिर भी भोगना नहीं आए तब क्या हो? अस्सी रुपये मन के भाववाले बासमती चावल में रेती डालते हैं। यदि दुःख आए तो उसे ज़रा कहना तो चाहिए न, 'यहाँ क्यों आए हो? हम तो दादा के हैं। आपको यहाँ नहीं आना है। आप जाओ दूसरी जगह। यहाँ कहाँ आए आप? आप घर भूल गए।' इतना उनसे कहें तो वे चले जाते हैं। यह तो आपने बिल्कुल अहिंसा की(!) दुःख आएँ तो उन्हें भी घुसने दें? उन्हें तो निकाल देना चाहिए, उसमें अहिंसा टूटती नहीं है। दुःख का अपमान करें तो वे चले जाते हैं। आप तो उसका अपमान भी नहीं करते। इतने अधिक अहिंसक नहीं होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : दुःख को मनाएँ तो नहीं जाएगा?

दादाश्री : ना। उसे मनाना नहीं चाहिए। उसे पटाएँ तो वह पटाया जा सके, ऐसा नहीं है। उसे तो आँखें दिखानी पड़ती हैं। वह नपुंसक जाति है। यानी उस जाति का स्वभाव ही ऐसा है। उसे अटाने-पटाने जाएँ तो वह ज़्यादा तालियाँ बजाता है और अपने पास ही पास आता जाता है।

'वारस अहो महावीरना, शूरवीरता रेलावजो,
कायर बनो ना कोई दी, कष्टो सदा कंपावजो।'

आप घर में बैठे हों, और कष्ट आएँ, तो वे आपको देखकर काँप जाने चाहिए और समझें कि 'हम यहाँ कहाँ आ फँसे! हम घर भूल गए लगते हैं!' ये कष्ट आपके मालिक नहीं, वे तो नौकर हैं।

यदि कष्ट आपसे काँपे नहीं तो आप 'दादा के' कैसे? कष्ट से कहें कि, 'दो ही क्यों आए? पाँच होकर आओ। अब तुम्हारे सभी पेमेन्ट कर दूँगा।' कोई आपको गालियाँ दे तो अपना ज्ञान उसे क्या कहता है? ''वह तो 'तुझे' पहचानता ही नहीं।'' उल्टे 'तुझे' 'उसे' कहना है कि 'भाई कोई भूल हुई होगी, इसीलिए गालियाँ दे गया। इसलिए शांति रखना।' इतना किया कि तेरा 'पेमेन्ट' हो गया! ये लोग तो कष्ट आते हैं तो शोर मचा देते हैं कि 'मैं मर गया!' ऐसा बोलते हैं। मरना तो एक ही बार है और बोलते हैं सौ-सौ बार कि 'मैं मर गया?' अरे जीवित है और किसलिए

'मर गया हूँ', ऐसा बोलता है? मरने के बाद बोलना न कि मैं मर गया। ज़िन्दा कभी मर जाता है? 'मैं मर गया' यह वाक्य तो सारी ज़िंदगीभर बोलना नहीं है। सच्चे दु:ख को जानना चाहिए कि दु:ख किसे कहते हैं?

इस बच्चे को अगर मैं मारूँ तो भी वह रोता नहीं बल्कि हँसता है, उसका क्या कारण है? और आप उसे सिर्फ एक चपत लगाओ तो वह रोने लगेगा, उसका क्या कारण है? उसे लगी इसलिए? ना, उसे लगने का दु:ख नहीं है। उसका अपमान किया उसका उसे दु:ख है।

इसे दु:ख कहें ही कैसे? दु:ख तो किसे कहते हैं कि खाने को न मिले, संडास जाने को न मिले, पेशाब करने को न मिले, वह दु:ख कहलाता है। यह तो सरकार ने घर-घर में संडास बनवा दिए हैं, नहीं तो पहले गाँव में लोटा लेकर जंगल में जाना पड़ता था। अब तो बेडरूम में से उठे कि ये रहा संडास! पहले के ठाकुर के वहाँ भी जो नहीं थी, ऐसी सुविधा आज के मनुष्य भोग रहे हैं। ठाकुर को भी संडास जाने के लिए लोटा लेकर जाना पड़ता था। उसने जुलाब लिया होता तो ठाकुर भी दौड़ता था। और सारे दिन ऐसा हो गया और वैसा हो गया, ऐसे शोर मचाते रहते हैं। अरे, क्या हो गया पर? यह गिर गया, वह गिर गया, क्या गिर गया? बिना काम के किसलिए शोर मचाते रहते हो?

ये दु:ख हैं, वे उल्टी समझ के हैं। यदि सही समझ फिट करें तो दु:ख जैसा है ही नहीं। यदि पैर पक गया हो तो आपको पता लगाना चाहिए कि मेरे जैसा दु:ख लोगों को है या नहीं? अस्पताल में देखकर आएँ तब वहाँ पता चलेगा कि अहोहो! दु:ख तो यहीं पर है। मेरे पैर में ज़रा-सा ही लगा है और मैं नाहक दु:खी हो रहा हूँ। यह तो जाँच तो करनी पड़ेगी न? बिना जाँच किए दु:ख मान लें तो फिर क्या होगा? आप सभी पुण्यवानों को दु:ख हो ही कैसे सकता है? आप पुण्यवान के घर में जन्मे हैं। थोड़ी ही मेहनत से सारे दिन का खाना-पीना मिल जाता है।

प्रश्नकर्ता : सबको खुद का दु:ख बड़ा लगता है न?

दादाश्री : वह तो खुद खड़ा किया हुआ है, इसलिए जितना बड़ा करना हो उतना हो सकता है, चालीस गुना करना हो तो उतना हो जाएगा!

...निश्चित करने जैसा 'प्रोजेक्ट'

इन मनुष्यों को जीवन जीना भी नहीं आया, जीवन जीने की चाबी ही खो गई है। चाबी बिल्कुल खो गई थी, तो अब वापस कुछ अच्छा हुआ है। इन अंग्रेज़ों के आने के बाद लोग खुद के कट्टर संस्कारों में से ढीले पड़े हैं, इसलिए दूसरों में दख़ल नहीं देते, और मेहनत करते रहते हैं। पहले तो सिर्फ दख़ल ही देते थे।

ये लोग फिज़ूल मार खाते रहते हैं। इस जगत् में आपका कोई बाप भी *ऊपरी* नहीं है। आप संपूर्ण स्वतंत्र हो। आपका प्रोजेक्ट भी स्वतंत्र है, लेकिन आपका प्रोजेक्ट ऐसा होना चाहिए कि किसी जीव को आपसे किंचित् मात्र दुःख न हो। आपका प्रोजेक्ट बहुत बड़ा करो, सारी दुनिया जितना करो।

प्रश्नकर्ता : ऐसा संभव है?

दादाश्री : हाँ, मेरा बहुत बड़ा है। किसी भी जीव को दुःख न हो उस तरह से मैं रहता हूँ।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दूसरों के लिए तो वह संभव नहीं है न?

दादाश्री : संभव नहीं, लेकिन उसका अर्थ ऐसा नहीं कि सब जीवों को दुःख देकर अपना प्रोजेक्ट करो।

ऐसा कोई नियम तो रखना चाहिए न कि किसीको कम से कम दुःख हो? ऐसा प्रोजेक्ट कर सकते हैं न। मैं आपको जो बिल्कुल असंभव है, वह करने को तो नहीं कहता न!

...मात्र भावना ही करनी है!

प्रश्नकर्ता : किसीको दुःख ही नहीं, तो फिर हम दूसरों को दुःख दें तो उसे दुःख किस प्रकार से होता है?

दादाश्री : दुःख उसकी मान्यता में से गया नहीं न? आप मुझे *धौल* मारो तो मुझे दुःख नहीं होगा, परंतु किसी और को तो उसकी मान्यता में *धौल* से दुःख है, इसीलिए उसे मारोगे तो उसे दुःख होगा ही। रोंग

बिलीफ़ अभी तक गई नहीं है। 'कोई मुझे *धौल* मारे तो मुझे दुःख होगा', उस लेवल से देखना चाहिए। किसीको *धौल* मारते समय मन में आना चाहिए कि 'मुझे कोई *धौल* मारे तो क्या होगा?'

आप किसी के पास से दस हज़ार रुपये उधार ले आओ, फिर आपके संजोग पलट गए, तो मन में विचार आए कि पैसे वापस नहीं दूँ तो क्या होनेवाला है? उस घड़ी आपको न्यायपूर्वक जाँच करनी चाहिए कि 'मेरे यहाँ से कोई पैसे ले गया हो और मुझे वापस न दे तो मुझे क्या होगा?' ऐसी न्यायबुद्धि चाहिए। ऐसा हो तो मुझे बहुत ही दुःख होगा। इसी प्रकार सामनेवाले को भी दुःख होगा। इसलिए मुझे पैसे वापस देने ही हैं।' ऐसा निश्चित करना चाहिए और ऐसा निश्चित करोगे तो फिर दे सकोगे।

प्रश्नकर्ता : मन में ऐसा होता है कि ये दस करोड़ का आसामी है, तो हम उसे दस हज़ार नहीं दें तो उसे कोई तकलीफ़ नहीं होगी।

दादाश्री : उसे तकलीफ़ नहीं होगी, ऐसा आपको भले ही लगता हो, लेकिन वैसा है नहीं। वह करोड़पति, उसके बेटे के लिए एक रुपये की वस्तु लानी हो तब भी सोच-समझकर लाता है। किसी करोड़पति के घर आपने पैसे इधर-उधर रखे हुए देखे हैं? पैसा हरएक को जान की तरह प्यारा होता है।

अपने भाव ऐसे होने चाहिए कि इस जगत् में अपने मन-वचन-काया से किसी जीव को किंचित् मात्र दुःख न हो।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उस तरह से अनुसरण करना सामान्य मनुष्य को मुश्किल लगता है न?

दादाश्री : मैं आपको आज ही उस प्रकार का वर्तन करने को नहीं कहता हूँ। मात्र भावना ही करने को कहता हूँ। भावना अर्थात् आपका निश्चय।

[४]

फैमिलि आर्गेनाइज़ेशन

यह तो कैसी 'लाइफ' ?!

'फैमिलि आर्गेनाइज़ेशन' का ज्ञान है आपके पास? हमारे हिन्दुस्तान में 'हाउ टु ऑर्गेनाइज़ फैमिलि' वह ज्ञान ही कम है। फॉरिनवाले तो फैमिलि जैसा कुछ समझते ही नहीं। वे तो जैसे ही जेम्स बीस साल का हुआ, तब उसके माँ-बाप विलियम और मेरी, जेम्स से कहेंगे कि 'तू अलग और हम दो तोता-मैना अलग!' उन्हें फैमिलि आर्गेनाइज़ करने की बहुत आदत ही नहीं न? और उनकी फैमिलि में तो साफ-साफ ही कह देती है। मेरी के साथ विलियम को नहीं जमा, तब फिर डायवोर्स की ही बात! और हमारे यहाँ तो कहाँ डायवोर्स की बात? अपने यहाँ तो साथ-साथ ही रहना है, कलह करना और वापस सोना भी वहीं पर, उसी रूम में ही!

यह जीवन जीने का रास्ता नहीं है। यह फैमिलि लाइफ नहीं कहलाती। अरे! अपने यहाँ की बुढ़ियाओं से जीवन जीने का तरीक़ा पूछा होता तो कहतीं कि आराम से खाओ-पीओ, जल्दबाज़ी क्यों करते हो? इन्सान को किस चीज़ की नेसेसिटी है, उसकी पहले जाँच करनी चाहिए। बाकी की सब अन्नेसेसिटी। वे अननेसेसिटी की वस्तुएँ मनुष्य को उलझाती हैं, फिर नींद की गोलियाँ खानी पड़ती हैं।

ये घर में किसलिए लड़ाइयाँ होती हैं? बच्चों के साथ क्यों बोलाचाली हो जाती है? वह सब जानना तो पड़ेगा न? यदि लड़का सामने बोले और उसके लिए डॉक्टर को पूछें कि 'कुछ बताइए', लेकिन वह क्या दवाई बताएगा? उसकी ही पत्नी उसके सामने बोलती है न!

यह तो सारी ज़िंदगी रूई का सर्वे करता है, कोई लौंग का सर्वे

करता है, कुछ न कुछ सर्वे करते हैं, लेकिन अंदर का सर्वे कभी भी नहीं किया।

सेठ आपकी सुगंध आपके घर में आती है?

प्रश्नकर्ता : सुगंध मतलब क्या?

दादाश्री : आपके घर के सब लोगों को आप राज़ी रखते हो? घर में कलह नहीं होती न?

प्रश्नकर्ता : कलह तो होती है। रोज़ होती है।

दादाश्री : तब ये किस तरह के पैदा हुए आप कि पत्नी को शांति नहीं दी, बच्चों को शांति नहीं दी, अरे! आपने खुद को भी शांति नहीं दी! आपको मोक्ष में जाना हो तो मुझे आपको डाँटना पड़ेगा और आपको देवगति में जाना हो तो दूसरा सरल रास्ता आपको लिख दूँ। फिर तो मैं आपको 'आइए सेठ, पधारिए' ऐसा कहूँगा। मुझे दोनों भाषाएँ आती हैं। यह भ्रांति की भाषा मैं भूल नहीं गया हूँ। पहले 'तुंडे तुंडे मतिर्भिन्ना' थी, वह अभी तुमडे तुमडे मतिर्भिन्न हो गई है! तुंड गए और तुमडे रहे! संसार के हिताहित का भी कोई भान नहीं है।

ऐसा संस्कार सिंचन शोभा देता है?

माँ-बाप के तौर पर किस तरह रहना उसका भी भान नहीं है। एक भाई थे, वे खुद की पत्नी को बुलाते हैं, 'अरे, मुन्ने की मम्मी कहाँ गई?' तब मुन्ने की मम्मी अंदर से बोलती है, 'क्यों, क्या है?' तब भाई कहें, 'यहाँ आ, जल्दी जल्दी यहाँ आ, देख, देख तेरे बच्चे को! कैसा पराक्रम करना आता है, अरे देख तो सही!! मुन्ने ने पैर ऊँचे करके मेरी जेब में से कैसे दस रुपये निकाले! कैसा होशियार हो गया है मुन्ना!!'

घनचक्कर, ऐसे कहाँ से पैदा हुए? ये बाप बन बैठे! शरम नहीं आती? इस बच्चे को कैसा प्रोत्साहन मिला, वह समझ में आता है? बच्चा देखता रहा कि मैंने बहुत बड़ा पराक्रम किया! ऐसा तो शोभा देता है? कुछ नियमवाला होना चाहिए न? यह हिन्दुस्तान का मनुष्यपन इस तरह लुट जाए, वह क्या शोभा देता है हमें? क्या बोलने से बच्चे को अच्छा

एन्करेजमेन्ट मिलता है और क्या बोलने से उसे नुकसान होता है, उसका भान तो होना चाहिए न? यह तो अनटेस्टेड फादर और अनटेस्टेड मदर हैं। बाप मूली और माँ गाजर, फिर बोलो बच्चे कैसे बनेंगे? वे थोड़े ही सेब बनेंगे?

प्रेममय डीलिंग - बच्चे सुधरेंगे ही

एक बाप ने अपने बच्चे को थोड़ा-सा ही हिलाया और बच्चा फट पड़ा, और बाप से कहने लगा कि मेरा और आपका नहीं जमेगा। फिर बाप बच्चे से कहने लगा कि भाई मैंने तुझे कुछ भी खराब नहीं कहा, फिर तू क्यों गुस्सा हो रहा है? तब मैंने बाप से कहा कि, 'अब क्यों कमरा धो रहे हो? पहले हिलाया ही किसलिए?' किसीको हिलाना मत, ये पके हुए फ्रूट (ककड़ी जैसा फल) हैं। कुछ बोलना मत। मेरी भी चुप और तेरी भी चुप। खा-पीकर मज़े करो।

प्रश्नकर्ता : यह बच्चा खराब लाइन पर चढ़ जाए तो माँ-बाप का फ़र्ज़ है न कि उसे वापस मोड़ना चाहिए?

दादाश्री : ऐसा है न, कि माँ-बाप होकर उसे कहना चाहिए, लेकिन माँ-बाप हैं ही कहाँ आजकल?

प्रश्नकर्ता : माँ-बाप किन्हें कहेंगे?

दादाश्री : माँ-बाप तो वे कहलाते हैं कि बच्चा खराब लाइन पर चला गया हो, फिर भी एक दिन माँ-बाप कहेंगे, 'भाई, यह हमें शोभा नहीं देता, यह तूने क्या किया?' तो दूसरे दिन से उसका बंद हो जाए! ऐसा प्रेम ही कहाँ है? ये तो बगैर प्रेमवाले माँ-बाप। यह जगत् प्रेम से ही वश में होता है। इन माँ-बापों को बच्चों पर कितना प्रेम है? जितना गुलाब के पौधे पर माली का प्रेम होता है उतना! इन्हें माँ-बाप ही कैसे कहा जाए? अन्सर्टिफाइड फादर और अन्सर्टिफाइड मदर। फिर बच्चे की क्या स्थिति होगी? असल में तो पहले टेस्टिंग करवाकर सर्टिफिकेट प्राप्त करने के बाद ही शादी करने की छूट होनी चाहिए। परीक्षा में पास हुए बिना, सर्टिफिकेट के बिना गवर्नमेन्ट में भी नौकरी पर नहीं लेते हैं, तो इसमें सर्टिफिकेट बगैर शादी कैसे कर सकते हैं? यह माँ और बाप बनने की

ज़िम्मेदारी देश के प्रधानमंत्री की ज़िम्मेदारी से भी अधिक है। प्रधानमंत्री से भी ऊँचा पद है।

प्रश्नकर्ता : सर्टिफाइड फादर-मदर की परिभाषा क्या है?

दादाश्री : अन्सर्टिफाइड माँ-बाप यानी उनके खुद के बच्चे उनके कहे अनुसार चलते नहीं, खुद के ही बच्चे उन पर भाव रखते नहीं, परेशान करते हैं! तब माँ-बाप अन्सर्टिफाइड ही कहलाएँगे न?

...नहीं तो मौन रखकर 'देखते' रहो

एक सिंधी भाई आए थे, वे कहने लगे कि, एक बेटा ऐसा करता है और एक वैसा करता है, उनको कैसे सुधारना चाहिए? मैंने कहा, 'आप ऐसे बच्चे क्यों लाए? आपको छाँटकर अच्छे बच्चे नहीं लाने चाहिए थे?' ये हाफ़ूज़ के आम सब एक ही तरह के होते हैं, वे सब मीठे देखकर, चखकर लाते हैं। लेकिन आप दो खट्टे ले आए, दो बिगड़े हुए लाए, कसैले लाए, दो मीठे लाए, फिर उसके रस में कोई बरकत आएगी क्या? बाद में लड़ाई-झगड़ा करें उसका क्या अर्थ? खट्टा आम लेकर आए फिर खट्टे को खट्टा जानना उसका नाम ज्ञान। खट्टा स्वाद आया, उसे देखते रहना है। ऐसे ही इस प्रकृति को देखते रहना है। किसी के हाथ में सत्ता नहीं है। अवस्था मात्र कुदरती रचना है। उसमें किसी का कुछ चलता नहीं, बदलता नहीं और वापस व्यवस्थित है।

प्रश्नकर्ता : मारने से बच्चे सुधरते हैं या नहीं?

दादाश्री : कभी भी नहीं सुधरते, मारने से कुछ नहीं सुधरता। इस मशीन को मारकर देखो तो? वह टूट जाएगी। वैसे ही ये बच्चे भी टूट जाएँगे। ऊपर से अच्छे खासे दिखते हैं, लेकिन अंदर से टूट जाते हैं। किसीको एन्करेज करना नहीं आता तो फिर मौन रहो न, चाय पीकर चुपचाप। सबके मुँह देखता जा, ये दो पुतले कलह कर रहे हैं, उन्हें देखता जा। यह अपने काबू में नहीं है। हम तो इसके जानकार ही हैं।

जिसे संसार बढ़ाना हो उसे इस संसार में लड़ाई-झगड़ा करना चाहिए, सभी करना चाहिए। जिसे मोक्ष में जाना हो उसे हम, 'क्या हो

रहा है' उसे 'देखो', ऐसा कहते हैं।

इस संसार में डाँटने से कुछ भी सुधरनेवाला नहीं है। उल्टे मन में अहंकार करता है कि मैंने बहुत डाँटा। डाँटने के बाद अगर देखो तो माल जैसा था, वैसा ही होता है, पीतल का हो वह पीतल का और काँसे का हो तो काँसे का ही रहता है। पीतल को मारते रहो तो उसे काला पड़े बगैर रहेगा? नहीं रहेगा। कारण क्या है? तब कहे, काला होने का स्वभाव है उसका। इसलिए मौन रहना चाहिए। जैस कि सिनेमा में नापसंद सीन आए तो उससे क्या हम जाकर परदा तोड़ डालते हैं? नहीं, उसे भी देखना है। सभी सीन, पसंद हों ऐसे आते हैं क्या? कुछ तो सिनेमा में कुर्सी पर बैठे-बैठे शोर मचाते हैं कि 'अय! मार डालेगा, मार डालेगा!' ये बड़े दया के डिब्बे देख लो। यह सब तो सिर्फ देखना है। खाओ, पीओ, देखो और मज़े करो!

...खुद को ही सुधारने की ज़रूरत

प्रश्नकर्ता : ये बच्चे शिक्षक के सामने बोलते हैं, वे कब सुधरेंगे?

दादाश्री : जो भूल का परिणाम भुगतता है उसकी भूल है। ये गुरु ही घनचक्कर पैदा हुए हैं कि शिष्य उनके सामने बोलते हैं। ये बच्चे तो समझदार ही हैं, लेकिन गुरु और माँ-बाप घनचक्कर पैदा हुए हैं! और बड़े-बूढ़े पुरानी बातें पकड़कर रखते हैं, फिर बच्चे सामने बोलेंगे ही न? आजकल माँ-बाप का चारित्र ऐसा नहीं होता कि बच्चे उनका सामना नहीं करें। ये तो बड़े-बूढ़ों का चारित्र कम हो गया है, इसीलिए बच्चे सामने बोलते हैं। आचार, विचार और उच्चार में पॉज़िटिव (सुलटा) बदलाव होता जाए तो खुद परमात्मा बन सकता है और उल्टा बदलाव हो तो राक्षस भी बन सकता है।

लोग सामनेवाले को सुधारने के लिए सब फ्रेक्चर कर डालते हैं। पहले खुद सुधरें तो दूसरों को सुधार सकेंगे। लेकिन खुद के सुधरे बिना सामनेवाला किस तरह सुधरेगा? इसीलिए पहले आपका खुद का बगीचा सँभालो, फिर दूसरों का देखने जाओ। खुद का सँभालोगे तभी फल-फूल मिलेंगे।

दख़ल नहीं, 'एडजस्ट' होने जैसा है

संसार का मतलब ही समसरण मार्ग, इसलिए निरंतर परिवर्तन होता ही रहता है। जब कि ये बड़े-बूढ़े पुराने ज़माने को ही पकड़े रहते हैं। अरे! ज़माने के अनुसार कर, नहीं तो मार खाकर मर जाएगा। ज़माने के अनुसार एडजस्टमेन्ट लेना चाहिए। मेरा तो चोर के साथ, जेब काटनेवाले के साथ, सबके साथ एडजस्टमेन्ट हो जाता है। चोर के साथ हम बात करें तो वह भी समझ जाता है कि ये करुणावाले हैं। हम चोर को 'तू गलत है' ऐसा नहीं कहते, क्योंकि वह उसका 'व्यू पोइन्ट' है। जब कि लोग उसे नालायक कहकर गालियाँ देते हैं। तब ये वकील क्या झूठे नहीं है? 'बिल्कुल झूठा केस भी जिता दूँगा', ऐसा कहते हैं, तो वे ठग नहीं कहलाएँगे? चोर को बुरा कहते हैं न, इस बिल्कुल झूठे केस को सच्चा कहता है, उसका संसार में विश्वास किस तरह किया जाए? फिर भी उसका चलता है न? किसीको हम गलत नहीं कहते। वह उसके व्यू पोइन्ट से करेक्ट ही है। लेकिन उसे सच्ची बात समझाते हैं कि तू यह चोरी करता है, उसका फल क्या आएगा।

ये बूढ़े लोग घर में आएँ तो कहते हैं, 'यह लोहे की अलमारी? यह रेडियो? यह ऐसा क्यों है? वैसा क्यों है?' ऐसे दख़ल करते हैं। अरे, किसी युवक से दोस्ती कर। यह युग तो बदलता ही रहेगा। उसके बिना ये जिएँगे किस तरह? कुछ नया देखें, तो मोह होता है। नया नहीं हो तो जिएँगे ही कैसे? ऐसा नया अनंत आया और गया, उसमें आपको दख़ल नहीं करनी है। आपको ठीक नहीं लगे तो आप वह मत करना। यह आइस्क्रीम ऐसा नहीं कहती आप से कि 'हमसे भागो। हमें नहीं खाना हो तो नहीं खाओ।' यह तो बूढ़े लोग उन पर चिढ़ते रहते हैं। ये मतभेद तो ज़माना बदला उसके हैं। ये बच्चे तो ज़माने के अनुसार करते हैं। मोह यानी नया-नया उत्पन्न होता है और नया ही नया दिखता है। हमने बचपन से ही बुद्धि से बहुत सोच लिया है कि यह जगत् उल्टा हो रहा है या सीधा हो रहा है, और यह भी समझा कि किसीको सत्ता ही नहीं है इस जगत् को बदलने की। फिर भी हम क्या कहते हैं कि ज़माने के अनुसार एडजस्ट हो जाओ! बेटा नयी ही टोपी पहनकर आए तो ऐसा नहीं कहना कि ऐसी

कहाँ से ले आया? इससे तो, एडजस्ट हो जाना कि इतनी अच्छी टोपी? कहाँ से लाया? कितने की आई? बहुत सस्ती मिली? ऐसे एडजस्ट हो जाना।

ये बच्चे सारा दिन कान पर रेडियो लगाकर नहीं रखते? क्योंकि यह रस नया-नया उदय में आया है बेचारे को! यह उसका नया डेवेलपमेन्ट है। यदि डेवेलप हो गया होता, तो कान पर रेडियो लगाता ही नहीं। एकबार देख लेने के बाद वापस छुआता ही नहीं। नवीन वस्तु को एक बार देखना होता है, उसका हमेशा के लिए अनुभव नहीं लेना होता। यह तो कान की नयी ही इन्द्रिय आई है, इसलिए सारा दिन रेडियो सुनता रहता है! मनुष्यपन की उसकी शुरूआत हो रही है। मनुष्यपन में हज़ारों बार आया हुआ मनुष्य ऐसा-वैसा नहीं करते।

प्रश्नकर्ता : बच्चों को घूमने-फिरने का बहुत होता है।

दादाश्री : बच्चे कोई आप से बँधे हुए नहीं हैं। सब अपने-अपने बंधन में हैं, आपको तो इतना ही कहना है कि 'जल्दी आना।' फिर जब आएँ तब 'व्यवस्थित'। व्यवहार सब करना, लेकिन कषाय रहित करना। व्यवहार कषाय रहित हुआ तो मोक्ष, और कषाय सहित व्यवहार-वह संसार।

प्रश्नकर्ता : हमारा भतीजा रोज़ नौ बजे उठता है, कुछ काम नहीं हो पाता।

दादाश्री : हम उसे ओढ़ाकर कहें कि आराम से सो जा भाई। उसकी प्रकृति अलग है, इसलिए देर से उठता है और काम अधिक करता है। और कोई मूर्ख चार बजे से उठ गया हो, फिर भी कुछ नहीं करता। मैं भी हरएक काम में हमेशा लेट होता था। स्कूल में घंटी बजने के बाद ही घर से बाहर निकलता। और हमेशा मास्टरजी की डाँट सुनता था। अब मास्टरजी को क्या पता कि मेरी प्रकृति (स्वभाव) क्या है? हरएक का 'रस्टन' अलग और 'पिस्टन' अलग-अलग होता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन देर से उठने में डिसिप्लिन नहीं रहता है न?

दादाश्री : यह देर से उठता है इसीलिए आप कलह करो, वही

डिसिप्लिन नहीं है। इसीलिए आप कलह करना बंद कर दो। आपको जो-जो शक्तियाँ माँगनी हों, वे इन दादा के पास से रोज़ सौ-सौ बार माँगना, सब मिलेंगी।

अब इन भाईसाब को समझ में आया इसलिए उन्होंने तो हमारी आज्ञा का पालन करके भतीजे को घर में सभी ने कुछ भी कहना बंद कर दिया। हफ्ते के बाद परिणाम यह आया कि भतीजा अपने आप ही सात बजे उठने लग गया और घर में सबसे ज़्यादा अच्छी तरह काम करने लग गया।

सुधारने के लिए 'कहना' बंद करो

इस काल में कम बोलना, उसके जैसा कुछ भी नहीं है। इस काल में तो बोल पत्थर जैसे लगें, ऐसे निकलते हैं, और हरएक का ऐसा ही होता है। इसीलिए बोलना कम कर देना अच्छा। किसी से कुछ भी कहने जैसा नहीं है। कहने से अधिक बिगड़ता है। उसे कहें कि गाड़ी पर जल्दी जा, तो वह देर से जाता है। और कुछ न कहें तो टाइम पर जाता है। हम नहीं हों, तो भी सब चले ऐसा है। यह तो खुद का झूठा अहंकार है। जिस दिन से आप बच्चों के साथ किच-किच करना आप बंद करोगे, उस दिन से बच्चे सुधरने लगेंगे। आपके बोल अच्छे नहीं निकलते, इसीलिए सामनेवाला चिढ़ता है। आपके बोल वह स्वीकार नहीं करता, बल्कि वे बोल वापस आते हैं। आप तो बच्चे को खाने-पीने का बनाकर दो और अपना फ़र्ज़ पूरा करों, अन्य कुछ कहने जैसा नहीं है। कहने से फायदा नहीं, ऐसा आपका सार निकलता है न? बच्चे बड़े हो गए हैं, वे क्या सीढ़ियों पर से गिर जाएँगे? आप अपना आत्मधर्म क्यों चूकते हो? ये बच्चों के साथ का तो रिलेटिव धर्म है। वहाँ बेकार माथाकूट करने जैसा नहीं है। कलह करते हो, इसके बजाय मौन रहोगे तो अधिक अच्छा रहेगा। कलह से तो खुद का दिमाग बिगड़ जाता है और सामनेवाले का भी बिगड़ जाता है।

प्रश्नकर्ता : बच्चे उनकी ज़िम्मेदारी समझकर नहीं रहते।

दादाश्री : ज़िम्मेदारी 'व्यवस्थित' की है, वह तो उसकी ज़िम्मेदारी समझा हुआ ही है। आपको उसे कहना नहीं आया, इसीलिए गड़बड़ होती है। सामनेवाला माने, तब हमारा कहा हुआ काम का। यह तो माँ-बाप बोलते

हैं पागल जैसा, फिर बच्चे भी पागलपन ही करेंगे न!

प्रश्नकर्ता : बच्चे तुच्छता से बोलते हैं।

दादाश्री : हाँ, लेकिन वह आप किस तरह बंद करोगे? यह तो आपस में बंद हो जाए न, तो सबका अच्छा होगा।

एक बार मन विषैला हो गया, फिर उसकी लिंक शुरू हो जाती है। फिर मन में उसके लिए अभिप्राय बन जाता है कि 'यह आदमी ऐसा ही है।' तब आपको मौन लेकर सामनेवाले को विश्वास में लेने जैसा है। बोलते रहने से किसी का नहीं सुधरता। सुधरना तो, 'ज्ञानीपुरुष' की वाणी से सुधरता है। बच्चों के लिए तो माँ-बाप की जोखिमदारी है। आप नहीं बोलोगे, तो नहीं चलेगा? चलेगा। इसलिए भगवान ने कहा है कि जीते जी ही मरे हुए जैसे रहो। बिगड़ा हुआ सुधर सकता है। बिगड़े हुए को काटना नहीं चाहिए। बिगड़े हुए को सुधारना वह हमसे हो सकता है, आपको नहीं करना है। आपको हमारी आज्ञा के अनुसार चलना है। वह तो जो सुधरा हुआ हो वही दूसरों को सुधार सकता है। खुद ही नहीं सुधरे हों, तो दूसरों को किस तरह सुधार सकेंगे?

बच्चों को सुधारना हो तो हमारी इस आज्ञा के अनुसार चलो। घर में छह महीने का मौन लो। बच्चे पूछें तभी बोलना और उसके लिए भी उन्हें कह देना कि मुझे न पूछो तो अच्छा। और बच्चों के लिए उल्टा विचार आए तो उसका तुरंत ही प्रतिक्रमण कर देना चाहिए।

'रिलेटिव' समझकर *उपलक* रहना

बच्चों को तो नौ महीने पेट में रखना, फिर चलाना, घुमाना, छोटे हों तब तक। फिर छोड़ देना। ये गाय-भैंस भी छोड़ देते हैं न? बच्चों को पाँच वर्ष तक टोकना पड़ता है, फिर टोकना भी नहीं चाहिए और बीस साल के बाद तो उसकी पत्नी ही उसे सुधारेगी। आपको नहीं सुधारना है।

बच्चों के साथ *उपलक* (सतही, ऊपर ऊपर से, सुपरफ्लुअस) रहना है। असल में तो खुद का कोई है ही नहीं। इस देह के आधार पर मेरे

हैं। देह जल जाए तो कोई साथ में आता है? यह तो जो मेरा कहकर छाती से चिपकाते हैं, उन्हें बहुत उपाधी है। बहुत भावुकतावाले विचार काम नहीं आते। बेटा व्यवहार से है। अगर बेटा जल जाए तो इलाज करवाना, लेकिन आपने क्या रोने की शर्त रखी है?

सौतेले बच्चे हों तो गोद में बिठाकर दूध पिलाते हैं? ना! वैसा रखना। यह कलियुग है। 'रिलेटिव' संबंध है। रिलेटिव को रिलेटिव रखना चाहिए, 'रियल' नहीं करना चाहिए। यह रियल संबंध होता तो बच्चे से कहते कि 'तू सुधरे नहीं तब तक अलग रह।' लेकिन यह तो रिलेटिव संबंध है इसलिए - एडजस्ट एवरीव्हेर। यह आप सुधारने नहीं आए हो, आप कर्मों के शिकंजे में से छूटने के लिए आए हो। सुधारने के बदले तो अच्छी भावना करो। बाकी कोई किसीको सुधार नहीं सकता। वह तो ज्ञानीपुरुष सुधरे हुए होते हैं, वे दूसरों को सुधार सकते हैं। इसलिए उनके पास ले जाओ। ये बिगड़ते क्यों हैं? उकसाने से। सारे वर्ल्ड का काम उकसाने से बिगड़ा है। इस कुत्ते को भी छेड़ो तो काट खाता है, काट लेता है। इसलिए लोग कुत्ते को छेड़ते नहीं है। इन मनुष्यों को छेड़ेंगे तो क्या होगा? वे भी काट खाएँगे। इसीलिए मत छेड़ना।

हमारे इस एक-एक शब्द में अनंत-अनंत शास्त्र समाए हुए हैं! इसे समझे और सीधा चले तो काम ही निकाल दे! एकावतारी हो सकें, ऐसा यह विज्ञान है! लाखों जन्म कम हो जाएँगे! इस विज्ञान से तो राग भी उड़ जाएँगे और द्वेष भी उड़ जाएँगे और वीतराग होते जाएँगे जाएगा। अगुरु-लघु स्वभाववाला हो जाएगा, इसलिए इस विज्ञान का जितना लाभ उठाया जाए, उतना कम है।

सलाह देना, परंतु देनी ही पड़े तब

हमारी तरह 'अबुध' हो गया तो काम ही हो गया। बुद्धि काम में ली तो संसार खड़ा हो गया वापस। घर के लोग पूछें, तभी ज़वाब देना चाहिए आपको, और उस समय मन में होना चाहिए कि ये नहीं पूछें तो अच्छा, ऐसी मन्नत माननी चाहिए। क्योंकि नहीं पूछेंगे तो आपको यह दिमाग़ चलाना नहीं पड़ेगा। ऐसा है न, कि हमारे ये पुराने संस्कार सारे खत्म हो गए हैं। यह दूषमकाल ज़बरदस्त फैला हुआ है, संस्कारमात्र खत्म हो गए

हैं। मनुष्य को किसीको समझाना नहीं आता। बाप बेटे से कुछ कहें तो बेटा कहेगा कि मुझे आपकी सलाह नहीं सुननी है। तब सलाह देनेवाला कैसा और लेनेवाला कैसा? किस तरह के लोग इकट्ठे हुए हो? ये लोग आपकी बात क्यों नहीं सुनते? सच्ची नहीं है, इसलिए। सच्ची होगी, तो सुनेंगे या नहीं सुनेंगे? ये लोग ऐसा क्यों कहते हैं? आसक्ति के कारण कहते हैं। इस आसक्ति के लिए तो लोग खुद के जन्म बिगाड़ते हैं।

अब, इस भव में तो सँभाल ले

सब 'व्यवस्थित' चलाता है, कुछ भी बोलने जैसा नहीं है। 'खुद का' धर्म कर लेने जैसा है। पहले तो ऐसा समझते थे कि 'हम चलाते हैं, इसलिए हमें बुझाना पड़ेगा।' अब तो आपको नहीं चलाना है न? अब तो यह भी लट्टू और वह भी लट्टू! छोड़ो न पीड़ा यहीं से। प्याला फूटे, कढ़ी ढुल जाए, पत्नी बच्चे को डाँट रही हो, तब भी आप इस तरह करवट लेकर आराम से बैठ जाना। आप देखोगे तब वे कहेंगी न कि आप देख रहे थे और क्यों नहीं बोले? और न हो तो हाथ में माला लेकर फेरने लगना, तब वह कहेगी कि ये तो माला में है। छोड़ो न! आपको क्या लेना-देना? शमशान में नहीं जाना हो तो किच-किच करो! यानी कि कुछ बोलने जैसा नहीं है। यह तो गायें-भैंसें भी उनके बच्चों के साथ उनके तरीके से भों-भों करते हैं, अधिक नहीं बोलते! और ये मनुष्य तो ठेठ तक बोलते ही रहते हैं। जो बोले, वह मूर्ख कहलाता है, सारे घर को खत्म कर डालता है। उसका कब अंत आएगा? अनंत जन्मों से संसार में भटके हैं। न किसी का भला किया, न खुद का भला किया। जो मनुष्य खुद का भला करे वही दूसरों का भला कर सकता है।

सच्ची सगाई या पराई पीड़ा?

बेटा बीमार हो तो आप इलाज सब करना, लेकिन सबकुछ उपलक अपने बच्चों को कैसे मानने चाहिए? सौतेले। बच्चों को मेरे बच्चे कहा और बच्चा भी मेरी माँ कहता है, लेकिन अंदर लम्बा संबंध नहीं है। इसीलिए इस काल में सौतेले संबंध रखना, नहीं तो मारे गए समझो। बच्चे किसीको मोक्ष में ले जानेवाले नहीं है। यदि आप समझदार होंगे, तो बच्चे समझदार

होंगे। बच्चों के साथ कहीं लाड़-प्यार किया जाता होगा? यह लाड़-प्यार तो गोली मारता है। लाड़-प्यार द्वेष में बदल जाता है। खींच-तानकर प्रीत करके चला लेना चाहिए। बाहर 'अच्छा लगता है' ऐसा कहना चाहिए। लेकिन अंदर समझना कि ज़बरदस्ती प्रीति कर रहे हैं, यह सच्चा संबंध नहीं है। बेटे के संबंध का कब पता चलेगा? कि जब आप एक घंटा उसे मारें, गालियाँ दें, तब वह कलदार है या नहीं, उसका पता चल जाएगा। यदि आपका सच्चा बेटा हो, तो आपके मारने के बाद भी वह आपको आपके पैर छूकर कहेगा कि बापूजी, आपका हाथ बहुत दुःख रहा होगा! ऐसा कहनेवाला हो तो सच्चे संबंध रखना। लेकिन यह तो एक घंटा बेटे को डाँटें तो बेटा मारने दौड़ेगा! यह तो मोह को लेकर आसक्ति होती है। 'रियल बेटा' किसे कहा जाता है? कि बाप मर जाए तो बेटा भी शमशान में जाकर कहे कि 'मुझे मर जाना है।' कोई बेटा बाप के साथ मरता है आपकी मुंबई में?

यह तो सब पराई पीड़ा है। बेटा ऐसा नहीं कहता कि मुझ पर सब लुटा दो, लेकिन यह तो बाप ही बेटे पर सब लुटा देता है। यह अपनी ही भूल है। आपको बाप की तरह सभी फ़र्ज़ निभाने हैं। जितने उचित हों उतने सभी फ़र्ज़ निभाने हैं। एक बाप अपने बेटे को छाती से लगाकर ऐसे दबा रहा था, उसने खूब दबाया, तो बेटे ने बाप को काट लिया! कोई आत्मा किसी का पिता या पुत्र हो ही नहीं सकता। इस कलियुग में तो माँगनेवाले, लेनदार ही बेटे बनकर आए होते हैं! हम ग्राहक से कहें कि मुझे तेरे बिना अच्छा नहीं लगता, तेरे बिना अच्छा नहीं लगता तो ग्राहक क्या करेगा? मारेगा। यह तो रिलेटिव सगाईयाँ हैं, इसमें से कषाय खड़े होते हैं। इस राग कषाय में से द्वेष कषाय खड़ा होता है। खुशी में उछलना ही नहीं है। यह खीर उफने, तब चूल्हें में से लकड़ी निकाल लेनी पड़ती है, उसके जैसा है।

. . . फिर भी उचित व्यवहार कितना?

प्रश्नकर्ता : बच्चों के बारे में क्या उचित है और क्या अनुचित, वह समझ में नहीं आता।

दादाश्री : जितना सामने चलकर करते हैं, वह सब ज़रूरत से

ज़्यादा अक्लमंदी है। वह पाँच वर्ष तक ही करना होता है। फिर तो बेटा कहे कि बापूजी मुझे फ़ीस दो। तब कहना कि 'भाई पैसा यहाँ नल में नहीं आता। मुझे दो दिन पहले से कहना चाहिए था। मुझे उधार लेकर आने पड़ते हैं।' ऐसा कहकर दूसरे दिन देने चाहिए। बच्चे तो ऐसा समझ बैठे होते हैं कि जैसे नल में पानी आता है वैसे बापूजी पानी ही देते हैं। इसलिए बच्चों के साथ ऐसा व्यवहार रखना कि उनसे सगाई बनी रहे और वे सिर पर न चढ़ बैठे, बिगड़ें नहीं। यह तो बेटे को इतना अधिक लाड़ करते हैं कि बेटा बिगड़ जाता है। अतिशय लाड़ तो होता होगा? इस बकरी के ऊपर प्यार आता है? बकरी में और बच्चों में क्या फर्क है? दोनों ही आत्मा हैं। अतिशय लाड़ नहीं और निःस्पृह भी नहीं हो जाना चाहिए। बेटे से कहना चाहिए कि कोई कामकाज हो तो पूछना। जब तक मैं बैठा हूँ तब तक कोई अड़चन हो तो पूछना। अड़चन हो तभी, नहीं तो हाथ मत डालना। यह तो बेटे की जेब में से पैसे नीचे गिर रहे हों तो बाप शोर मचा देता है, 'अरे चंदू, अरे चंदू।' आप क्यों शोर मचाते हैं? अपने आप पूछेगा तब पता चलेगा। इसमें आप क्यों कलह करते हो? और अगर आप नहीं होते तो क्या होता? 'व्यवस्थित' के ताबे में है। और बिना काम के दख़ल करते हैं। संडास भी व्यवस्थित के ताबे है, और आपका आपके पास है। खुद के स्वरूप में खुद हो, वहाँ पुरुषार्थ है। और खुद की स्वसत्ता है। इस *पुद्गल* में पुरुषार्थ है ही नहीं। *पुद्गल* प्रकृति के अधीन है।

बच्चों का अहंकार जागने के बाद उसे कुछ नहीं कह सकते और आप क्यों कहें? ठोकर लगेगी तो सीखेंगे। बच्चे पाँच वर्ष के हों तब तक कहने की छूट है और पाँच से सोलह वर्षवाले को कभी दो चपत मारनी भी पड़े। लेकिन बीस वर्ष का जवान होने के बाद उसका नाम तक नहीं ले सकते, एक अक्षर भी नहीं बोल सकते, बोलना वह गुनाह कहलाएगा। नहीं तो किसी दिन बंदूक़ मार देगा।

प्रश्नकर्ता : ये 'अन्सर्टिफाइड फादर' और 'मदर' बन गए हैं इसलिए यह पज़ल खड़ा हो गया है?

दादाश्री : हाँ, नहीं तो बच्चे ऐसे होते ही नहीं, बच्चे कहे अनुसार चलें, ऐसे होते। यह तो माँ-बाप ही बगैर ठिकाने के हैं। ज़मीन ऐसी है,

बीज ऐसा है, माल बेकार है! ऊपर से कहते हैं कि मेरा बेटा महावीर बनेगा! महावीर तो होते होंगे? महावीर की माँ तो कैसी होती है? बाप ज़रा टेढ़ा-मेढ़ा हो तो चले लेकिन माँ कैसी होती है?

प्रश्नकर्ता : बच्चों को गढ़ने के लिए या संस्कार के लिए हमें कुछ सोचना ही नहीं चाहिए?

दादाश्री : विचार करने में कोई परेशानी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : पढ़ाई तो स्कूल में होती है लेकिन गढ़ने का क्या?

दादाश्री : गढ़ने का काम सुनार को सौंप देना चाहिए, उनके गढ़नेवाले होते हैं वे गढ़ेंगे। बेटा पंद्रह वर्ष का हो, तब तक उसे कहना (टोकना) चाहिए, तब तक जैसे आप हो, वैसा ही उसे गढ़ देना। फिर उसे उसकी पत्नी ही गढ़ देगी। यह गढ़ना नहीं आता, फिर भी लोग गढ़ते ही है न? इसलिए गढ़ाई अच्छी नहीं होती। मूर्ति अच्छी नहीं बनती। नाक ढाई इंच का होना चाहिए, वहाँ साढ़े चार इंच का कर देते हैं। फिर उसकी वाइफ आएगी तो काटकर ठीक करने जाएगी। फिर वह भी उसे काटेगा और कहेगा, 'आ जा।'

फ़र्ज़ में नाटकीय रहो

यह नाटक है! नाटक में बीवी-बच्चों को हमेशा के लिए खुद के बना लें तो क्या चल सकेगा? हाँ, नाटक में बोलते हैं, वैसे बोलने में परेशानी नहीं है। 'यह मेरा बड़ा बेटा, शतायु था।' लेकिन सब उपलक, सुपरफ्लुअस, नाटकीय। इन सबको सच्चा माना उसके ही प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं। यदि सच्चा न माना होता तो प्रतिक्रमण करने ही नहीं पड़ते, जहाँ सत्य मानने में आया वहाँ राग और द्वेष शुरू हो जाते हैं, और प्रतिक्रमण से ही मोक्ष है। ये दादाजी जो दिखाते हैं, उस आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान से मोक्ष है।

यह संसार तो *तायफ़ा* (फज़ीता) है बिल्कुल, मज़ाक जैसा है। एक घंटे यदि बेटे के साथ लड़ें तो बेटा क्या कहेगा? 'आपको यहाँ रहना हो तो मैं नहीं रहूँगा।' बाप कहे, 'मैं तुझे जायदाद नहीं दूँगा।' तो बेटा कहे,

'आप नहीं देनेवाले कौन?' यह तो मार-ठोककर लें, ऐसे हैं। अरे! कोर्ट में एक बेटे ने वकील से कहा कि, 'मेरे बाप की नाक कटे ऐसा करो तो मैं तुम्हें तीन सौ रुपये ज़्यादा दूँगा।' बाप बेटे से कहता है कि, 'तुझे ऐसा जाना होता, तो जन्म होते ही तुझे मार डाला होता!' तब बेटा कहे कि, 'आपने मार नहीं डाला, वही तो आश्चर्य है न!' ऐसा नाटक होनेवाला हो तो किस तरह मारोगे! ऐसे-ऐसे नाटक अनंत प्रकार के हो चुके हैं, अरे! सुनते ही कान के परदे फट जाएँ। अरे! इससे भी तरह-तरह का बहुत कुछ जग में हुआ है इसलिए चेतो जगत् से। अब 'खुद के' देश की ओर मुड़ो, 'स्वदेश' में चलो। परदेश में तो भूत ही भूत है। जहाँ जाओ वहाँ।

कुतिया बच्चों को दूध पिलाती है वह ज़रूरी है, वह कोई उपकार नहीं करती। भैंस का बछड़ा दो दिन भैंस का दूध नहीं पीए तो भैंस को बहुत दुःख होता है। यह तो खुद की ग़रज़ से दूध पिलाते हैं। बाप बेटे को बड़ा करता है वह खुद की ग़रज़ से, उसमें नया क्या किया? वह तो फ़र्ज़ है।

बच्चों के साथ 'ग्लास विद केयर'

प्रश्नकर्ता : दादा, घर में बेटे-बेटियाँ सुनते नहीं हैं, मैं खूब डाँटता हूँ फिर भी कोई असर नहीं होता।

दादाश्री : यह रेलवे के पार्सल पर लेबल लगाया हुआ आपने देखा है? 'ग्लास विद केयर', ऐसा होता है न? वैसे ही घर में भी 'ग्लास विद केयर' रखना चाहिए। अब ग्लास हो और उसे आप हथौड़े मारते रहो तो क्या होगा? वैसे ही घर के लोगों को काँच की तरह सँभालना चाहिए। आपको उस बंडल पर चाहे जितनी भी चिढ़ चढ़ी हो, फिर भी उसे नीचे फेंकोगे? तुरन्त पढ़ लोगे कि 'ग्लास विद केयर'! घर में क्या होता है कि कुछ भी हुआ तो आप तुरंत ही बेटी को कहने लग जाते हो, 'क्यों ये पर्स खो डाला? कहाँ गई थी? पर्स किस तरह खो गया?' यह आप हथौड़े मारते रहते हो। यह 'ग्लास विद केयर' समझ जाए तो फिर स्वरूपज्ञान नहीं दिया हो, फिर भी समझ जाएगा।

इस जगत् को सुधारने का रास्ता ही प्रेम है। जगत् जिसे प्रेम कहता है वह प्रेम नहीं है, वह तो आसक्ति है। बेटी से प्रेम करते हो, लेकिन वह प्याला फोड़ दे, तब प्रेम रहता है? तब तो चिढ़ जाते हैं। मतलब, वह आसक्ति है।

बेटे-बेटियाँ हैं, आपको उनके संरक्षक की तरह, ट्रस्टी की तरह रहना है। उनकी शादी करने की चिंता नहीं करनी होती है। घर में जो हो जाए उसे 'करेक्ट' कहना, 'इन्करेक्ट' कहोगे तो कोई फायदा नहीं होगा। गलत देखनेवाले को संताप होगा। इकलौता बेटा मर गया तो करेक्ट है, ऐसा किसी से नहीं कह सकते। वहाँ तो ऐसा ही कहना पड़ेगा कि, बहुत गलत हो गया। दिखावा करना पड़ेगा। ड्रामेटिक करना पड़ेगा। बाकी अंदर तो करेक्ट ही है, ऐसा करके चलना। प्याला जब तक हाथ में है तब तक प्याला है! फिर गिर पड़े और फूट जाए तो करेक्ट है ऐसा कहना चाहिए। बेटी से कहना कि सँभालकर धीरे से लेना लेकिन अंदर करेक्ट है, ऐसे कहना। यदि क्रोध भरी वाणी नहीं निकले तब फिर सामनेवाले को नहीं लगेगी। मुँह पर बोल देना, केवल उसीको क्रोध नहीं कहते, अंदर-अंदर कुढ़ना भी क्रोध कहलाता है। सहन करना, वह तो डबल क्रोध है। सहन करना यानी दबाते रहना, वह तो जब एक दिन स्प्रिंग की तरह उछलेगा तब पता चलेगा। सहन क्यों करना है? इसका तो ज्ञान से हल ला देना है। चूहे ने मूछें काटी वह 'देखना' है और 'जानना' है, उसमें रोना किसलिए? यह जगत् देखने-जानने के लिए है।

घर, एक बगीचा

एक भाई मुझे कहते हैं कि, 'दादा, घर में मेरी पत्नी ऐसा करती है, वैसा करती है।' तब मैंने कहा कि, 'पत्नी से पूछो कि वह क्या कहती है?' वह कहती है कि मेरा पति ऐसा बेकार है। बिना अक्ल का है। अब इसमें आप सिर्फ खुद के लिए न्याय क्यों खोजते हो? तब वे भाई कहते हैं कि मेरा तो घर बिगड़ गया है। बच्चे बिगड़ गए हैं। बीवी बिगड़ गई है। मैंने कहा, 'कुछ भी नहीं बिगड़ा। आपको उसका ध्यान रखना नहीं आता। आपको अपने घर का ध्यान रखना आना चाहिए।' आपका

घर तो बगीचा है। सत्युग, त्रेता और द्वापरयुग में घर खेत जैसे होते थे। किसी खेत में केवल गुलाब ही, किसी खेत में केवल चंपा, किसी में केवड़ा, ऐसा था। अब इस कलियुग में खेत नहीं रहे, बगीचे बन गए हैं। इसलिए एक गुलाब, एक मोगरा और एक चमेली! अब आप घर में बुज़ुर्ग, गुलाब हों और घर में सबको गुलाब बनाना चाहते हो, दूसरे फूलों से कहते हो कि मेरे जैसा क्यों नहीं है। तू तो सफेद है। तेरा सफेद फूल क्यों आया? गुलाबी फूल ला। ऐसे सामनेवाले को मारते रहते हो! अरे! फूल को देखना तो सीखो। आपको इतना ही करना है कि यह कैसी प्रकृति है? किस प्रकार का फूल है? फल-फूल आए, तब तक पौधे को देखते रहना है कि यह कैसा पौधा है? मुझमें काँटे हैं और इसमें नहीं हैं। मेरा गुलाब का पौधा है, इसका गुलाब का नहीं है। फिर फूल आएँ, तब आप जानो कि 'ओहोहो! यह तो मोगरा है!' तब उसके साथ मोगरे जैसा व्यवहार रखना चाहिए। चमेली हो तो उस अनुसार वर्तन रखना चाहिए। सामनेवाले की प्रकृति के अनुसार वर्तन रखना चाहिए। पहले तो घर में बूढ़े होते थे तब फिर उनके कहे अनुसार बच्चे चलते थे, बहुएँ चलती थीं। जब कि कलियुग में अलग-अलग प्रकृतियाँ हैं, वे किसी से मेल नहीं खाते, इसलिए इस काल में तो घर में सबकी प्रकृति के स्वभाव के साथ एडजस्ट होकर ही काम लेना चाहिए। वह एडजस्ट नहीं होगा तो रिलेशन बिगड़ जाएँगे। इसीलिए बगीचे को सँभालो और गार्डनर बन जाओ। वाइफ की प्रकृति अलग होती है, बेटों की अलग, बेटियों की अलग-अलग प्रकृति होती हैं। यानी कि हरएक की प्रकृति का लाभ उठाओ। यह तो रिलेटिव संबंध हैं, वाइफ भी रिलेटिव है। अरे! यह देह ही रिलेटिव है न! रिलेटिव मतलब यदि उनके साथ बिगाड़ोगे तो वे अलग हो जाएँगे!

किसीको सुधारने की शक्ति इस काल में खत्म हो गई है। इसलिए सुधारने की आशा छोड़ दो, क्योंकि मन-वचन-काया की एकात्मवृत्ति हो तभी सामनेवाला सुधर सकता है, मन में जैसा हो, वैसा वाणी में निकले और वैसा ही वर्तन में हो तभी सामनेवाला सुधरेगा। अभी तो ऐसा है नहीं। घर में हरएक के साथ कैसा व्यवहार रखना है, कि जिससे उसमें नोर्मेलिटी आ सके।

उसमें मूर्छित होने जैसा है ही क्या?

कितने बच्चे तो 'दादा, दादा' कहें, तब दादाजी अंदर खुश होते हैं! अरे! बच्चे 'दादा, दादा' न करे तो क्या 'मामा, मामा' करेंगे? ये बच्चे 'दादा, दादा' करते हैं, लेकिन अंदर समझते हैं कि 'दादा यानी थोड़े समय में मर जानेवाले हैं वे, जो आम अब बेकार हो गए हैं, फेंकने जैसे हैं, उनका नाम दादा!' और दादा अंदर खुश होता है कि मैं दादा बन गया! ऐसा जगत् है।

अरे! पापा से भी यदि बच्चा जाकर मीठी भाषा में कहे कि 'पापा, चलो, मम्मी चाय पीने बुला रही है।' तो पापा अंदर ऐसा गद्गद हो जाता है, ऐसा गद्गद हो जाता है, जैसे साँड मुस्कुराया। एक तो बालभाषा, और मीठी-तोतली भाषा, उसमें भी जब पापा कहे... तब वहाँ तो प्राइम मिनिस्टर हो तो उसका भी कोई हिसाब नहीं। ये तो मन में न जाने क्या मान बैठा है कि मेरे अलावा कोई पापा है ही नहीं। अरे पागल! ये कुत्ते, गधे, बिल्ली, निरे पापा ही है न। कौन पापा नहीं है? ये सब कलह उसीकी है न?

समझ-बूझकर कोई पापा न बने, ऐसा कोई चारित्र किसी के उदय में आए तो उसकी तो आरती उतारनी पड़ेगी। बाकी सभी पापा बनते ही हैं न? बॉस ने ऑफिस में डाँटा हो, और घर पर बेटा 'पापा, पापा' करे तब उस घड़ी सब भूल जाता है और आनंद होता है। क्योंकि यह भी एक प्रकार की मदिरा ही है, जो सबकुछ भुला देती है!

कोई बच्चा न हो और बच्चे का जन्म हो तो वह हँसाता है, पिता को बहुत आनंद करवाता है। जब वह जाता है, तब रुलाता है, उतना ही। इसलिए आपको इतना जान लेना है कि जो आए हैं वे जब जाएँगे, तब क्या-क्या होगा? इसीलिए आज से हँसना ही नहीं। फिर झंझट ही नहीं न! यह तो किस जन्म में बच्चे नहीं थे? कुत्ते, बिल्ली, सब जगह बच्चे-बच्चे और बच्चे ही सीने से लगाए हैं। इस बिल्ली को भी बेटियाँ होती ही हैं न?

व्यवहार नोर्मेलिटीपूर्वक होना चाहिए

इसलिए हरएक में नोर्मेलिटी ला दो। एक आँख में प्रेम और एक

आँख में कठोरता रखना। सख्ती से सामनेवाले को बहुत नुकसान नहीं होता, क्रोध करने से बहुत नुकसान होता है। सख्ती यानी क्रोध नहीं, लेकिन फुफकार। हम भी काम पर जाते हैं तब फुफकार मारते हैं। क्यों ऐसा करते हो? क्यों काम नहीं करते? व्यवहार में जिस तरह जिस भाव की ज़रूरत हो, वहाँ वह भाव उत्पन्न न हो तो वह व्यवहार बिगड़ा हुआ कहलाएगा।

एक व्यक्ति मेरे पास आया। वह बैंक का मेनेजर था। वह मुझसे कहता है कि मेरे घर में मेरी वाइफ को और बच्चों को मैं एक अक्षर भी नहीं कहता। मैं बिल्कुल ठंडा रहता हूँ। मैंने उनसे कहा, 'आप अंतिम प्रकार के बेकार मनुष्य हो। इस दुनिया में किसी काम के नहीं हो आप।' वह व्यक्ति मन में समझा कि मैं ऐसा कहूँगा, तब फिर ये दादा मुझे बड़ा इनाम देंगे। अरे बेवकूफ, इसका इनाम होता होगा? बेटा उल्टा कर रहा हो, तब उसे 'क्यों ऐसा किया? अब ऐसा मत करना।' ऐसे नाटकीय बोलना चाहिए। नहीं तो बेटा ऐसा ही समझेगा कि आप जो कुछ कर रहे हो वह करेक्ट ही है। क्योंकि पिताजी ने एक्सेप्ट किया है। ऐसा नहीं बोले, इसलिए तो सिर पर सवार हो गए हैं। बोलना सब है लेकिन नाटकीय! बच्चों को रात को बैठाकर समझाएँ, बातचीत करें, घर के सभी कोनों में कचरा तो साफ करना पड़ेगा न? बच्चों को ज़रा-सा हिलाने की ही ज़रूरत होती है। वैसे संस्कार तो होते हैं, लेकिन हिलाने की ज़रूरत होती है। उन्हें हिलाने में कोई गुनाह है?

प्रश्नकर्ता : दादा, मेरा बेटा पंद्रह सौ रुपये महीने कमाता है, मैं रिटायर्ड हूँ, उसके साथ रहता हूँ। अब बेटा और बहू मुझे टोकते रहते हैं कि आप ऐसा क्यों करते हो? बाहर क्यों जाते हो? इसलिए मैं उनसे कहनेवाला हूँ कि मैं घर में से चला जाऊँगा।

दादाश्री : खिलाते-पिलाते हैं अच्छी तरह से?

प्रश्नकर्ता : हाँ, दादा।

दादाश्री : तब फिर 'चला जाऊँगा' ऐसा नहीं बोलते। और कभी कहने के बाद में नहीं जा पाएँ, तो अपने बोल खुद को ही निगलने पड़ेंगे।

प्रश्नकर्ता : तब फिर मुझे उन्हें कुछ भी नहीं कहना चाहिए?

दादाश्री : बहुत हुआ तो धीरे से कहना कि ऐसा करो तो अच्छा, फिर मानना न मानना आपकी मरज़ी की बात है। आपकी *धौल* सामनेवाले को लगे ऐसी हो और उससे सामनेवाले में बदलाव होता हो तभी *धौल* मारना और यदि वह पोली *धौल* मारोगे तो वह उल्टा बिफरेगा। उससे बेहतर तो *धौल* नहीं मारना है।

घर में चार बच्चे हों, उनमें से दो की कोई भूल नहीं हो तब भी बाप उन्हें डाँटता रहता है और दूसरे दो भूल करते ही रहते हों, फिर भी उन्हें कुछ नहीं कहता। यह सब उसके पूर्व के रूटकॉज़ के कारण है।

उसकी तो आशा ही मत रखना

प्रश्नकर्ता : बच्चों को चिरंजीवी क्यों कहते होंगे?

दादाश्री : चिरंजीवी नहीं लिखें तो दूसरे शब्द घुस जाएँगे। यह बेटा बड़ा हो और सुखी हो, हमारी अर्थी उठने से पहले उसे सुखी देखें ऐसी भावना है न? फिर भी अंदर मन में ऐसी आशा है कि यह बुढ़ापे में सेवा करे। ये आम के पेड़ क्यों उगाते हैं? आम खाने के लिए। लेकिन आज के बच्चे, वे आम के पेड़ कैसे हैं? उनमें दो ही आम आएँगे और बाप के पास से दूसरे दो आम माँगेंगे। इसलिए आशा मत रखना।

एक भाई कहते हैं कि मेरा बेटा कहता है कि आपको महीने के सौ रुपये भेजूँ? तब वे भाई कहते हैं कि मैंने तो उसे कह दिया कि भाई, मुझे तेरे बासमती की ज़रूरत नहीं है, मेरे यहाँ बाजरा उगता है। उससे पेट भर जाता है। यह नया व्यापार कहाँ शुरू करें? जो है उसमें संतोष है।

'मित्रता', वह भी 'एडजस्टमेन्ट'

प्रश्नकर्ता : बच्चों को मेहमान मानें?

दादाश्री : मेहमान मानने की ज़रूरत नहीं है। इन बच्चों को सुधारने के लिए एक रास्ता है, उनके साथ मित्रता करो। हमने तो बचपन से ही

यह रास्ता चुना था। इसलिए इतने छोटे बच्चे के साथ भी मित्रता है और पचासी साल के बूढ़े के साथ भी मित्रता! बच्चों के साथ मित्रता का सेवन करना चाहिए। बच्चे प्रेम ढूँढते हैं, लेकिन प्रेम उन्हें मिलता नहीं। इसलिए फिर उनकी मुश्किलें वे ही जानें, कह भी नहीं सकते और सह भी नहीं सकते। आज के युवाओं के लिए रास्ता, हमारे पास है। इस जहाज का मस्तूल किस तरफ लेना, वह हमें अंदर से ही रास्ता मिलता है। मेरे पास ऐसा प्रेम उत्पन्न हुआ है कि जो बढ़ता नहीं और घटता भी नहीं। बढ़ता-घटता है वह आसक्ति कहलाती है। जो बढ़े-घटे नहीं वह परमात्म प्रेम है। इसीलिए कोई भी मनुष्य वश में हो जाता है। मुझे किसीको वश में नहीं करना है, फिर भी प्रेम से हरकोई वश में रहता है, हम तो निमित्त हैं।

खरा धर्मोदय ही अब

प्रश्नकर्ता : इस नयी प्रजा में से धर्म का लोप किसलिए होता जा रहा है?

दादाश्री : धर्म का लोप तो हो ही गया है, लोप होना बाकी ही नहीं रहा। अब तो धर्म का उदय हो रहा है। जब लोप हो जाता है, तब उदय की शुरूआत होती है। जैसे इस सागर में भाटा पूरा हो, तब आधे घंटे में ज्वार की शुरूआत होती है। उसी तरह यह जगत् चलता रहता है। ज्वार-भाटा नियम के अनुसार। धर्म के बिना तो मनुष्य जी ही नहीं सकता। धर्म के अलावा दूसरा आधार ही क्या है मनुष्य को?

ये बच्चे तो दर्पण हैं। बच्चों के ऊपर से पता चलता है कि हममें कितनी भूल है।

बाप रातभर सोए नहीं और बेटा आराम से सोता है, उसमें बाप की भूल है। मैंने बाप से कहा कि, 'इसमें तेरी ही भूल है। तूने ही पिछले जन्म में बेटे को सिर पर चढ़ाया था, बहकाया था, और वह भी तेरी किसी लालच की खातिर।' यह तो समझने जैसा है। यह अन्सर्टिफाइड फादर और अन्सर्टिफाइड मदर की कोख से बच्चे जन्मे हैं, उसमें वे क्या करें? बीस-पच्चीस वर्ष के होते हैं, तब बाप बन जाते हैं। अभी तक उनका ही

बाप उन पर चिल्ला रहा होता है! यह तो रामभरोसे फादर बन जाते हैं। इसमें बच्चों का क्या दोष? ये बच्चे हमारे पास सारी भूलें कबूल करते हैं, चोरी की हो, तब भी कबूल कर लेते हैं। आलोचना तो गज़ब का पुरुष हो वहीं पर होती है। हिन्दुस्तान का किसी अद्‌भुत स्टेज में बदलाव हो जाएगा।

संस्कार प्राप्त करवाए, ऐसा चारित्र चाहिए

प्रश्नकर्ता : दादा, घरसंसार पूरा शांतिमय रहे और अंतरात्मा का जतन हो ऐसा कर दीजिए।

दादाश्री : घरसंसार शांतिमय रहे उतना ही नहीं, मगर बच्चे भी हमारा देखकर अधिक संस्कारी बनेंगे, ऐसा है। यह तो सब माँ-बाप का पागलपन देखकर बच्चे भी पागल हो गए हैं, क्योंकि माँ-बाप के आचार-विचार योग्य नहीं है। पति-पत्नी भी जब बच्चे बैठे हों तभी छेड़खानी करते हैं, तब फिर बच्चे बिगड़ेंगे नहीं तो और क्या होगा? बच्चों में कैसे संस्कार पड़ते हैं? मर्यादा तो रखनी चाहिए न? इन अंगारों का कैसा ऑ लगता है? छोटा बच्चा अंगारो का ऑ रखता है न? माँ-बाप के मन फ्रेक्चर हो गए हैं, मन विह्वल हो गए हैं। कैसी भी वाणी बोलते हैं। सामनेवाले को दुःखदायी हो जाए वैसी वाणी बोलते हैं, इसीलिए बच्चे बिगड़ जाते हैं। आप ऐसा बोलते हैं कि पति को दुःख होता है और पति ऐसा बोलता है कि आपको दुःख होता है। यह तो सारी पज़ल खड़ी हो गई है। हिन्दुस्तान में ऐसा नहीं होता। परंतु यह कलियुग का निमित्त है, ऐसा ही है। उसमें भी यह एक गज़ब का विज्ञान निकला है, तो जिसे मिलेगा उसका काम निकल जाएगा।

. . . इसलिए सद्‌भावना की ओर मोड़ो

प्रश्नकर्ता : बच्चे टेढ़े चलें, तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : बच्चे टेढ़े रास्ते जाएँ, तब भी आपको उसे देखते रहना है और जानते रहना है। और मन में भाव तय करना है और प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिए कि इस पर कृपा करो।

आपको तो जो हुआ वही करेक्ट कहना चाहिए। जो भुगते उसीकी भूल है। हुआ वही करेक्ट कहकर चलो तो हल आएगा। भगवान ने कहा, 'तू सुधर तो तेरी हाज़िरी से सब सुधरेगा।'

छोटे बेटे-बेटियों को समझाना चाहिए कि सुबह नहा-धोकर सूर्यपूजा करें और रोज़ संक्षेप में बोलें कि मुझे तथा जगत् को सद्बुद्धि दो, जगत् का कल्याण करो। इतना ही बोलेंगे तो उन्हें संस्कार मिले हैं, ऐसा कहा जाएगा और माँ-बाप का कर्मबंधन छूट जाएगा। यह तो सब अनिवार्य है। माँ-बाप ने पाँच हज़ार का उधार लेकर बेटे को पढ़ाया हो, फिर भी किसी दिन बेटा उद्दंडता करे तो बोलकर बताना नहीं चाहिए कि 'हमने तुझे पढ़ाया।' वह तो आप ड्यूटी बाउन्ड थे, फ़र्ज़ था। फ़र्ज़ था, वह किया। आपको अपना फ़र्ज़ निभाना है।

[५]

समझ से सोहे गृहसंसार

मतभेद में समाधान किस प्रकार?

काल विचित्र आ रहा है। आँधियों पर आँधियाँ आनेवाली हैं! इसलिए सावधान रहना। ये जैसे पवन की आँधियाँ आती हैं न वैसे कुदरत की आँधी आ रही है। मनुष्यों के सिर पर भारी मुश्किलें हैं। शकरकंद भट्ठी में भुनता है, वैसे लोग भुन रहे हैं। किसके आधार पर जी रहे हैं, उसकी खुद को भी समझ नहीं है। अपने आपमें से श्रद्धा भी चली गई है! अब क्या हो? घर में वाइफ के साथ मतभेद हो जाए तो उसका समाधान करना नहीं आता, बच्चों के साथ मतभेद खड़ा हो जाए तो उसका समाधान करना आता नहीं और उलझन में रहता है।

प्रश्नकर्ता : पति तो ऐसा ही कहता है न कि वाइफ समाधान करे, मैं नहीं करूँगा।

दादाश्री : हं... यानी कि लिमिट पूरी हो गई। वाइफ समाधान करे और समाधान न करो तो आपकी लिमिट हो गई पूरी। खरा पुरुष हो न तो वह ऐसा बोले कि वाइफ खुश हो जाए और ऐसे करके गाड़ी आगे बढ़ाए। और आप तो पंद्रह-पंद्रह दिनों तक, महीनों तक गाड़ी खड़ी रखते हो, ऐसा नहीं चलेगा। जब तक सामनेवाले का मन का समाधान नहीं होगा तब तक आपको मुश्किल है। इसीलिए समाधान करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : सामनेवाले का समाधान हो गया, ऐसा किस तरह कहा जाएगा? सामनेवाले का समाधान हो जाए, लेकिन उसमें उसका अहित हो तो?

दादाश्री : वह आपको देखना नहीं है। यदि सामनेवाले का अहित

हो, तो वह सामनेवाले को देखना है। आपको सामनेवाले का हिताहित देखना है, लेकिन आप में, हित देखनेवाले में, आप में शक्ति क्या है? आप अपना ही हित नहीं देख सकते, फिर दूसरे का हित क्या देखते हो? सब अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार हित देखते हैं, उतना हित देखना चाहिए। लेकिन सामनेवाले के हित की खातिर टकराव खड़ा हो, ऐसा नहीं होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : सामनेवाले का समाधान करने का हम प्रयत्न करें, लेकिन उसमें परिणाम अलग ही आनेवाला है, ऐसा हमें पता हो तो उसका क्या करना चाहिए?

दादाश्री : परिणाम कुछ भी आए, आपको तो 'सामनेवाले का समाधान करना है' इतना निश्चित रखना है। समभाव से *निकाल* करने का निश्चित करो, फिर *निकाल* हो या न हो वह पहले से देखना नहीं है। और *निकाल* होगा। आज नहीं तो दूसरे दिन होगा, तीसरे दिन होगा, गाढ़ा हो तो दो वर्ष में, तीन वर्ष में या चार वर्ष में होगा। वाइफ के ऋणानुबंध बहुत गाढ़ होते हैं, बच्चों के गाढ़ होते हैं, माँ-बाप के गाढ़ होते हैं, वहाँ ज़रा ज़्यादा समय लगता है। ये सब अपने साथ में ही होते हैं, वहाँ *निकाल* धीरे-धीरे होता है। लेकिन हमने निश्चित किया है कि कभी न कभी 'हमें समभाव से *निकाल* करना ही है', इसलिए एक दिन उसका *निकाल* होकर रहेगा, उसका अंत आएगा। जहाँ गाढ़ ऋणानुबंध हों, वहाँ बहुत जागृति रखनी पड़ती है, इतना छोटा-सा साँप हो लेकिन सावधान, और सावधान ही रहना पड़ता है। और यदि बेखबर रहेंगे, अजागृत रहेंगे तो समाधान नहीं होगा। सामनेवाला व्यक्ति बोल जाए और आप भी बोलो, बोल लिया उसमें हर्ज नहीं है परंतु बोलने के पीछे ऐसा निश्चय है कि 'समभाव से *निकाल* करना है' इसलिए आपको द्वेष नहीं रहता। बोला जाना, वह *पुद्गल* का है और द्वेष रहना, उसके पीछे खुद का आधार है। इसलिए 'हमें तो समभाव से *निकाल* करना है', ऐसे निश्चित करके काम करते जाओ, हिसाब चुकता हो ही जाएँगे। और आज माँगनेवाले को नहीं दे पाए तो कल दिया जाएगा, होली पर दिया जाएगा, नहीं तो दिपावली पर दिया जाएगा। लेकिन माँगनेवाला ले ही जाएगा।

इस जगत् के लोग हिसाब चुकाने के बाद अर्थी में जाते हैं। इस जन्म के तो चुका ही देता है, किसी भी तरह से, और फिर नये बाँधता है वे अलग। अब हम नये बाँधते नहीं है और पुराने इस भव में चुकता हो ही जानेवाले हैं। सारा हिसाब चुकता हो गया इसलिए भाई चले अर्थी लेकर! जहाँ किसी भी खाते में बाकी रहा हो, वहाँ थोड़े दिन अधिक रहना पड़ेगा। इस भव का इस देह के आधार पर सब चुकता हो ही जाता है। फिर यहाँ जितनी गाँठें डाली हों, वे साथ में ले जाता है और फिर वापस नया हिसाब शुरू होता है।

...इसलिए टकराव टालो

इसलिए जहाँ हो वहाँ से टकराव को टालो। यह टकराव करके इस लोक का तो बिगाड़ते हैं परंतु परलोक भी बिगाड़ते हैं! जो इस लोक का बिगाड़ता है, वह परलोक का बिगाड़े बिना रहता ही नहीं! जिसका यह लोक सुधरे, उसका परलोक सुधरता है। इस भव में आपको किसी भी प्रकार की अड़चन नहीं आई तो समझना कि परभव में भी अड़चन है ही नहीं और अगर यहाँ अड़चन खड़ी की तो वे सब वहीं पर आनेवाली हैं।

प्रश्नकर्ता : टकराव में टकराव करें तो क्या होता है?

दादाश्री : सिर फूट जाता है! एक व्यक्ति मुझे संसार पार करने का रास्ता पूछ रहा था। उसे मैंने कहा कि टकराव टालना। मुझे पूछा कि 'टकराव टालना मतलब क्या?' तब मैंने कहा कि 'आप सीधे चल रहे हों और बीच में खंभा आए तो घूमकर जाना चाहिए या खंभे के साथ टकराना चाहिए?' तब उसने कहा, 'ना! टकराएँगे तो सिर फूट जाएगा।'

यह पत्थर ऐसे बीच में पड़ा हुआ हो तो क्या करना चाहिए? घूमकर जाना चाहिए। यह भैंस का भाई रास्ते में बीच में आए तो क्या करोगे? भैंस के भाई को पहचानते हो न आप? वह आ रहा हो तो घूमकर जाना पड़ेगा, नहीं तो सिर मारकर तोड़ डालेगा। वैसे ही यदि मनुष्य आ रहे हों तो भी घूमकर जाना पड़ता है। वैसा ही टकराव का है। कोई मनुष्य डाँटने आए, शब्द बमगोले जैसे आ रहे हों तब आप समझ जाना कि 'टकराव टालना है।' आपके मन पर असर बिल्कुल नहीं हो, फिर भी अचानक

कुछ असर हो गया, तब आप समझना कि सामनेवाले के मन का असर आप पर पड़ा, तब आपको खिसक जाना चाहिए। वे सब टकराव हैं। इसे जैसे-जैसे समझते जाओगे, वैसे-वैसे टकराव को टालते जाओगे, टकराव टालने से मोक्ष होता है। यह जगत् टकराव ही है, स्पंदन स्वरूप है।

एक व्यक्ति को सन् इक्यावन में यह एक शब्द दिया था। 'टकराव टाल' कहा था और ऐसे उसको समझाया था। मैं शास्त्र पढ़ रहा था, तब उसने मुझे आकर कहा कि दादा, मुझे कुछ दीजिए। वह मेरे यहाँ नौकरी करता था, तब मैंने उससे कहा, 'तुझे क्या दें? तू सारी दुनिया के साथ लड़कर आता है, मारपीट करके आता है।' रेल्वे में भी लड़ाई-झगड़ा करता है, यों तो पैसों का पानी करता है और रेल्वे में जो नियमानुसार भरना है, वह भी नहीं भरता और ऊपर से झगड़ा करता है, यह सब मैं जानता था। इसलिए मैंने उसे कहा कि तू टकराव टाल। दूसरा कुछ तुझे सीखने की ज़रूरत नहीं है। वह आज तक अभी भी पालन कर रहा है। अभी आप उसके साथ टकराव करने के नये-नये तरीके ढूँढ निकालो, तरह-तरह की गालियाँ दो, फिर भी वह ऐसे खिसक जाएगा।

इसलिए टकराव टालो, टकराव से यह जगत् उत्पन्न हुआ है। उसे भगवान ने 'बैर से उत्पन्न हुआ है', ऐसा कहा है। हरएक मनुष्य, अरे जीव मात्र बैर रखता है। ज़्यादा कुछ हुआ कि बैर रखे बगैर रहता नहीं है। वह फिर साँप हो, बिच्छू हो, बैल हो या भैंसा हो, कोई भी हो, परंतु बैर रखता है। क्योंकि सबमें आत्मा है। आत्मशक्ति सभी में एक-सी है। क्योंकि यह *पुद्गल* की कमज़ोरी के कारण सहन करना पड़ता है। परंतु सहन करने के साथ ही वह बैर रखे बगैर रहता नहीं है और अगले जन्म में वह उनका बैर वसूलता है वापस!

सहन? नहीं, सोल्युशन लाओ

प्रश्नकर्ता : दादा, आपने जो 'टकराव टालना' कहा है, मतलब सहन करना ऐसा अर्थ होता है न?

दादाश्री : टकराव टालने का मतलब सहन करना नहीं है। सहन करोगे तो कितना करोगे? सहना करना और स्प्रिंग दबाना, वह दोनों एक

जैसा है। स्प्रिंग दबाई हुई कितने दिन रहेगी? इसलिए सहन करना तो सीखना ही मत, सोल्युशन लाना सीखो।

अज्ञान दशा में तो सहन ही करना होता है। फिर एक दिन स्प्रिंग उछले तो सब गिरा दे, लेकिन वह तो कुदरत का नियम ही ऐसा है।

जगत् का ऐसा नियम ही नहीं है कि किसी के कारण आपको सहन करना पड़े। दूसरों के हिसाब से जो कुछ सहन करना पड़ता है, वह आपका ही हिसाब होता है। परंतु आपको पता नहीं चलता कि यह कौन-से खाते का, कहाँ का माल है? इसीलिए आप ऐसा समझते हैं कि 'इसने नया माल उधार देना शुरू किया।' नया कोई देता ही नहीं, दिया हुआ ही वापस आता है। अपने ज्ञान में सहन नहीं करना होता। ज्ञान से जाँच लेना चाहिए कि सामनेवाला 'शुद्धात्मा' है। यह जो आया है वह मेरे ही कर्म के उदय से आया है, सामनेवाला तो निमित्त है। फिर यह ज्ञान इटसेल्फ ही पज़ल सॉल्व कर देगा।

प्रश्नकर्ता : उसका अर्थ ऐसा हुआ कि मन में समाधान करना चाहिए कि यह माल था वह वापस आया ऐसा न?

दादाश्री : वह खुद शुद्धात्मा है और उसकी प्रकृति है। प्रकृति यह फल देती है। हम शुद्धात्मा हैं, वह भी शुद्धात्मा हैं। अब दोनों को 'वायर' कहाँ लागू पड़ता है? वह प्रकृति और यह प्रकृति, दोनों आमने-सामने सब हिसाब चुका रहे हैं। उसमें इस प्रकृति के कर्म का उदय है इसलिए वह कुछ देता है। इसीलिए आपको कहना चाहिए कि यह अपने ही कर्म का उदय है और सामनेवाला निमित्त है, वह दे गया इसलिए अपना हिसाब चोखा हो गया। जहाँ यह सोल्युशन हो, वहाँ फिर सहन करने का रहता ही नहीं न?

सहन करने से क्या होगा? ऐसा स्पष्ट नहीं समझाओगे तो एक दिन वह स्प्रिंग कूदेगी। कूदी हुई स्प्रिंग आपने देखी है? मेरी स्प्रिंग बहुत कूदती थी। कई दिनों तक मैं बहुत सहन कर लेता था और फिर एक दिन स्प्रिंग उछलती तो सभी उड़ाकर रख देता। यह सब अज्ञान दशा का, मुझे उसका खयाल है। वह मेरे लक्ष्य में है। इसलिए तो कह देता हूँ न कि सहन करना

मत सीखना। वह तो अज्ञानदशा में सहन करने का होता है। अपने यहाँ तो विश्लेषण कर देना है कि इसका परिणाम क्या, उसका परिणाम क्या, खाते में अच्छी तरह से देख लेना चाहिए, कोई वस्तु खाते की बाहर की नहीं होती।

हिसाब चुके या 'कॉज़ेज़' पड़े?

प्रश्नकर्ता : नया लेन-देन न हो वह किस तरह होगा?

दादाश्री : नया लेन-देन किसे कहते हैं? कॉज़ेज़ को नया लेन-देन कहते हैं, यह तो इफेक्ट ही है सिर्फ! यहाँ जो-जो होता है वह सब इफेक्ट ही है और कॉज़ेज़ अदर्शनीय है। इन्द्रियों से कॉज़ेज़ दिखते नहीं है, जो दिखते हैं वे सब इफेक्ट है। इसलिए हमें समझना चाहिए कि हिसाब चुक गया। नया जो होता है, वह तो अंदर हो रहा है, वह अभी नहीं दिखेगा, वह तो जब परिणाम आएगा तब। अभी वह तो हिसाब में नहीं लिखा गया है, अभी तो कच्चे हिसाब में से अभी तो बहीखाते में आएगा।

प्रश्नकर्ता : पिछलीवाली पक्की बही का हिसाब अभी आता है?

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : यह टकराव होता है, वह 'व्यवस्थित' के आधार पर ही होता होगा न?

दादाश्री : हाँ, टकराव है वह 'व्यवस्थित' के आधार पर है, परंतु ऐसा कब कहलाएगा? टकराव हो जाने के बाद। 'मुझे टकराव नहीं करना है', ऐसा आपका निश्चय है और सामने खंभा दिखे, तब फिर आप समझ जाते हो कि खंभा आ रहा है, घूमकर जाना पड़ेगा, टकराना तो नहीं है। लेकिन इसके बावजूद भी टकरा गए, तो कहना चाहिए कि व्यवस्थित है। पहले से ही 'व्यवस्थित है' ऐसा मानकर चलोगे, तब तो 'व्यवस्थित' का दुरुपयोग हुआ कहलाएगा।

'न्याय स्वरूप', वहाँ उपाय तप

प्रश्नकर्ता : टकराव टालने की, समभाव से *निकाल* करने की

हमारी वृत्ति होती है, फिर भी सामनेवाला व्यक्ति हमें परेशान करे, अपमान करे, तो क्या करना चाहिए हमें?

दादाश्री : कुछ नहीं। वह अपना हिसाब है, तो 'उसका समभाव से *निकाल* करना है' आपको ऐसा निश्चित रखना चाहिए। आपको अपने नियम में ही रहना चाहिए, और अपने आप अपना पज़ल सॉल्व करते रहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : सामनेवाला व्यक्ति अपना अपमान करे और हमें अपमान लगे, उसका कारण अपना अहंकार है?

दादाश्री : सच में तो सामनेवाला अपमान करता है, तब आपका अहंकार पिघला देता है, और वह भी ड्रामेटिक अहंकार। जितना एक्सेस अहंकार होता है वह पिघलता है, उसमें क्या बिगड़ जानेवाला है? ये कर्म छूटने नहीं देते हैं। हमें तो, छोटा बच्चा सामने हो तो भी कहना चाहिए, 'अब छुटकारा कर।'

आपके साथ किसी ने अन्याय किया और आपको ऐसा हो कि मेरे साथ यह अन्याय क्यों किया, तो आपको कर्म बँधेगा। क्योंकि आपकी भूल को लेकर सामनेवाले को अन्याय करना पड़ता है। अब यहाँ कहाँ मति पहुँचे? जगत् तो कलह करके रख देता है! भगवान की भाषा में कोई न्याय भी नहीं करता और अन्याय भी नहीं करता। करेक्ट करता है। अब इन लोगों की मति कहाँ से पहुँचे? घर में मतभेद कम हों, तोड़फोड़ कम हो, आसपासवालों का प्रेम बढ़े तो समझना कि बात समझ में आ गई। नहीं तो बात समझ में आई ही नहीं।

ज्ञान कहता है कि तू न्याय खोजेगा तो तू मूर्ख है! इसलिए उसका उपाय है, तप!

किसी ने आपके साथ अन्याय किया हो तो वह भगवान की भाषा में करेक्ट हैं, जिसे संसार की भाषा में गलत किया, ऐसा कहेंगे।

यह जगत् न्यायस्वरूप है, गप्प नहीं है। एक मच्छर भी जाए ही आपको छू जाए, ऐसा नहीं है। मच्छर ने छुआ यानी आपका कोई कारण

है। बाकी यों ही एक स्पंदन भी आपको छुए ऐसा नहीं है। आप संपूर्ण स्वतंत्र हो। किसी की दख़ल आपमें नहीं है।

प्रश्नकर्ता : टकराव में मौन हितकारी है या नहीं?

दादाश्री : मौन तो बहुत हितकारी कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : परंतु दादा, बाहर मौन होता है, परंतु अंदर तो बहुत घमासान चल रहा होता है, उसका क्या होगा?

दादाश्री : वह काम का नहीं है। मौन तो सबसे पहले मन का चाहिए।

उत्तम तो, एडजस्ट एवरीव्हेर

प्रश्नकर्ता : जीवन में स्वभाव नहीं मिलते इसीलिए टकराव होता है न?

दादाश्री : टकराव होता है, उसीका नाम संसार है!

प्रश्नकर्ता : टकराव होने का कारण क्या है?

दादाश्री : अज्ञानता।

प्रश्नकर्ता : सिर्फ सेठ के साथ ही टकराव होता है ऐसा नहीं है, सबके साथ होता है, उसका क्या?

दादाश्री : हाँ, सबके साथ होता है। अरे! इस दीवार के साथ भी होता है।

प्रश्नकर्ता : उसका रास्ता क्या होगा?

दादाश्री : हम बताते हैं, फिर दीवार के साथ भी टकराव नहीं होगा। इस दीवार के साथ टकराता है उसमें किसका दोष? जिसे लगा उसका दोष। उसमें दीवार को क्या? चिकनी मिट्टी आए और आप फिसल जाएँ उसमें भूल आपकी है। चिकनी मिट्टी तो निमित्त है। आपको निमित्त को समझकर अंदर उँगलियाँ गड़ा देनी पड़ेंगी। चिकनी मिट्टी तो होती ही है, और फिसला देना, वह तो उसका स्वभाव ही है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन कलह खड़ा होने का कारण क्या है? स्वभाव नहीं मिलता, इसलिए?

दादाश्री : अज्ञानता है इसलिए। संसार उसका नाम कि किसी का किसी से स्वभाव मिलता ही नहीं। यह 'ज्ञान' मिले उसका एक ही रास्ता है, 'एडजस्ट एवरीव्हेर'। कोई तुझे मारे फिर भी तुझे उसके साथ एडजस्ट हो जाना है।

प्रश्नकर्ता : वाइफ के साथ कई बार टकराव हो जाता है। मुझे ऊब भी होती है।

दादाश्री : ऊब हो उतना ही नहीं, लेकिन कुछ तो जाकर समुद्र में डूब मरते हैं, ब्राँडी पीकर आते हैं।

सबसे बड़ा दु:ख किसका है? डिसएडजस्टमेन्ट का, वहाँ एडजस्ट एवरीव्हेर करें, तो क्या हर्ज है?!

प्रश्नकर्ता : उसमें तो पुरुषार्थ चाहिए।

दादाश्री : कुछ भी पुरुषार्थ नहीं, मेरी आज्ञा पालनी है कि 'दादा' ने कहा है कि एडजस्ट एवरीव्हेर। तो एडजस्ट होता रहेगा। बीवी कहे कि 'आप चोर हो।' तो कहना कि 'यु आर करेक्ट।' और थोड़ी देर बाद वह कहे कि 'नहीं, आपने चोरी नहीं की।' तब भी, 'यु आर करेक्ट' कहना।

ऐसा है, जितना ब्रह्मा का एक दिन, उतनी अपनी पूरी ज़िंदगी है! ब्रह्मा के एक दिन के बराबर जीना है और यह क्या धाँधली? शायद यदि ब्रह्मा के सौ वर्ष जीने के होते तब तो समझो कि ठीक है, एडजस्ट क्यों हों? 'दावा कर' कहेंगे। लेकिन यह तो जल्दी पूरा करना हो उसके लिए क्या करना पड़ेगा? एडजस्ट हो जाओगे या दावा दायर करोगे, कहें? लेकिन यह तो एक दिन ही है, यह तो जल्दी पूरा करना है। जो काम जल्दी पूरा करना हो उसे क्या करना पड़ता है? एडजस्ट होकर छोटा कर देना चाहिए, नहीं तो खिंचता ही जाएगा या नहीं खिंचेगा?

बीवी के साथ लड़ें तो रात को नींद आएगी क्या? और सुबह नाश्ता भी अच्छा नहीं मिलेगा।

हमने इस संसार की बहुत सूक्ष्म खोज की है। अंतिम प्रकार की खोज करके हम ये सब बातें कर रहे हैं। व्यवहार में किस तरह रहना चाहिए, वह भी देते हैं और मोक्ष में किस तरह जा सकते हैं, वह भी देते हैं। आपकी अड़चनें किस तरह से कम हों, वही हमारा हेतु है।

घर में *चलण* छोड़ना तो पड़ेगा न?

घर में आपको अपना *चलण* (वर्चस्व, सत्ता) नहीं रखना चाहिए, जो व्यक्ति *चलण* रखता है उसे भटकना पड़ता है। हमने भी हीराबा से कह दिया था कि 'हम खोटा सिक्का हैं। हमें भटकना नहीं पुसाता न!' नहीं चलनेवाला सिक्का हो उसका क्या करते हैं? उसे भगवान के पास बैठे रहना होता है। घर में आपका *चलण* चलाने जाओगे, तो टकराव होगा न? अब तो समभाव से *निकाल* करना है। घर में पत्नी के साथ 'फ्रेन्ड' की तरह रहना चाहिए। वे आपकी 'फ्रेन्ड' और आप उनके 'फ्रेन्ड'। और यहाँ कोई *नोंध* (अत्यंत राग अथवा द्वेष सहित लम्बे समय तक याद रखना, नोट करना) नहीं करता कि *चलण* तेरा था या उनका था। म्युनिसिपालिटी में नोट नहीं करते और भगवान के वहाँ भी नोट नहीं होता। आपको नाश्ते से लेना-देना है या *चलण* से? इसलिए किस रास्ते नाश्ता अच्छा मिलेगा वह ढूँढ निकालो। यदि म्युनिसिपालिटीवाले नोट करके रखते कि घर में किसका *चलण* है, तो मैं भी एडजस्ट नहीं होता। यह तो कोई बाप भी नोट नहीं करता।

आपके पैर दुःखते हों और बीवी पैर दबा रही हो, उस समय कोई आए और यह देखकर कहे कि ओहोहो! आपका तो घर में *चलण* बहुत अच्छा है। तब आप कहना कि, 'ना, *चलण* उनका ही है।' और यदि आप कहो कि हाँ, हमारा ही *चलण* है, तो वह पैर दबाना छोड़ देगी। उससे बेहतर तो आप कहना कि 'ना, उनका ही *चलण* है।'

प्रश्नकर्ता : उसे मक्खन लगाना नहीं कहेंगे?

दादाश्री : ना, वह स्ट्रेट वे कहलाता है, और दूसरे सब टेढ़े-मेढ़े रास्ते कहलाते हैं। इस दूषमकाल में सुखी होने का, मैं कहता हूँ वह, अलग रास्ता है। मैं इस काल के लिए कह रहा हूँ। आप अपना नाश्ता क्यों बिगाड़ें?

सुबह में नाश्ता बिगड़े, दोपहर में नाश्ता बिगड़े, सारा दिन बिगड़ेगा।

रिएक्शनरी प्रयत्न नहीं ही किए जाएँ

प्रश्नकर्ता : दोपहर को वापस सुबह का टकराव भूल भी जाते हैं और शाम को वापस नया हो जाता है।

दादाश्री : वह हम जानते हैं, टकराव किस शक्ति से होता है, वह टेढ़ा बोलती है उसमें कौन-सी शक्ति काम कर रही है। बोलकर वापस एडजस्ट हो जाते हैं। वह सब ज्ञान से समझ में आए ऐसा है, फिर भी एडजस्ट होना चाहिए जगत् में। क्योंकि हर एक वस्तु एन्डवाली होती है। और शायद वह लम्बे समय तक चले, फिर भी आप उसे हेल्प नहीं करते, अधिक नुकसान करते हो। अपने आपको नुकसान करते हो और सामनेवाले का भी नुकसान होता है! उसे कौन सुधार सकेगा? जो सुधरा हुआ हो वही सुधार सकेगा। जिसका खुद का ही ठिकाना नहीं हो वह सामनेवाले को किस तरह सुधार सकेगा?

प्रश्नकर्ता : हम सुधरे हुए हों तो सुधार सकेंगे न?

दादाश्री : हाँ, सुधार सकोगे।

प्रश्नकर्ता : सुधरे हुए की परिभाषा क्या है?

दादाश्री : सामनेवाले मनुष्य को आप डाँट रहे हों तब भी उसे उसमें प्रेम दिखे। आप उलाहना दो, तब भी उसे आपमें प्रेम ही दिखे की अहोहो! मेरे फादर का मुझ पर कितना प्रेम है! उलाहना दो, परंतु प्रेम से दोगे तो सुधरेंगे। ये कॉलेज में यदि प्रोफेसर उलाहना देने जाएँ तो प्रोफेसरों को सब मारेंगे।

सामनेवाला सुधरे, उसके लिए आपके प्रयत्न रहने चाहिए। लेकिन यदि प्रयत्न रिएक्शनरी हों, वैसे प्रयत्नो में नहीं पड़ना चाहिए। आप उसे झिड़कें और उसे खराब लगे वह प्रयत्न नहीं कहलाता। प्रयत्न अंदर करने चाहिए, सूक्ष्म प्रकार से! स्थूल तरह से यदि आपको नहीं करना आता तो सूक्ष्म प्रकार से प्रयत्न करने चाहिए। अधिक उलाहना नहीं देना हो तो थोड़े में ही कह देना चाहिए कि हमें यह शोभा नहीं देता । बस इतना ही कहकर

बंद रखना चाहिए। कहना तो पड़ता है लेकिन कहने का तरीका होता है।

...नहीं तो प्रार्थना का एडजस्टमेन्ट

प्रश्नकर्ता : सामनेवाले को समझाने के लिए मैंने अपना पुरुषार्थ किया, फिर वह समझे या नहीं समझे, वह उसका पुरुषार्थ?

दादाश्री : इतनी ही आपकी ज़िम्मेदारी है कि आप उसे समझा सकते हो। फिर वह नहीं समझे तो उसका उपाय नहीं है। फिर आपको इतना कहना है कि 'दादा भगवान! इनको सद्बुद्धि देना।' इतना कहना पड़ेगा। कुछ उसे ऊपर नहीं लटका सकते, गप्प नहीं है। यह 'दादा' के एडजस्टमेन्ट का विज्ञान है, आश्चर्यकारी एडजस्टमेन्ट है यह। और जहाँ एडजस्ट नहीं हो पाए, वहाँ उसका स्वाद तो आता ही रहेगा न आपको? यह डिसएडजस्टमेन्ट ही मूर्खता है। क्योंकि वह जाने कि अपना स्वामित्व मैं छोड़ूँगा नहीं, और मेरा ही *चलण* रहना चाहिए। तो सारी ज़िंदगी भूखा मरेगा और एक दिन 'पोइज़न' पड़ेगा थाली में। सहज चलता है, उसे चलने दो न! यह तो कलियुग है! वातावरण ही कैसा है? इसलिए बीवी कहे कि आप नालायक हो, तो कहना 'बहुत अच्छा।'

प्रश्नकर्ता : हमें बीवी 'नालायक' कहे, वह तो उकसाया हो ऐसा लगता है।

दादाश्री : तो फिर आपको क्या उपाय करना चाहिए? तू दो बार नालायक है, उसे ऐसा कहना है? और उससे कुछ आपकी नालायकी मिट गई? आप पर मुहर लगी, मतलब आप दो बार मुहर लगाएँगे? फिर नाश्ता बिगड़ेगा, सारा दिन बिगड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : एडजस्टमेन्ट की बात है, उसके पीछे भाव क्या है फिर कहाँ पहुँचना है?

दादाश्री : भाव शांति का है, शांति का हेतु है। अशांति पैदा नहीं करने का युक्ति है।

'ज्ञानी' के पास से एडजस्टमेन्ट सीखें

एक भाई थे। वे रात को दो बजे न जाने क्या-क्या करके घर आते

होंगे, उसका वर्णन करने जैसा नहीं है। आप समझ जाओ। तब फिर घर में सबने निश्चय किया कि इनको डाँटें या घर में नहीं घुसने दें? क्या उपाय करें? वे उसका अनुभव कर आए। बड़े भाई कहने गए तो उसने बड़े भाई से कहा कि, 'आपको मारे बगैर छोडूँगा नहीं।' फिर घरवाले सभी मुझे पूछने आए कि, 'इसका क्या करें? यह तो ऐसा बोलता है।' तब मैंने घरवालों को कह दिया कि किसीको उसे एक अक्षर भी नहीं कहना है। आप बोलोगे तो वह ज़्यादा उद्दंड हो जाएगा, और घर में घुसने नहीं दोगे तो वह विद्रोह करेगा। उसे जब आना हो, तब आए और जब जाना हो, तब जाए। आपको राइट भी नहीं बोलना है और रोंग भी नहीं बोलना है, राग भी नहीं रखना है और द्वेष भी नहीं रखना है, समता रखनी है, करुणा रखनी है। तब तीन-चार वर्षों बाद वह भाई सुधर गया। आज वह भाई धंधे में बहुत मदद करता है। जगत् निकम्मा नहीं है, परंतु काम लेना आना चाहिए। सभी भगवान हैं, और हरएक अलग-अलग काम लेकर बैठे हैं, इसलिए नापसंद जैसा रखना मत।

आश्रित को कुचलना, घोर अन्याय

प्रश्नकर्ता : मेरी पत्नी के साथ मेरी बिल्कुल नहीं बनती। चाहे जितनी निर्दोष बात करूँ, मेरा सच हो फिर भी वह उल्टा समझती है। बाहर का जीवनसंघर्ष चलता है, लेकिन यह व्यक्तिसंघर्ष क्या होगा?

दादाश्री : ऐसा है, मनुष्य खुद के हाथ के नीचेवाले मनुष्यों को इतना अधिक कुचलता है, इतना अधिक कुचलता है कि कुछ बाकी ही नहीं रखता। खुद के हाथ के नीचे कोई मनुष्य आया हो, फिर वह स्त्री के रूप में हो या पुरुष के रूप में हो, खुद की सत्ता में आया उसे कुचलने में कुछ बाकी ही नहीं रखते।

घर के लोगों के साथ कलह कभी भी नहीं करनी चाहिए। जब उसी कमरे में पड़े रहना है वहाँ कलह किस काम की? किसीको परेशान करके खुद सुखी हो जाएँ, ऐसा कभी भी नहीं होता, और हमें तो सुख देकर सुख लेना है। हम घर में सुख दें तो ही सुख मिलेगा और चाय-पानी भी ठीक से बनाकर देंगे, नहीं तो चाय-पानी भी बिगाड़कर देंगे।

कमज़ोर पति पत्नी पर सूरमा। जो अपने संरक्षण में हों, उनका भक्षण किस तरह किया जाए? जो खुद के हाथ के नीचे आया हो उसका रक्षण करना, वही सबसे बड़ा ध्येय होना चाहिए। उससे गुनाह हुआ हो तो भी उसका रक्षण करना चाहिए। ये पाकिस्तानी सैनिक अभी सब यहाँ कैदी हैं, फिर भी उन्हें कैसा रक्षण देते हैं! तब ये तो घर के ही है न! ये तो बाहरवालों के सामने म्याऊँ हो जाते हैं, वहाँ झगड़ा नहीं करते और घर पर ही सब करते हैं। जो खुद की सत्ता के नीचे हो, उसे कुचलते रहते हैं और *ऊपरी* को साहब-साहब करते हैं। अभी यह पुलिसवाला डाँटे तो साहब-साहब कहेगा और घर पर वाइफ सच्ची बात कहती हो, तब उसे सहन नहीं होता और उसे डाँटता है, 'मेरे चाय के कप में चींटी कहाँ से आई?' ऐसा करके घरवालों को डराता है। उसके बदले तो शांति से चींटी निकाल ले न! घरवालों को डराता है और पुलिसवाले के सामने काँपता है! अब यह घोर अन्याय कहलाता है। हमें यह शोभा नहीं देता। स्त्री तो खुद की साझेदार कहलाती है। साझेदार के साथ क्लेश? यह तो क्लेश होता हो वहाँ कोई रास्ता निकालना पड़ता है, समझाना पड़ता है। घर में रहना है तो क्लेश किसलिए?

साइन्स, समझने जैसा

प्रश्नकर्ता : हमें क्लेश नहीं करना हो, परंतु सामनेवाला आकर झगड़े तो क्या करें? उसमें एक जागृत हो परंतु सामनेवाला क्लेश करे तो वहाँ तो क्लेश होगा ही न?

दादाश्री : इस दीवार के साथ लड़े, तो कितने समय तक लड़ सकेगा? इस दीवार से कभी सिर टकरा जाए तो उसके साथ क्या करना चाहिए? सिर टकराया यानी हमारा दीवार के साथ में झगड़ा हो गया, तो क्या हमें दीवार को मारना चाहिए? उसी तरह ये जो खूब क्लेश करवाते हैं, तो वे सब दीवारें हैं! इसमें सामनेवाले को क्या देखना? हमें अपने आप समझ जाना चाहिए कि यह दीवार जैसी है, ऐसा समझना चाहिए। फिर कोई मुश्किल नहीं।

प्रश्नकर्ता : हम मौन रहें तो सामनेवाले पर उल्टा असर होता है कि इनका ही दोष है, और वे अधिक क्लेश करते हैं।

दादाश्री : यह तो आपने मान लिया है कि मैं मौन रहा इसलिए ऐसा हुआ। रात को मनुष्य उठा और बाथरूम में जाते समय अंधेरे में दीवार के साथ टकरा गया, तो वहाँ पर आप मौन रहे, क्या इसलिए वह टकराई?

मौन रहो या बोलो, उसे स्पर्श नहीं करता है, कोई लेना-देना नहीं है। आपके मौन रहने से सामनेवाले पर असर होता है, ऐसा कुछ नहीं होता, या अपने बोलने से सामनेवाले पर असर होता है ऐसा भी कुछ नहीं होता। ओन्ली साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स, मात्र वैज्ञानिक सांयोगिक प्रमाण हैं। किसी की इतनी-सी भी सत्ता नहीं है। इतनी-सी भी सत्ता के बगैर यह जगत् है, उसमें कोई क्या करनेवाला है? इस दीवार के पास यदि सत्ता होती तो इन्हें भी सत्ता होती! आपके पास इस दीवार से झगड़ने की सत्ता है? उसी तरह सामनेवाले के साथ चीखने-चिल्लाने का क्या अर्थ? उसके हाथ में सत्ता ही नहीं है, वहाँ! इसीलिए आप दीवार जैसे बन जाओ न! आप पत्नी को झिड़कते रहो, तो उसके अंदर जो भगवान बैठे हैं, वे *नोंध* करते हैं कि यह मुझे झिड़कता है। और जब वह आपको झिड़के तब आप दीवार जैसे हो जाओगे तो आपके अंदर बैठे भगवान आपको हेल्प करेंगे।

जो भुगते उसीकी भूल

प्रश्नकर्ता : कुछ ऐसे होते हैं कि हम कितना भी अच्छा व्यवहार करें, फिर भी वे समझते नहीं है।

दादाश्री : वे न समझें तो उसमें आपकी ही भूल है कि वह समझदार क्यों नहीं मिला आपको? उसका संयोग आपको ही क्यों मिला? जब-जब हमें कुछ भी भुगतना पड़ता है, तो वह भुगतना अपनी ही भूल का परिणाम है।

प्रश्नकर्ता : तो हमें ऐसा समझना चाहिए कि मेरे कर्म ही ऐसे हैं?

दादाश्री : बेशक। अपनी भूल के बिना हमें भुगतना नहीं पड़ता। इस जगत् में ऐसा कोई नहीं कि जो हमें थोड़ा भी, किंचित् मात्र दुःख दे और यदि कोई दुःख देनेवाला है तो वह अपनी ही भूल है। तत्त्व का दोष नहीं है, वह तो निमित्त है। इसलिए भुगते उसकी भूल।

कोई स्त्री और पुरुष दोनों खूब झगड़ रहे हों और फिर उन दोनों के सो जाने के बाद चुपचाप देखने जाओ तो वह स्त्री तो गहरी नींद सो रही होती है और पुरुष ऐसे इधर-उधर करवटें बदल रहा होता है तो समझ जाना कि 'इस पुरुष की ही भूल है सारी, यह स्त्री नहीं भुगत रही।' जिसकी भूल हो वही भुगतता है। और उस घड़ी यदि पुरुष सो रहा हो और स्त्री जाग रही हो तो समझना कि स्त्री की भूल है। 'भुगते उसकी भूल।'

यह विज्ञान तो बहुत बड़ा साइन्स है। मैं जो कहता हूँ, वह बहुत सूक्ष्म साइन्स है। जगत् सारा निमित्त को ही काटने दौड़ता है।

मियाँ-बीवी

बहुत बड़ा, विशाल जगत् है, परंतु यह जगत् खुद के रूम के अंदर है इतना ही मान लिया है और वहाँ भी यदि जगत् मान रहा होता तो अच्छा था। लेकिन वहाँ भी वाइफ के साथ लट्ठबाज़ी करता है! अरे! यह नहीं है तेरा पाकिस्तान!

पत्नी और पति दोनों पड़ोसी के साथ लड़ रहे हों, तब दोनों एकमत और एकजुट होते हैं। पड़ोसी को कहते हैं कि 'आप ऐसे और आप वैसे।' हम समझें कि यह मियाँ-बीवी की टोली अभेद टोली है, नमस्कार करने जैसी है। फिर घर में जाएँ तो बहन से ज़रा चाय में चीनी कम पड़ी हो, तब फिर वह कहेगा कि मैं तुझे रोज़ कहता हूँ कि चाय में चीनी ज़रा ज़्यादा डाल। लेकिन तेरा दिमाग़ ठिकाने नहीं रहता। यह दिमाग़ के ठिकानेवाला घनचक्कर! तेरे ही दिमाग़ का ठिकाना नहीं है न! अरे, किस तरह का है तू? रोज़ जिसके साथ सौदेबाज़ी करनी होती है, वहाँ कलह करनी चाहिए?

आपका किसी के साथ मतभेद होता है?

प्रश्नकर्ता : हाँ, होता है बहुत बार।

दादाश्री : वाइफ के साथ मतभेद होता है?

प्रश्नकर्ता : हाँ, बहुत बार होता है।

दादाश्री : वाइफ के साथ भी मतभेद होता है? वहाँ भी एकता न

रहे तो फिर और कहाँ रखोगे? एकता यानी क्या कि कभी भी मतभेद न पड़े। इस एक व्यक्ति के साथ निश्चित करना है कि आपमें और मुझमें मतभेद नहीं पड़े। इतनी एकता करनी चाहिए। ऐसी एकता की है आपने?

प्रश्नकर्ता : ऐसा कभी सोचा ही नहीं। यह पहली बार सोच रहा हूँ।

दादाश्री : हाँ, वह सोचना तो पड़ेगा न? भगवान कितना सोच-सोचकर मोक्ष में गए! मतभेद पसंद है?

प्रश्नकर्ता : ना।

दादाश्री : जब मतभेद हों तब झगड़े होते हैं, चिंता होती है। इस मतभेद में ऐसा होता है तो मनभेद में क्या होगा? मनभेद हो तब डायवोर्स लेते हैं और तनभेद हो, तब अर्थी निकलती है।

झगड़ा करो, लेकिन बगीचे में

क्लेश आपको करना हो तो बाहर जाकर कर आना चाहिए। घर में यदि झगड़ा करना हो, तब उस दिन बगीचे में जाकर खूब लड़कर घर आना चाहिए। परंतु घर में 'अपने रूम में नहीं लड़ना है', ऐसा नियम बनाना। किसी दिन आपको लड़ने का शौक हो जाए तो बीवी से आप कहना कि चलो, आज बगीचे में खूब नाश्ता-पानी करके, वहाँ पर खूब झगड़ा करें। लोग रोकने आएँ वैसे झगड़ा करना चाहिए। लेकिन घर में झगड़ा नहीं होना चाहिए। जहाँ क्लेश होता है वहाँ भगवान नहीं रहते। भगवान चले जाते हैं। भगवान ने क्या कहा है? भक्त के वहाँ क्लेश नहीं होना चाहिए। परोक्ष भक्ति करनेवाले को भक्त कहा है और प्रत्यक्ष भक्ति करनेवाले को भगवान ने 'ज्ञानी' कहा है, वहाँ तो क्लेश हो ही कहाँ से? लेकिन समाधि होती है!

इसलिए किसी दिन लड़ने की भावना हो, तब आप पतिराज से कहना कि 'चलो हम बगीचे में जाएँ।' बच्चों को किसीको सौंप देना। फिर पतिराज को पहले से ही कह देना कि मैं आपको पब्लिक में दो *धौल* मारूँ तो आप हँसना। लोग भले ही हमारी हँसी-मज़ाक देखें।' लोग तो

आबरू नोट करनेवाले हैं, वे समझेंगे कि कभी इनकी आबरू नहीं गई तो आज गई। आबरू तो किसी की होती होगी? यह तो ढँक-ढँककर आबरू रखते हैं बेचारे!

...यह तो कैसा मोह?

आबरू तो उसे कहते हैं कि नंगा फिरे तब भी सुंदर ही दिखे! यह तो कपड़े पहनते हैं, तब भी सुंदर नहीं दिखते। जेकेट, कोट, नेकटाई पहने, फिर भी बैल जैसा लगता है! न जाने क्या मान बैठे हैं अपने आपको! किसी दूसरे से पूछता भी नहीं है। पत्नी से भी नहीं पूछता कि यह नेकटाई पहनने के बाद मैं कैसा लगता हूँ! आईने में देखकर खुद ही खुद का न्याय करता है कि बहुत अच्छा है, बहुत अच्छा है। ऐसे-ऐसे करके बाल सँवारता जाता है। और स्त्रियाँ भी बिंदी लगाकर आईने में खुद के खुद ही नखरे करती हैं। यह क्या तरीक़ा है? कैसी लाइफ? भगवान जैसा भगवान होकर यह क्या धाँधली मचाई है? खुद भगवान स्वरूप है।

कान में लौंग डालते हैं, वे खुद को दिखते हैं क्या? ये तो लोग हीरा देखें, इसलिए पहनते हैं। ऐसी जँजाल में फँसे हैं, तब भी हीरा दिखाने फिरते हैं! अरे, जँजाल में फँसे हुए मनुष्य को शौक होता होगा? झटपट हल लाओ न! पति कहे तो पति को अच्छा दिखाने के लिए पहनो। सेठ दो हज़ार के हीरे के लौंग लाए हों और पैंतीस हज़ार का बिल लाए तो सेठानी खुश हो जाती है। लौंग खुद को तो दिखते नहीं। सेठानी से मैंने पूछा कि रात को सो जाते हो तब कान के लौंग नींद में भी दिखते हैं या नहीं? यह तो माना हुआ सुख है, रोंग मान्यताएँ हैं, इसलिए अंतर शांति नहीं रहती। भारतीय नारी किसे कहते हैं? घर में दो हज़ार की साड़ी आकर पड़ी हुई हो, तो पहनती है। यह तो पति-पत्नी बाज़ार में घूमने गए हों और दुकान में हज़ार की साड़ी रखी हुई हो तो साड़ी स्त्री को खींचती है और घर आए, तब भी मुँह चढ़ा हुआ होता है और कलह करती है। उसे भारतीय नारी कैसे कहा जाए?

...ऐसा करके भी क्लेश टाला

हिन्दू तो मूल से ही क्लेशी स्वभाव के हैं। इसलिए कहते हैं न कि

हिन्दू बिताते हैं जीवन क्लेश में! लेकिन मुसलमान तो ऐसे पक्के कि बाहर झगड़कर आएँ, लेकिन घर में बीवी के साथ झगड़ा नहीं करते। अब तो कई मुस्लिम लोग भी हिन्दुओं के साथ रहकर बिगड़ गए हैं। लेकिन हिन्दू से भी ज़्यादा इस बारे में मुझे तो वे लोग समझदार लगे। अरे कुछ मुस्लिम तो बीबी को झूला भी झुलाते हैं। हमारा कॉन्ट्रैक्ट का व्यवसाय, उसमें हमें मुसलमान के घर भी जाने का होता था, हम उसकी चाय भी पीते थे! हमें किसी के साथ जुदाई नहीं होती। एक दिन वहाँ गए हुए थे, तब मियाँभाई बीबी को झूला डालने लगा। तब मैंने उससे पूछा कि आप ऐसा करते हो तो वह आपके ऊपर चढ़ नहीं बैठती? तब वह कहने लगा कि वह क्या चढ़ बैठनेवाली थी? उसके पास हथियार नहीं, कुछ नहीं। मैंने कहा कि हमारे हिन्दुओं को तो डर लगता है कि बीवी चढ़ बैठेगी तो क्या होगा? इसीलिए ऐसे झूला नहीं डालते। तब मियाँभाई बोलते हैं कि यह झूला डालने का कारण आप जानते हैं? मेरे तो ये दो ही कमरे हैं। मेरे पास कोई बंगला नहीं, ये तो दो ही कमरे हैं और उसमें बीवी के साथ लड़ाई हो तो मैं कहाँ सोऊँगा? मेरी सारी रात बिगड़ेगी। इसलिए मैं बाहर सबके साथ लड़ आता हूँ लेकिन बीवी के साथ क्लियर रखता हूँ। बीवी मियाँ से कहेगी कि सुबह गोश्त लाने का कह रहे थे, तो क्यों नहीं लाए? तब मियाँभाई नक़द ज़वाब देता है कि कल लाऊँगा। दूसरे दिन सुबह कहता है, 'आज तो किधर से भी ले आऊँगा।' और शाम को खाली हाथ वापस आता है, तब बीवी खूब अकुलाती है लेकिन मियाँभाई खूब पक्के, तो ऐसा बोलते हैं, 'यार मेरी हालत मैं जानता हूँ!' वह ऐसे बीवी को खुश कर देता है, झगड़ा नहीं करता। और हमारे लोग तो क्या कहते हैं, 'तू मुझ पर दबाव डालती है? जा, नहीं लानेवाला।' अरे, ऐसा नहीं बोलते। उल्टे तेरा वजन टूटता है। ऐसा तू बोलता है, इसलिए तू ही दबा हुआ है। अरे, वह तुझे किस तरह दबा सकती है? वह बोले, तब शांत रहना, लेकिन कमज़ोर बहुत चिड़चिड़े होते हैं। इसीलिए वह चिढ़े, तब तुझे चुप रहकर उसकी रिकार्ड सुननी चाहिए।

जिस घर में झगड़ा नहीं होता, वह घर उत्तम है। अरे झगड़ा हो लेकिन वापस उसे मना ले, तब भी उत्तम कहलाए! मियाँभाई को एक दिन खाने में टेस्ट नहीं आए तो मियाँ चिढ़ते हैं कि तू ऐसी है, वैसी है।

और सामने यदि पत्नी चिढ़े तो खुद चुप हो जाता है और समझ जाता है कि इससे विस्फोट होगा। इसीलिए खुद अपने में और वह उसमें। और हिन्दू तो विस्फोट करके ही रहते हैं।

बनिये की पगड़ी अलग, दक्षिणी की अलग और गुजराती की अलग, सुवर्णकार की अलग, ब्राह्मण की अलग, हरएक की अलग। चूल्हे-चूल्हे का धरम अलग। सभी के व्यू पोइन्ट अलग ही हैं, मेल ही नहीं खाते। लेकिन झगड़ा न करें तो अच्छा।

मतभेद से पहले ही सावधानी

अपने में कलुषित भाव रहा ही न हो, उसके कारण सामनेवाले को भी कलुषित भाव नहीं होगा। यदि आप नहीं चिढ़ोगे, तब वे भी ठंडे हो जाएँगे। दीवार जैसे हो जाना चाहिए, तब फिर सुनाई नहीं देगा। हमें पचास साल हो गए लेकिन कभी भी मतभेद ही नहीं हुआ। हीराबा के हाथ से घी ढुल रहा हो, तब भी मैं देखता ही रहता हूँ। हमें तो उस समय ज्ञान हाज़िर रहता है कि वे घी ढोल ही नहीं सकतीं। मैं कहूँ कि ढोलो तब भी नहीं ढोलें। जान-बूझकर कोई घी ढोलता होगा? ना। फिर भी घी ढुलता है, वह देखने जैसा है, इसलिए देखो! हमें मतभेद होने से पहले ज्ञान ऑन द मोमेन्ट हाज़िर रहता है।

'मेरी हालत मैं ही जानता हूँ बोले, तो बीवी खुश हो जाती है और हमारे लोग तो हालत या कुछ भी कहते नहीं हैं। अरे तेरी हालत कह तो सही कि अच्छी नहीं है। इसलिए खुश रहना।'

सबकी हाज़िरी में, सूर्यनारायण की साक्षी में, पुरोहित की साक्षी में शादी की थी, तब पुरोहित ने सौदा किया कि 'समय वर्ते सावधान' तो तुझे सावधान रहना भी नहीं आया? समय के अनुसार सावधान रहना चाहिए। पुरोहित बोलते है 'समय वर्ते सावधान' वह तो पुरोहित समझे, शादी करनेवाला क्या समझे? सावधान का अर्थ क्या है? तब कहे, 'बीवी उग्र हो गई हो, वहाँ तू ठंडा हो जाना, सावधान हो जाना।' अब दोनों जने झगड़ें तब पड़ोसी देखने आएँगे या नहीं आएँगे? फिर तमाशा होगा या नहीं होगा? और फिर वापस इकट्ठे नहीं होना हो तो लड़ो। अरे, बँटवारा ही

कर डालो। तब कहें, 'ना, कहाँ जाएँगे?' यदि वापस एक होना है तो फिर क्यों लड़ते हो! आपको ऐसे सावधान नहीं हो जाना चाहिए? स्त्री को समझो, ऐसी जाति है कि बदलेगी नहीं, इसीलिए आपको बदलना पड़ेगा। वह सहज जाति है, वह बदले ऐसी नहीं है।

पत्नी चिढ़े और कहे, 'मैं आपकी थाली लेकर नहीं आनेवाली, आप खुद आओ। अब आपकी तबियत अच्छी हो गई है और चलने लगे हो। ऐसे तो लोगों के साथ बातें करते हो, घूमते-फिरते हो, बीड़ियाँ पीते हो और ऊपर से टाइम हो तब थाली माँगते हो। मैं नहीं आनेवाली!' तब आप धीरे से कहना, 'आप नीचे थाली में निकालो मैं आ रहा हूँ।' वह कहती है, 'नहीं आनेवाली।' उससे पहले ही आप कह दो कि मैं आ रहा हूँ, मेरी भूल हो गई लो। ऐसा करो तो रात कुछ अच्छी बीतेगी। नहीं तो रात बिगड़ेगी। पति टिटकारी मारते यहाँ सो गए हो और पत्नी यहाँ टिटकारी मारती है। दोनों को नींद नहीं आती। सुबह वापस जब चाय-पानी होता है, तब चाय का प्याला पटककर रखकर, टिटकारी करती है या नहीं करती? वह तो यह पत्नी भी तुरंत समझ जाती है कि टिटकारी की। यह कलह का जीवन है।

क्लेश बगैर का घर, मंदिर जैसा

जहाँ क्लेश हो, वहाँ भगवान का वास नहीं रहता है। इसलिए आप भगवान से कहना 'साहब, आप मंदिर में रहना, मेरे घर नहीं आइएगा!' हम और अधिक मंदिर बनवाएँगे, परंतु घर मत आइएगा!' जहाँ क्लेश न हो, वहाँ भगवान का वास निश्चित है। उसकी मैं आपको गारन्टी देता हूँ और क्लेश तो बुद्धि और समझ से खत्म किया जा सके ऐसा है। मतभेद टले उतनी जागृति तो प्राकृतिक गुण से भी आ सकती है, उतनी बुद्धि भी आ सके ऐसा है। जान लिया, उसका नाम कि किसी के साथ मतभेद न पड़े। मति पहुँचती नहीं, इसलिए मतभेद होते हैं। मति फुल पहुँचे, तो मतभेद नहीं होंगे। मतभेद, वे टकराव हैं। वीकनेस हैं।

कोई झंझट हो गई हो तो आप थोड़ी देर चित्त को स्थिर करो और विचार करो तो आपको सूझ पड़ेगी। क्लेश हुआ तो भगवान तो चले जाएँगे या नहीं चले जाएँगे?

प्रश्नकर्ता : चले जाएँगे।

दादाश्री : भगवान कुछ लोगों के यहाँ से जाते ही नहीं, परंतु क्लेश हो रहा हो, तब कहते हैं, 'चलो यहाँ से, हमें यहाँ अच्छा नहीं लगेगा।' इस कलह में मुझे अच्छा नहीं लगेगा, इसलिए देरासर और मंदिरों में जाते हैं। इन मंदिरों में भी फिर क्लेश करते हैं। मुकट, ज़ेवर ले जाते हैं तब भगवान कहते हैं कि यहाँ से भी चलो अब। तो भगवान भी तंग आ गए हैं।

अंग्रेजों के समय में कहते थे न कि,

'देव गया डुंगरे, पीर गया मक्के।'

(देवी-देवता गए पहाड़ पर और पीर चले गए मक्का।)

अपने घर में क्लेश रहित जीवन जीना चाहिए। इतनी तो आप में कुशलता होनी चाहिए। दूसरा कुछ नहीं आए तो उसे समझाना चाहिए कि क्लेश होगा तो अपने घर में से भगवान चले जाएँगे, इसलिए तू निश्चय कर कि 'हमारे यहाँ क्लेश नहीं करना है।' और आप निश्चित करना कि क्लेश नहीं करना है। निश्चित करने के बाद क्लेश हो जाए तो समझना कि यह आपकी सत्ता के बाहर हुआ है। इसीलिए वह क्लेश कर रहा हो तब भी आपको ओढ़कर सो जाना चाहिए। वह भी थोड़ी देर बाद सो जाएगा, लेकिन आप भी सामने ज़वाब देने लगें तो?

उल्टी कमाई, क्लेश कराए

मुंबई में एक ऊँचे संस्कारी कुटुंब की बहन को मैंने पूछा कि घर में क्लेश तो नहीं होता न? तब उस बहन ने कहा, 'रोज़ सुबह क्लेश के नाश्ते ही होते हैं!' मैंने कहा, 'तब आपके नाश्ते के पैसे बचे, नहीं?' बहन ने कहा, 'नहीं, वह भी वापस ब्रेड निकालनी, और ब्रेड पर मक्खन चुपड़ते जाना।' मतलब फिर क्लेश भी चलता है और नाश्ता भी चलता है! अरे, किस तरह के जीव हो?

प्रश्नकर्ता : कुछ लोगों के घर में लक्ष्मी ही उस प्रकार की होगी इसलिए क्लेश होता होगा?

दादाश्री : यह लक्ष्मी के कारण ही ऐसा होता है। यदि लक्ष्मी निर्मल हो, तो सब अच्छा रहता है, मन अच्छा रहता है। यह लक्ष्मी अनिष्टवाली घर में घुसी है, उससे क्लेश होता है। हमने बचपन में ही निश्चित कर लिया था कि हो सके तब तक खोटी लक्ष्मी घुसने ही नहीं देनी है। फिर भी संजोगाधीन घुस जाए तो उसे धंधे में ही रहने देना है, घर में नहीं घुसने देना है, इसलिए आज छियासठ वर्ष हुए लेकिन खोटी लक्ष्मी घुसने नहीं दी है, और घर में कभी भी क्लेश खड़ा हुआ नहीं है। घर में निश्चित किया हुआ था कि इतने पैसे से घर चलाना है। व्यापार लाखों रुपया कमाता है, परंतु यह पटेल सर्विस करने जाएँ तो क्या तन्ख्वाह मिलेगी? बहुत हुआ तो छः सौ-सात सौ रुपये मिलेंगे। व्यापार, वह तो पुण्य का खेल है। मुझे नौकरी में जितने मिलते, उतने ही पैसे घर में खर्च कर सकते हैं, दूसरे तो व्यापार में ही रहने देने चाहिए। इन्कम टैक्सवाले की चिट्ठी आए तो आपको कहना चाहिए कि, 'वह जो रक़म थी वह भर दो।' कब कौन-सा 'अटैक' हो उसका कोई ठिकाना नहीं और यदि वे पैसे खर्च कर दिए तो वहाँ इन्कम टैक्सवालों का 'अटैक' आया तो आपके यहाँ वो वाला 'अटैक' आएगा! सभी जगह अटैक घुस गए हैं न! यह जीवन कैसे कहलाए? आपको क्या लगता है? भूल लगती है या नहीं लगती? वह हमें भूल मिटानी है।

प्रयोग तो करके देखो

क्लेश न हो ऐसा निश्चित करो न! तीन दिन के लिए तो निश्चित करके देखो न! प्रयोग करने में क्या परेशानी है? तीन दिन के उपवास करते हैं न, तबियत के लिए? वैसे ही यह भी निश्चित तो करके देखो। घर में आप सब लोग इकट्ठे होकर निश्चित करो कि 'दादा बात करते थे, वह बात मुझे पसंद आई है, तो आज से हम क्लेश मिटाएँ।' फिर देखो।

धर्म किया (!) फिर भी क्लेश?

जहाँ क्लेश नहीं वहाँ यथार्थ जैन, यथार्थ वैष्णव, यथार्थ शैव धर्म हैं। जहाँ धर्म की यथार्थता है, वहाँ क्लेश नहीं होता। ये घर-घर क्लेश होते हैं तो वहाँ धर्म कहाँ गया?

संसार चलाने के लिए जिस धर्म की आवश्यकता है कि क्या करने से क्लेश नहीं हो, उतना ही यदि आ जाए तो भी, धर्म प्राप्त किया, ऐसा माना जाएगा।

क्लेश रहित जीवन जीना, वही धर्म है। हिन्दुस्तान में, यहाँ संसार में ही खुद का घर स्वर्ग बनेगा तो मोक्ष की बात करनी चाहिए, नहीं तो मोक्ष की बात करनी नहीं, स्वर्ग नहीं तो स्वर्ग के नज़दीक का तो होना ही चाहिए न? क्लेश रहित होना चाहिए, इसलिए शास्त्रकारों ने कहा है कि, 'जहाँ किंचित् मात्र क्लेश है वहाँ धर्म नहीं है।' जेल की अवस्था हो वहाँ डिप्रेशन नहीं, और महल की अवस्था हो वहाँ एलिवेशन नहीं, ऐसा होना चाहिए। क्लेश रहित जीवन हुआ इसलिए मोक्ष के नज़दीक आया, वह इस भव में सुखी होगा। मोक्ष हरएक को चाहिए। क्योंकि बंधन किसीको पसंद नहीं है। परंतु क्लेश रहित हुआ, तब समझना कि अब नज़दीक में अपना स्टेशन है मोक्ष का।

...तब भी हम सुल्टा करें

एक बनिये से मैंने पूछा, 'आपके घर में झगड़े होते हैं?' तब उसने कहा, 'बहुत होते हैं।' मैंने पूछा, 'उसका तू क्या उपाय करता है?' बनिये ने कहा, 'पहले तो मैं दरवाज़े बंद कर आता हूँ।' मैंने पूछा, 'पहले दरवाज़े बंद करने का क्या हेतु है?' बनिये ने कहा, 'लोग घुस जाएँ तो उल्टा झगड़ा बढ़ाते हैं। घर में झगड़ने के बाद अपने आप ठंडा पड़ जाता है।' इसकी बुद्धि सही है, मुझे यह पसंद आया। थोड़ी भी अक्लवाली बात हो तो उसे हमें एक्सेप्ट करना चाहिए। कोई भोला मनुष्य तो बल्कि दरवाज़ा बंद हो तो खोल आए और लोगों से कहे, 'आओ, देखो हमारे यहाँ!' अरे, यह तो *तायफ़ा* किया!

ये लट्ठबाजी करते हैं उसमें किसी की ज़िम्मेदारी नहीं, अपनी खुद की ही जोखिमदारी है। इसे तो खुद ही अलग करना पड़ेगा। यदि तू खरा समझदार पुरुष होगा तो लोग उल्टा डालते रहेंगे और तू सुल्टा करता रहेगा तो तेरा हल आएगा। लोगों का स्वभाव ही है उल्टा डालना! तू समकिती है तो लोग अगर उल्टा डालें तो तू सीधा कर दें, तू तो उल्टा डालना ही

मत। बाकी, जगत् तो सारी रात नल खुला रखे और मटका उल्टा रखे, ऐसा है! खुद का ही सर्वस्व बिगाड़ रहे हैं। वे समझते हैं कि मैं लोगों का बिगाड़ रहा हूँ। लोगों का तो कोई बिगाड़ सके ऐसा है ही नहीं, कोई ऐसा जन्मा ही नहीं।

हिन्दुस्तान में प्रकृति नापी नहीं जा सकती, यहाँ तो भगवान भी भुलावे में आ जाएँ। फॉरिन में तो एक दिन उसकी वाइफ के साथ सच्चा रहा तो सारी ज़िंदगी सच्चा ही रहता है! और यहाँ तो सारा दिन प्रकृति को देखते रहें, फिर भी प्रकृति नापी नहीं जा सकती। यह तो कर्म के उदय घाटा करवाते हैं, नहीं तो ये लोग घाटा उठाएँगे? अरे, मरें फिर भी घाटा नहीं होने दें, आत्मा को एक तरफ थोड़ी देर बैठाकर फिर मरें।

'पलटकर' मतभेद टाला

दादाश्री : भोजन के समय टेबल पर मतभेद होता है?

प्रश्नकर्ता : वह तो होता है न?

दादाश्री : क्यों, शादी करते समय ऐसा क़रार किया था?

प्रश्नकर्ता : ना।

दादाश्री : उस समय तो क़रार यह किया था कि 'समय वर्ते सावधान।' घर में वाइफ के साथ 'तुम्हारा और मेरा' ऐसी वाणी नहीं होनी चाहिए। वाणी विभक्त नहीं होनी चाहिए, वाणी अविभक्त होनी चाहिए, आप अविभक्त कुटुंब के हैं न?

हमें हीराबा के साथ कभी भी मतभेद पड़ा नहीं, कभी भी वाणी में 'मेरा-तेरा' हुआ नहीं। लेकिन एक बार हमारे बीच मतभेद पड़ गया था। उनके भाई के वहाँ पहली बेटी की शादी थी। उन्होंने मुझसे पूछा कि, 'उन्हें क्या देना है?' तब मैंने उन्हें कहा कि, 'जो आपको ठीक लगे वह, लेकिन घर में ये तैयार चाँदी के बरतन पड़े हुए हैं, वे दे दीजिए! नया मत बनवाना।' तब उन्होंने कहा कि, 'आपके ननिहाल में तो मामा की बेटी की शादी हो तो बड़े-बड़े थाल बनवाकर देते हैं!' वे मेरे और आपके शब्द बोले तब से ही मैं समझ गया कि आज आबरू गई अपनी। हम एक के

एक, वहाँ मेरा-तेरा होता होगा? मैं तुरंत ही समझ गया और तुरंत ही पलट गया, मुझे जो कहना था उस पर से पूरा ही मैं पलट गया, मैंने उनसे कहा, मैं ऐसा नहीं कहना चाहता हूँ। आप चाँदी के बरतन देना और ऊपर से पाँच सौ एक रुपये देना, उन्हें काम आएँगे।' 'हं... इतने सारे रुपये तो कभी दिए जाते होंगे? आप तो जब देखो तब भोले के भोले ही रहते हो, जिस किसीको देते ही रहते हो।' मैंने कहा, 'वास्तव में मुझे तो कुछ आता ही नहीं।

देखो, यह मेरा मतभेद पड़ रहा था, लेकिन किस तरह से सँभाल लिया पलटकर! अंत में मतभेद नहीं पड़ने दिया। पिछले तीस-पैंतीस वर्षों से हमारे बीच नाम मात्र का भी मतभेद नहीं हुआ है। बा भी देवी जैसे हैं। मतभेद किसी जगह पर हमने पड़ने ही नहीं दिए। मतभेद पड़ने से पहले ही हम समझ जाते हैं कि यहाँ से पलट डालो, और आप तो सिर्फ दाएँ और बाएँ, दो तरफ से ही बदलना जानते हो कि ऐसे पेच चढ़ेंगे या ऐसे पेच चढ़ेंगे। हमें तो सत्रह लाख तरह के पेच घुमाने आते हैं। परंतु गाड़ी रास्ते पर ला देते हैं, मतभेद नहीं होने देते। अपने सत्संग में बीसेक हज़ार लोग और चारेक हज़ार महात्मा हैं, लेकिन हमारा किसी के साथ एक भी मतभेद नहीं है। जुदाई मानी ही नहीं मैंने किसी के साथ!

जहाँ मतभेद है वहाँ अंशज्ञान है और जहाँ मतभेद ही नहीं, वहाँ विज्ञान है। जहाँ विज्ञान है, वहाँ सर्वांशज्ञान है। सेन्टर में बैठें, तभी मतभेद नहीं रहते। तभी मोक्ष होता है। लेकिन डिग्री ऊपर बैठो और 'हमारा-तुम्हारा' रहे तो उसका मोक्ष नहीं होता। निष्पक्षपाती का मोक्ष होता है।

समकिती की निशानी क्या? तब कहे, घर में सब लोग उल्टा कर डालें फिर भी खुद सीधा कर डाले। सभी बातों में सीधा करना वह समकिती की निशानी है। इतना ही पहचानना है कि यह मशीनरी कैसी है, उसका 'फ्यूज़' उड़ जाए तो किस तरह से 'फ्यूज़' ठीक करना है। सामनेवाले की प्रकृति के साथ एडजस्ट होना आना चाहिए। हमें तो, सामनेवाले का 'फ्यूज़' उड़ जाए, तब भी हमारा एडजस्टमोन्ट होता है। लेकिन सामनेवाले का एडजस्टमेन्ट टूटे तो क्या होगा? 'फ्यूज़' गया।

इसलिए फिर तो वह दीवार से टकराता है, दरवाज़ों से टकराता है, लेकिन वायर नहीं टूटता। इसीलिए कोई फ्यूज़ डाल दे तो वापस रास्ते पर आएगा, नहीं तो तब तक वह उलझता रहेगा।

संसार है इसीलिए घाव तो पड़नेवाले ही हैं न? और पत्नी भी कहेगी कि अब घाव भरेंगे नहीं। परंतु संसार में पड़े हैं, इसीलिए वापस घाव भर जाते हैं। मूर्छा है न? मोह के कारण मूर्छा है। मोह के कारण घाव भर जाते हैं। यदि घाव नहीं भरते, तब तो वैराग्य ही आ जाता न?! मोह किसे कहते हैं? सभी, अनुभव बहुत हुए हों परंतु भूल जाता है। डायवोर्स लेते समय निश्चित करता है कि अब किसी स्त्री से साथ शादी नहीं करनी, फिर भी वापस साहस करता है।

...यह तो कैसा फँसाव?

शादी नहीं करोगे तो जगत् का बैलेन्स किस तरह रहेगा? शादी कर न। भले ही शादी करे! 'दादा' को उसमें हर्ज नहीं है, परंतु हर्ज नासमझी का है। हम क्या कहना चाहते हैं कि सब करो, परंतु बात को समझो कि हकीकत क्या है।

भरत राजा ने तेरह सौ रानियों के साथ पूरी ज़िंदगी निकाली और उसी भव में मोक्ष प्राप्त किया! तेरह सौ रानियों के साथ!!! इसलिए बात को समझना है। समझकर संसार में रहो, साधु होने की ज़रूरत नहीं है। यदि यह नहीं समझ में आया तो साधु होकर एक कोने में पड़े रहो। साधु तो, जिसे स्त्री के साथ संसार में रास नहीं आता हो, वह बनता है। और स्त्री से दूर रहा जा सकता है या नहीं ऐसी शक्ति साधने के लिए वह एक कसरत है।

संसार तो टेस्ट एक्ज़ामिनेशन है। वहाँ टेस्टेड होना है। लोहा भी बगैर टेस्ट किया हुआ नहीं चलता तो मोक्ष में अनटेस्टेड चलता होगा?

इसलिए मूर्च्छित होने जैसा यह जगत् नहीं है। मूर्छा के कारण जगत् ऐसा दिखता है। और मार खा-खाकर मर जाते हैं! भरत राजा की तेरह सौ रानियाँ थीं, तब उनकी क्या दशा हुई होगी? यहाँ घर में एक रानी हो

तब भी फजीता करवाती रहती है, तब तेरह सौ रानियों में कब पार आए? अरे, एक रानी को जितना हो तो महामुश्किल हो जाता है! जीती ही नहीं जाती। क्योंकि मतभेद पड़े कि वापस गड़बड़ हो जाती है! भरत राजा को तो तेरह सौ रानियों के साथ निभाना होता था। रनिवास से गुज़रें, तो पचास रानियों के मुँह चढ़े हुए होते। अरे, कितनी तो राजा का काम तमाम कर देने के लिए घूमती थीं! मन में सोचती कि फलानी रानियाँ उनकी खुद की हैं और ये पराई। इसलिए रास्ता कुछ करें। कुछ करें, उस राजा को मारने के लिए, परंतु वह रानियों को प्रभावहीन करने के लिए। राजा के ऊपर द्वेष नहीं, परंतु उन दूसरी रानियों पर द्वेष है। परंतु उसमें राजा तो गया और तू भी तो विधवा हो जाएगी न? तब कहे कि 'मैं विधवा हो जाऊँगी लेकिन उसे भी विधवा कर दूँ, तब सही!'

यह हमें तो साराताद्रश्य दिखता है। ये भरत राजा की रानी का ताद्रश्य हमें दिखता है कि उन दिनों कैसे मुँह चढ़ा हुआ होगा! राजा कैसा फँसा हुआ होगा? राजा के मन में कैसी चिंताएँ होंगी, वह सभी दिखता है! एक रानी का यदि तेरह सौ राजाओं के साथ विवाह हुआ हो तो राजाओं का मुँह नहीं चढ़ेगा। पुरुष को मुँह चढ़ाना आता ही नहीं।

आक्षेप, कितने दुःखदायी!

सभी कुछ तैयार है, परंतु भोगना नहीं आता, भोगने का तरीक़ा नहीं आता। मुंबई के सेठ बड़े टेबल पर खाना खाने बैठते हैं, लेकिन खाना खाने के बाद, आपने ऐसा किया, आपने वैसा किया, मेरा दिल तू जलाती रहती है बिना काम के। अरे बगैर काम के तो कोई जलाता होगा? न्यायपूर्वक जलाता है। बिना न्याय के तो कोई जलाता ही नहीं। ये लकड़ी को लोग जलाते हैं, लेकिन लकड़ी की अलमारी को कोई जलाता है? जो जलाने का हो उसे ही जलाते हैं। ऐसे आक्षेप देते हैं। यह तो भान ही नहीं है। मनुष्यपन बेभान हो गया है, नहीं तो घर में तो आक्षेप दिए जाते होंगे? पहले के समय में घर के व्यक्ति एक-दूसरे पर आक्षेप नहीं लगाते थे। अरे, लगाना हो तब भी नहीं लगाते थे। मन में ऐसा समझते थे कि आक्षेप लगाऊँगा तो सामनेवाले को दुःख होगा, और कलियुग में तो चपेट में लेने को घूमते हैं। घर में मतभेद क्यों होना चाहिए?

खड़कने में, जोखिमदारी खुद की ही

प्रश्नकर्ता : मतभेद होने का कारण क्या है?

दादाश्री : भयंकर अज्ञानता! अरे संसार में जीना नहीं आता, बेटे का बाप होना नहीं आता, पत्नी का पति होना नहीं आता। जीवन जीने की कला ही आती नहीं। यह तो सुख होने पर भी सुख भोग नहीं सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : परंतु बरतन तो घर में खड़केंगे न?

दादाश्री : बरतन रोज़-रोज़ खड़काना किसे रास आएगा? यह तो समझता नहीं, इसीलिए रास आता है। जो जागृत हो, उसे तो एक मतभेद पड़े तो सारी रात नींद ही नहीं आए! इन बरतनों को (मनुष्यों को) स्पंदन हैं, इसलिए रात को सोते-सोते भी स्पंदन करता रहता है, 'ये तो ऐसे हैं, टेढ़े हैं, उल्टे हैं, नालायक हैं, निकाल देने जैसे हैं!' और उन बरतनों को कोई स्पंदन है? लोग समझे बिना हाँ में हाँ मिलाते हैं कि 'दो बरतन साथ में होंगे तो खड़केंगे!' घनचक्कर, लोग क्या बरतन हैं? तो क्या हमें खड़कना चाहिए? इन 'दादा' को किसी ने कभी भी खड़कते हुए नहीं देखा होगा! सपना भी नहीं आया होगा ऐसा!! खड़कना किसलिए? यह खड़कना तो अपनी खुद की जोखिमदारी पर है। खड़कना क्या किसी और की जोखिमदारी पर है? चाय जल्दी नहीं आई हो, और आप टेबल को तीन बार ठोकें तो जोखिमदारी किसकी? इसके बदले तो आप बुद्धू बनकर बैठे रहो। चाय मिली तो ठीक, नहीं तो देखूँगा ऑफिस में। क्या बुरा है? चाय का भी कोई काल तो होगा न? यह जगत् नियम से बाहर तो नहीं होगा न? इसलिए हमने कहा है कि 'व्यवस्थित'। उसका टाइम होगा तब चाय मिलेगी, आपको ठोकना नहीं पड़ेगा। आप स्पंदन खड़े नहीं करोगे तो वह आकर रहेगी, और स्पंदन खड़े करोगे तब भी आएगी। परंतु स्पंदन के, वापस वाइफ का खाते में हिसाब जमा होगा कि आप उस दिन टेबल ठोक रहे थे न!

प्रकृति पहचानकर सावधानी रखना

पुरुष घटनाओं को भूल जाते हैं और स्त्रियों की *नोंध* सारी ज़िंदगी रहती है, पुरुष भोले होते हैं, बड़े मन के होते हैं, भद्रिक होते हैं, वे भूल

जाते हैं बेचारे। स्त्रियाँ तो बोल भी जाती हैं फिर कि उस दिन आप ऐसा बोले थे, वह मेरे कलेजे में घाव लगा हुआ है। अरे बीस वर्ष हुए फिर भी *नोंध* ताज़ी? बेटा बीस वर्ष का हो गया, शादी के लायक हो गया, फिर भी अभी तक वह बात रखी हुई है? सभी चीज़ें सड़ जाएँ, लेकिन इनकी चीज़ नहीं सड़ी। स्त्री को आपने कुछ दिया हो तो वह असल जगह पर रख छोड़ती है, कलेजे के अंदर, इसीलिए देना-करना नहीं। नहीं देने जैसी चीज़ है यह। सावधान रहने जैसा है।

इसलिए शास्त्रों में भी लिखा है कि, *'रमा रमाड़वी सहेली छे, विफरी महामुश्केल छे'* (रमा को खेल खिलाना आसान है, बिफरे तब महामुश्किल है।') बिफरे तो वह क्या कल्पना नहीं करेगी, वह कहा नहीं जा सकता। इसलिए स्त्री को बार-बार नीचा नहीं दिखाना चाहिए। सब्ज़ी ठंडी क्यों हो गई? दाल में बघार ठीक से नहीं किया, ऐसी किच-किच किसलिए करता है? बारह महीने में एकाध दिन एकाध शब्द हो तो ठीक है, यह तो रोज़! *'भाभो भारमां तो वहु लाजमां'* (ससुर गरिमा में तो बहू शर्म में), आपको गरिमा में रहना चाहिए। दाल अच्छी नहीं बनी हो, सब्ज़ी ठंडी हो गई हो, तो वह नियम के अधीन होता है। और बहुत हो जाए तब धीमे रहकर बात करनी हो तो करना किसी समय, कि यह सब्ज़ी रोज़ गरम होती है, तब बहुत अच्छी लगती है। ऐसी बात करो तो वह उस टकोर को समझ जाएगी।

डीलिंग नहीं आए, तो दोष किसका?

अट्ठारह सौ रुपये की घोड़ी ले, फिर भाई ऊपर बैठ जाए। भाई को बैठना नहीं आए और उसे छेड़ने जाए, तब घोड़ी ने कभी भी वैसी छेड़खानी देखी नहीं हो इसलिए खड़ी हो जाती है। तब मूर्ख गिर जाता है। ऊपर से वह लोगों से कहता क्या है कि 'घोड़ी ने मुझे गिरा दिया।' और वह घोड़ी खुद का न्याय किसे कहने जाए? घोड़ी पर बैठना तुझे नहीं आता, उसमें तेरी भूल है या घोड़ी की? और घोड़ी भी बैठने के साथ ही समझ जाती है कि यह तो जंगली जानवर बैठा, इसे बैठना नहीं आता! वैसे ही ये हिन्दुस्तानी स्त्रियाँ, यानी आर्य नारियाँ, उनके साथ काम लेना नहीं आए तो फिर वे गिरा ही देंगी न? एक बार पति यदि स्त्री के आमने-

सामने हो जाए तो उसका प्रभाव ही नहीं रहता। आपका घर अच्छी तरह चलता हो, बच्चे पढ़ रहे हों अच्छी तरह, कोई झंझट नहीं हो, और आपको उसमें उल्टा दिखा और बिना काम के आमने-सामने हो गए, तो फिर अक्ल का नाप स्त्री समझ जाती है कि 'इसमें बरकत नहीं है।'

यदि आपका प्रभाव नहीं हो तो घोड़ी को सहलाने पर भी उसका प्रेम आपको मिलेगा। पहले प्रभाव पड़ना चाहिए। वाइफ की कुछ भूलें आप सहन करो तो उस पर प्रभाव पड़ता है। यह तो बिना भूल के भूल निकाले तो क्या होगा? कुछ पुरुष स्त्री के संबंध में शोर मचाते हैं, वे सब गलत शोर होता है। कुछ साहब ऐसे होते हैं कि ऑफिस में कर्मचारियों के साथ दख़ल करते रहते हैं। सब कर्मचारी भी समझते हैं कि साहब में बरकत नहीं है, लेकिन करें क्या? पुण्य ने उसे बॉस की तरह बैठाया है वहाँ। घर पर तो बीवी के साथ पंद्रह-पंद्रह दिन से केस पेन्डिंग पड़ा होता है। साहब से पूछें, 'क्यों?' तो कहें कि उसमें अक्ल नहीं है। और वह अक्ल का बोरा! बेचें तो चार आने भी नहीं आएँ। साहब की वाइफ से पूछें तो वे कहेंगी कि जाने दो न उनकी बात। कोई बरकत ही नहीं है उनमें।

स्त्रियाँ, मानभंग हो उसे सारी ज़िंदगी भूलती नहीं हैं। ठेठ अर्थी में जाने तक वह रीस साबुत होती है। वह रीस यदि भुलाई जाती हो तो जगत् सारा कब का ही पूरा हो गया होता। नहीं भुलाया जाए ऐसा है, इसलिए सावधान रहना। सारा सावधानी से काम करने जैसा है।

स्त्रीचरित्र कहलाता है न? वह समझ में आ सके ऐसा नहीं है। फिर स्त्रियाँ देवियाँ भी हैं! इसलिए ऐसा है कि उन्हें देवियों की तरह देखोगे तो आप देवता बनोगे। बाकी आप तो मुर्गे जैसे रहोगे, हाथी और मुर्गे जैसे! हाथीभाई आए और मुर्गाभाई आए! यह तो लोगों को राम होना नहीं है और घर में सीताजी को खोजते हैं। पगले, राम तो तुझे नौकरी पर भी नहीं रखें। इसमें इनका भी दोष नहीं है। आपको स्त्रियों के साथ डीलिंग करना नहीं आता है। आपको व्यापारियों को ग्राहकों के साथ डीलिंग करना नहीं आएगा तो वह आपके पास नहीं आएँगे। इसलिए अपने लोग नहीं कहते कि सेल्समेन अच्छा रखो? अच्छा, दर्शनीय, होशियार सेल्समेन हो

तो लोग थोड़ा भाव भी ज़्यादा दे देते हैं। उसी प्रकार आपको स्त्री के साथ डीलिंग करते आना चाहिए।

स्त्री को तो एक आँख से देवी की तरह देखो और दूसरी आँख से उसका स्त्री चरित्र देखो। एक आँख में प्रेम और दूसरी आँख में कड़काई रखो, तभी बेलेन्स रह पाएगा। अकेली देवी की तरह देखोगे और आरती उतारोगे तो वह उलटी पटरी पर चढ़ जाएगी, इसलिए बेलेन्स में रखना।

'व्यवहार' को 'इस' तरह से समझने जैसा है

पुरुष को स्त्री की बात में हाथ नहीं डालना चाहिए और स्त्री को पुरुष की बात में हाथ नहीं डालना चाहिए। हरएक को अपने-अपने डिपार्टमेन्ट में ही रहना चाहिए।।

प्रश्नकर्ता : स्त्री का डिपार्टमेन्ट कौन-सा? किस-किसमें पुरुषों को हाथ नहीं डालना चाहिए?

दादाश्री : ऐसा है, खाने का क्या करना, घर कैसे चलाना, वह सब स्त्री का डिपार्टमेन्ट है। गेहूँ कहाँ से लाती है, कहाँ से नहीं लाती आपको वह जानने की क्या ज़रूरत है? वह यदि आप से कहती हों कि गेहूँ लाने में मुझे अड़चन पड़ रही है तो वह बात अलग है। परंतु यदि वह आपको कहती न हों, राशन बताती नहीं हों, तो आपको उस डिपार्टमेन्ट में हाथ डालने की ज़रूरत ही क्या है? आज दूधपाक बनाना, आज जलेबी बनाना, आपको वह भी कहने की ज़रूरत क्या है? टाइम आएगा तब वह रखेगी। उनका डिपार्टमेन्ट, वह उनका स्वतंत्र है। कभी बहुत इच्छा हुई हो तो कहना कि, 'आज लड्डू बनाना।' कहने के लिए मना नहीं करता परंतु दूसरी टेढ़ा-मेढ़ा, बेकार का शोर मचाएँ कि कढ़ी खारी हो गई, खारी हो गई, तो सब नासमझी है।

यह रेलवेलाइन चलती है, उसमें कितनी सारी कार्यवाही होती है! कितनी जगहों से टिप्पणी आती हैं, खबरें आती हैं, उनका पूरा डिपार्टमेन्ट ही अलग। अब उसमें भी खामी तो आती ही है न? वैसे ही वाइफ के डिपार्टमेन्ट में कभी खामी आ भी जाए। अब आप यदि उनकी खामी निकालने जाएँ तो फिर वे आपकी खामी निकालेंगी, आप ऐसा नहीं करते,

आप वैसा नहीं करते। ऐसा खत आया और वैसा किया आपने। यानी कि वह बैर वसूलती है। मैं आपकी कमी निकालूँ तो आप भी मेरी कमी निकालने के लिए बेताब रहते हैं! इसलिए खरा मनुष्य तो घर की बातों में हाथ ही न डाले। वह पुरुष कहलाता है। नहीं तो स्त्री जैसा होता है। कुछ लोग तो घर में जाकर मिर्ची के डिब्बे में देखते हैं कि दो महीने हुए मिर्ची लाए थे, वह इतनी ही देर में पूरी हो गई? अरे, मिर्ची देखता है तो कब पार आएगा? वह जिसका डिपार्टमेन्ट हो उसे चिंता नहीं होती? क्योंकि वस्तु तो खर्च होती रहती है और खरीदी भी जाती है। लेकिन यह तो बिना काम के ज़्यादा अक्लमंद बनने जाता है! फिर पत्नी भी समझती है कि इनकी चवन्नी गिर गई है। माल कैसा है, वह स्त्री समझ जाती है। घोड़ी समझ जाती है कि ऊपर बैठनेवाला कैसा है, वैसे ही स्त्री सब समझ जाती है। इसके बदले तो *'भाभो भारमां तो वहु लाजमां'* पुरुष गरिमा में नहीं रहे तो बहू किस तरह लाज में रहे? नियम और मर्यादा से ही व्यवहार शोभा देगा। मर्यादा पार मत करना और निर्मल रहना।

प्रश्नकर्ता : स्त्री को पुरुष की कौन-सी बात में हाथ नहीं डालना चाहिए?

दादाश्री : पुरुष की किसी भी बात में दख़ल नहीं डालना चाहिए। दुकान में कितना माल लाए? कितना गया? आज देर से क्यों आए? उसे फिर कहना पड़ता है कि आज नौ बजे की गाड़ी चूक गया। तब पत्नी कहेगी कि ऐसे कैसे घूमते हो कि गाड़ी चूक जाते हो? तब फिर पति चिढ़ जाता है। उसके मन में होता है कि भगवान भी ऐसा पूछते तो उन्हें मारता। लेकिन यहाँ क्या करे अब? यानी बिना काम के दख़ल करते हैं। बासमती के चावल अच्छे पकाते हैं और फिर अंदर कंकड़ डालकर खाते हैं! उसमें क्या स्वाद आएगा? स्त्री-पुरुष को एक-दूसरे को हेल्प करनी चाहिए। पति को चिंता-वरीज़ रहती हों, तो उसे किस प्रकार वह न हो, स्त्री को इस तरह से बोलना चाहिए। वैसे ही पति को भी पत्नी मुश्किल में न पड़े, ऐसा देखना चाहिए। पति को भी समझना चाहिए कि स्त्री को बच्चे घर पर कितना परेशान करते होंगे! घर में टूट-फूट हो तो पुरुष को चिल्लाना नहीं चाहिए। लेकिन फिर भी लोग चिल्लाते हैं कि पिछली बार

सबसे अच्छे एक दर्जन कप-रकाबी लेकर आया था, आपने वे सब क्यों फोड़ डाले? सब खत्म कर दिया। इससे पत्नी के मन में लगता है कि 'मैंने तोड़ डाले? मुझे क्या वे खा जाने थे? टूट गए तो टूट गए, उसमें मैं क्या करूँ? मी काय करूँ?' कहेगी। अब वहाँ भी लड़ाई-झगड़ा। जहाँ कुछ लेना नहीं और देना नहीं। जहाँ लड़ने का कोई कारण ही नहीं, वहाँ भी लड़ना?

हमारे और हीराबा के बीच कोई मतभेद ही नहीं पड़ता था। हमने उनके काम में हाथ ही नहीं डाला कभी भी। उनके हाथ से पैसे गिर गए हों, हमने देखे हों, फिर भी हम ऐसा नहीं कहते कि आपके पैसे गिर गए। उन्होंने देखा या नहीं देखा? घर की किसी बात में हम हस्तक्षेप नहीं करते थे। वे भी हमारी किसी बात में दख़ल नहीं करती थीं। हम कितने बजे उठते हैं, कितने बजे नहाते हैं, कब आते हैं, कब जाते हैं, ऐसी हमारी किसी बात में कभी भी वे हमें नहीं पूछती थी। और किसी दिन हमें कहें कि आज जल्दी नहा लेना। तो हम तुरंत धोती मँगवाकर नहा लेते थे। अरे, अपने आप ही तौलिया लेकर नहा लेते थे। क्योंकि हम समझते थे कि ये 'लाल झंडी' दिखा रही हैं, इसलिए कोई डर होगा। पानी नहीं आनेवाला हो या ऐसा कुछ हो तभी वे हमें जल्दी नहा लेने को कहेंगी, यानी हम समझ जाते। इसलिए थोड़ा-थोड़ा व्यवहार में आप भी समझ लो न, कि किसी के काम में हाथ डालने जैसा नहीं है।

फोज़दार पकड़कर आपको ले जाए फिर वह जैसा कहे वैसा आप नहीं करेंगे? जहाँ बिठाए वहाँ आप नहीं बैठेंगे? आप समझते हो कि यहाँ हूँ तब तक इस झंझट में हूँ, ऐसे संसार भी फोज़दारी ही है। इसलिए उसमें भी सरल हो जाना चाहिए।

घर पर भोजन की थाली आती है या नहीं आती?

प्रश्नकर्ता : आती है।

दादाश्री : भोजन चाहिए तो मिलता है, पलंग चाहिए तो बिछा देते हैं, फिर क्या? और खटिया न बिछाकर दें तो वह भी आप बिछा लेना और हल लाना। शांति से बात समझानी पड़ती है। आपके संसार के हिताहित

की बात क्या गीता में लिखी होती है? वह तो खुद ही समझनी पड़ेगी न?

हसबैन्ड मतलब वाइफ की भी वाइफ (पति यानी पत्नी की पत्नी) यह तो लोग पति ही बन बैठे हैं! अरे, वाइफ क्या पति बन बैठनेवाली है? हसबैन्ड यानी वाइफ की वाइफ। अपने घर में ज़ोर से आवाज़ नहीं होनी चाहिए। यह क्या लाउड स्पीकर है? यह तो यहाँ चिल्लाता है तो गली के नुक्कड़ तक सुनाई देता है। घर में गेस्ट की तरह रहो। हम भी घर में गेस्ट की तरह रहते हैं। कुदरत के गेस्ट की तरह यदि आपको सुख न आए तो ससुराल में क्या सुख आनेवाला है?

'मार' का फिर बदला लेती है

प्रश्नकर्ता : दादा, मेरा मिजाज़ हट जाता है, तब कितनी ही बार मेरा हाथ पत्नी पर उठ जाता है।

दादाश्री : स्त्री को कभी भी मारना नहीं चाहिए। जब तक आपका शरीर मज़बूत होगा, तब तक चुप रहेगी, फिर वह आप पर चढ़ बैठेगी। स्त्री को और मन को मारना वह तो संसार में भटकने के दो साधन है। इन दोनों को मारना नहीं चाहिए। उनके पास से तो समझाकर काम लेना पड़ता है।

हमारा एक मित्र था। उसे मैं जब देखूँ तब पत्नी को एक तमाचा लगा देता था, उसकी ज़रा-सी भूल दिखे तो मार देता था। फिर मैं उसे अकेले में समझाता कि ये तमाचा तूने उसे मारा लेकिन उसकी वह *नोंध* रखेगी। तू *नोंध* नहीं रखता लेकिन वह तो *नोंध* रखेगी ही। अरे, यह तेरे छोटे-छोटे बच्चे, तू तमाचा मारता है तब तुझे टुकुर-टुकुर देखते रहते हैं, वे भी *नोंध* रखेंगे। और वे वापस, माँ और बच्चे इकट्ठे मिलकर इसका बदला लेंगे। वे कब बदला लेंगे? तेरा शरीर ढीला पड़ेगा तब। इसलिए स्त्री को मारने जैसा नहीं है। मारने से तो उल्टे तुम्हें ही नुकसानदायक, अंतरायरूप हो जाते हैं।

आश्रित किसे कहा जाता है? खूंटे से बंधी गाय होती है, उसे मारोगे तो वह कहाँ जाएगी? घर के लोग खूंटे से बाँधे हुए जैसे हैं, उन्हें मारोगे

तो आप टुच्चे कहलाओगे। उन्हें छोड़ दे और फिर मार, तो वे तुझे मारेंगे या फिर भाग जाएँगे। बाँधे हुए को मारना, वह शूरवीर का मार्ग कैसे कहलाएगा? वह तो निर्बल का काम कहलाएगा।

घर के मनुष्य को तो तनिक भी दुःख दिया ही नहीं जाना चाहिए। जिनमें समझ न हो, वे घरवालों को दुःख देते हैं।

फरियाद नहीं, *निकाल* लाना है

प्रश्नकर्ता : दादा, मेरी फरियाद कौन सुने?

दादाश्री : तू फरियाद करेगा तो तू फरियादी बन जाएगा। मैं तो जो फरियाद करने आए, उसे ही गुनहगार मानता हूँ। तुझे फरियाद करने का समय ही क्यों आया? फरियाद करनेवाला ज़्यादातर गुनहगार ही होता है। खुद गुनहगार होता है तो फरियाद करने आता है। तू फरियाद करेगा तो तू फरियादी बन जाएगा और सामनेवाला आरोपी बन जाएगा। इसलिए उसकी दृष्टि में आरोपी तू ठहरेगा। इसीलिए किसी के विरुद्ध फरियाद नहीं करनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : तो मुझे क्या करना चाहिए?

दादाश्री : 'वे' उल्टे दिखें तो कहना कि वे तो सबसे अच्छे इन्सान है, तू ही गलत है। ऐसे, गुणा हो गया हो तो भाग कर देना चाहिए और भाग हो गया हो तो गुणा कर देना चाहिए। यह गुणा-भाग किसलिए सिखाते हैं? संसार में निबेड़ा लाने के लिए।

वह भाग करे तो आप गुणा करना, ताकि रकम उड़ जाए। सामनेवाले व्यक्ति के लिए विचार करना कि उसने मुझे ऐसा कहा, वैसा कहा, वही गुनाह है। यह रास्ते में जाते समय दीवार से टकराएँ तो उसे क्यों नहीं डाँटते? पेड़ को जड़ क्यों कहा जाता है? जिसे चोट लगती है वे सब हरे पेड़ ही हैं! गाय का पैर अपने ऊपर पड़े तो आप क्या कुछ कहते हो? ऐसा ही सब लोगों का है। ज्ञानीपुरुष सबको किस तरह माफ कर देते हैं? वे समझते हैं कि यह बेचारा समझता नहीं है, पेड़ जैसा है। और समझदार को तो कहना ही नहीं पड़ता, वह तो अंदर तुरंत प्रतिक्रमण कर डालता है।

सामनेवाले का दोष देखना ही नहीं, नहीं तो उससे तो संसार बिगड़ जाएगा। खुद के ही दोष देखते रहने चाहिए। अपने ही कर्म के उदय का फल है यह! इसलिए कुछ कहने का ही नहीं रहा न?

सब अन्योन्य दोष देते हैं कि आप ऐसे हो, आप वैसे हो। और साथ में बैठकर टेबल पर भोजन करते हैं। ऐसे अंदर बैर बधता है, इसी बैर से दुनिया खड़ी है। इसीलिए तो हमने कहा है कि समभाव से *निकाल* करना। उससे बैर बंद होते हैं।

सुख लेने में फँसाव बढ़ा

संसारी मिठाई में क्या है? कोई ऐसी मिठाई है कि जो घड़ीभर भी टिके? अधिक खाई हो तो अजीर्ण होता है, कम खाई हो तो अंदर लालच रहता है। अधिक खाए तो अंदर तरफड़ाहट होती है। सुख ऐसा होना चाहिए कि तरफड़ाहट न हो। देखो न, इन दादा को है न ऐसा सनातन सुख!

सुख मिले, उसके लिए लोग शादी करते हैं, तब उल्टा अधिक फँसाव लगता है। मुझे कोई हेल्पर मिले, संसार अच्छा चले, ऐसा कोई पार्टनर मिले इसलिए शादी करते हैं न?

संसार ऐसे आकर्षक लगता है परंतु अंदर घुसने के बाद उलझन होती है, फिर निकला नहीं जाता। लक्कड़ का लड्डू जो खाए वह भी पछताए, जो न खाए वह भी पछताए।

शादी करके पछताते हैं, मगर पछताने से ज्ञान होता है। अनुभवज्ञान होना चाहिए न? यों ही किताब पढ़ें तो क्या अनुभवज्ञान होता है? किताब पढ़कर क्या वैराग्य आता है? वैराग्य तो पछतावा हो तब होता है।

इस तरह शादी निश्चित होती है

एक लड़की को शादी ही नहीं करनी थी, उसके घरवाले मेरे पास उसे लेकर आए। तब मैंने उसे समझाया, शादी किए बिना चले, ऐसा नहीं है, और शादी करके पछताए बिना चले, ऐसा नहीं है। इसलिए यह सब रोना-धोना रहने दे और मैं कहता हूँ उसके अनुसार तू शादी कर ले। जैसा वर मिले वैसा, परंतु वर तो मिला न। किसी भी प्रकार का दूल्हा चाहिए,

ताकि लोगों का उँगली उठाना टल जाए न! और किस आधार पर दूल्हा मिलता है वह मैंने उसे समझाया। वह लड़की समझ गई, और मेरे कहे अनुसार शादी कर ली। फिर पति ज़रा देखने में अच्छा नहीं लगा, परंतु उसने कहा कि मुझे दादाजी ने कहा है इसलिए शादी करनी ही है। उस लड़की को शादी करने से पहले ज्ञान दिया, और फिर तो उसने मेरे एक भी शब्द का उल्लंघन नहीं किया और वह लड़की एकदम सुखी हो गई।

लड़के लड़की को पसंद करने से पहले बहुत मीनमेख निकालते हैं। बहुत ऊँची है, बहुत नीची है, बहुत मोटी है, बहुत पतली है, ज़रा काली है। घनचक्कर, यह क्या भैंस है? लड़कों को समझाओ कि शादी करने का तरीका क्या होता है! तुझे जाकर लड़की को देख आना और आँख से आकर्षण हो वहाँ आपकी शादी निश्चित है और आकर्षण न हो तो आप बंद रखना।

'जगत्' बैर वसूलता ही है

यह तो 'ऐसे फिर, वैसे फिर' करता है! एक लड़का ऐसे बोल रहा था, उसे मैंने तो बहुत डाँटा। मैंने कहा, 'तेरी मदर भी बहू बनी थी। तू किस तरह का आदमी है?' स्त्रियों का इतना अधिक घोर अपमान! आज लड़कियाँ बढ़ गई हैं, इसलिए स्त्रियों का अपमान होता है। पहले तो इन बेवकूफों का घोर अपमान होता था। उसका ये बदला ले रहे हैं। पहले तो पाँच सौ बेवकूफ-राजा लाइन में खड़े रहते थे और एक राजकुमारी वरमाला पहनाने निकलती थी, और वे बेवकूफ गरदन आगे रखकर खड़े रहते थे! राजकुमारी आगे खिसक जाती तब उसे काटो तो खून भी न निकले! कितना घोर अपमान! अरे, छोड़ो यह शादी करना! उससे तो शादी नहीं की हो, वह अच्छा!

और आजकल तो लड़कियाँ भी कहने लगी हैं कि ज़रा ऐसे घूमो तो? आप ज़रा कैसे दिखते हो? देखो, आपने इस तरह देखने का सिस्टम निकाला तो यह हाल हो गया है आपका? इससे तो सिस्टम ही नहीं बनाते तो क्या बुरा था? यह आपने लफड़ा डाला तो आपका वह लफड़ा बढ़ा।

इस काल में ही, पिछले पाँचेक हज़ार वर्षों से ही पुरुष कन्या लेने

जाता है। उससे पहले तो बाप स्वयंवर रचाते थे और उसमें वे सौ बेवकूफ आए हुए होते थे! उसमें से कन्या एक बेवकूफ को पास करती थी! इस तरह पास होकर शादी करनी हो, उससे तो शादी नहीं करना अच्छा। ये सभी बेवकूफ लाइन में खड़े रहते थे, उसमें से कन्या वरमाला लेकर निकलती थी। सब के मन में लाखों आशाएँ होती थीं, वे गरदन आगे रखा करते! इस तरह अपनी पसंद की पत्नी लाएँ, उससे तो जन्म ही न लेना अच्छा! इसीसे आज वे बेवकूफ स्त्रियों का भयंकर अपमान करके बैर वसूल रहे हैं! स्त्री को देखने जाता है तब कहता है, 'ऐसे घूम, वैसे घूम।'

'कॉमनसेन्स' से 'सोल्युशन' आता है

मैं सबसे ऐसा नहीं कहता कि आप सब मोक्ष में चलो। मैं तो ऐसा कहता हूँ कि जीवन जीने की कला सीखो। कॉमनसेन्स तो थोड़ा-बहुत तो सीखो लोगों के पास से! तब सेठलोग मुझे कहते हैं कि हममें कॉमनसेन्स तो है। तब मैंने कहा, 'कॉमनसेन्स होता तो ऐसा होता ही नहीं। तू तो मूर्ख है।' सेठ ने पूछा, 'कॉमनसेन्स मतलब क्या?' मैंने कहा, 'कॉमनसेन्स यानी एवरीव्हेर एप्लिकेबल-थ्योरिटिकली एज़ वेल एज़ प्रेक्टिकली।' चाहे जैसा ताला हो, जंग लगा हुआ हो या चाहे जैसा हो लेकिन चाबी डालें कि तुरंत खुल जाए, वह कॉमनसेन्स है। आपके ताले तो खुलते नहीं, झगड़े करते हो और ताले तोड़ते हो! अरे, ऊपर बड़ा हथौड़ा मारते हो!

मतभेद आपमें पड़ता है? मतभेद मतलब क्या? ताला खोलना नहीं आया, वैसा कॉमनसेन्स कहाँ से लाए? मेरा कहना यह है कि पूरी तीन सौ साठ डिग्री का कॉमनसेन्स नहीं होता परंतु चालीस डिग्री, पचास डिग्री का तो आता है न? वैसा ध्यान में रखा हो तो? एक शुभ विचारणा पर चढ़ा हो तो उसे वह विचारणा याद आएगी और वह जागृत हो जाएगा। शुभ विचारणा के बीज पड़ें, तो फिर वह विचारणा शुरू हो जाती है। लेकिन यह सेठ तो सारे दिन लक्ष्मी के और सिर्फ लक्ष्मी के विचारों में ही घूमता रहता है! इसलिए मुझे सेठ से कहना पड़ता है, 'सेठ आप लक्ष्मी के पीछे पड़े हो? घर पूरा तहस-नहस हो गया है। बेटियाँ मोटर लेकर इधर जाती हैं, बेटे उधर जाते हैं और सेठानी इस तरफ जाती है। 'सेठ, आप तो हर

तरह से लुट गए हैं!' तब सेठ ने पूछा, 'मुझे करना क्या?' मैंने कहा, 'बात को समझो न। किस तरह जीवन जीना यह समझो। सिर्फ पैसों के ही पीछे मत पड़ो। शरीर का ध्यान रखो, नहीं तो हार्ट फेल होगा।' शरीर का ध्यान, पैसों का ध्यान, बेटियों के संस्कार का ध्यान, सब कोने बुहारने हैं। एक कोना आप बुहारते रहते हो, अब बंगले में एक ही कोना बुहारते रहें और दूसरे सब तरफ कचरा पड़ा हो तो कैसा लगेगा? सभी कोने बुहारने हैं। इस तरह तो जीवन कैसे जी पाएँगे?

कॉमनसेन्सवाला घर में मतभेद होने ही नहीं देता। वह कॉमनसेन्स कहाँ से लाए? वह तो 'ज्ञानीपुरुष' के पास बैठे, 'ज्ञानीपुरुष' के चरणों का सेवन करे, तब कॉमनसेन्स उत्पन्न होगा। कॉमनसेन्सवाला घर में या बाहर कहीं भी झगड़ा होने ही नहीं देता। इस मुंबई में मतभेदरहित घर कितने? मतभेद होता है, वहाँ कॉमनसेन्स कैसे कहलाएगा?

घर में 'वाइफ' कहे कि अभी दिन है तो आप 'ना, अभी रात है' कहकर झगड़ने लगो तो उसका कब पार आएगा? आप उसे कहो कि 'मैं तुझसे विनती करता हूँ कि रात है, ज़रा बाहर जाँच ले न!' तब भी वह कहे कि 'ना, दिन ही है।' तब आप कहना, 'यू आर करेक्ट। मुझसे भूल हो गई।' तो आपकी प्रगति शुरू होगी, नहीं तो इसका पार आए, ऐसा नहीं है। ये तो 'बाइपासर' (राहगीर) हैं सभी। 'वाइफ' भी 'बाइपासर' है।

रिलेटिव, अंत में दगा समझ में आता है

ये सभी 'रिलेटिव' सगाइयाँ हैं। इसमें कोई 'रियल' सगाई है ही नहीं। अरे, यह देह ही रिलेटिव है न! यह देह ही दगा है, तो उस दगे के सगे कितने होंगे? इस देह को हम रोज़ नहलाते-धुलाते हैं, फिर भी पेट में दु:खे तो ऐसा कहना कि 'रोज़ तेरा इतना ध्यान रखता हूँ, तो आज ज़रा शांत रह न!' फिर भी वह घड़ीभर भी शांत नहीं रहता। वह तो आबरू ले लेता है। अरे, इन बत्तीस दाँतों में से एक दु:ख रहा हो न तब भी वह चीखें मरवाएगा। सारा घर भर जाए उतने तो सारी ज़िंदगी में दातुन किए होंगे, रोज़ दातुन घिसते रहे होंगे, फिर भी मुँह साफ नहीं होता। वह तो, था वैसे का वैसा ही वापस। यानी यह तो दग़ा है। इसलिए मनुष्य जन्म

और हिन्दुस्तान में जन्म हो, ऊँची जाति में जन्म हो, और यदि मोक्ष का काम नहीं निकाल लिया तो तू भटक मरा। जा तेरा सबकुछ ही बेकार गया!

कुछ समझना तो पड़ेगा न?

भले मोक्ष की ज़रूरत सबको नहीं हो, लेकिन कॉमनसेन्स की ज़रूरत तो सभी को है न? यह तो कॉमनसेन्स नहीं होने से घर का खा-पीकर भी टकराव होते हैं। सब क्या कालाबाज़ार करते हैं? फिर भी घर के तीन लोगों में शाम तक तैंतीस मतभेद पड़ जाते हैं। इसमें क्या सुख मिला? फिर ढीठ बनकर जीता है। ऐसा स्वमानरहित जीवन किस काम का? उसमें भी मजिस्ट्रेट साहब कोर्ट में सात वर्ष की सजा ठोककर आए होते हैं, लेकिन घर में पंद्रह-पंद्रह दिन से केस पेन्डिंग पड़ा होता है। पत्नी के साथ अबोला होता है! तब अपने मजिस्ट्रेट साहब से पूछें कि 'क्यों साहब?' तब साहब कहते हैं कि पत्नी बहुत खराब है, बिल्कुल जंगली है। अब पत्नी से पूछें, 'क्यों, साहब तो बहुत अच्छे आदमी हैं न?' तब पत्नी कहेगी, 'जाने दो न। रॉटन (सड़ा हुआ) आदमी है।' अब ऐसा सुने तब से ही नहीं समझ जाएँ कि यह सारा पोलम्पोल है जगत्? इसमें करेक्टनेस जैसा कुछ भी नहीं है।

वाईफ यदि सब्ज़ी महँगे दाम की लाई हो तो सब्ज़ी देखकर मूर्ख चिल्लाता है, 'इतने महंगे भाव की सब्ज़ी तो ली जाती होगी? तब पत्नी कहेगी, 'यह आपने मुझ पर अटैक किया।' ऐसा कहकर पत्नी डबल अटैक करती है। अब उसका पार कैसे आए? वाइफ यदि महँगे भाव की सब्ज़ी ले आई हो तो आप कहना, 'बहुत अच्छा किया, मेरे धन्यभाग!', बाकी मेरे जैसे लोभी से इतना महँगा नहीं लाया जाता।'

हम एक व्यक्ति के यहाँ ठहरे थे। तब उनकी पत्नी दूर से पटककर चाय रख गई। मैं समझ गया कि इन दोनों के बीच कोई खटपट हुई है। मैंने उन बहनजी को बुलाकर पूछा, 'पटका क्यों?' तो वे कहती है कि ना, ऐसा कुछ नहीं है। मैंने उसे कहा, 'तेरे पेट में क्या बात है यह मैं समझ गया हूँ। मेरे पास छुपाती है? तूने पटककर दिया तो तेरा पति भी मन में समझ गया कि क्या हकीकत है। सिर्फ यह कपट छोड़ दे चुपचाप, यदि सुखी होना हो तो।'

पुरुष तो भोले होते हैं और ये स्त्रियाँ तो चालीस वर्ष पहले भी यदि पाँच-पच्चीस गालियाँ दी हों, तो वे कहकर बताती हैं कि आप उस दिन ऐसा कह रहे थे। इसीलिए सँभालकर स्त्री के साथ काम निकाल लेने जैसा है। स्त्री तो आपसे काम निकलवा लेगी। लेकिन आपको नहीं आता।

स्त्री डेढ़ सौ रुपये की साड़ी लाने को कहे तो आप पच्चीस अधिक देना। वह छह महीनों तक तो चलेगा! समझना पड़ेगा। लाइफ तो एक कला है! यह तो जीवन जीने की कला नहीं है और पत्नी लाने जाता है! बिना सर्टिफिकेट के पति बनने गया, पति बनने की योग्यता का सर्टिफिकेट होना चाहिए, तभी बाप बनने का अधिकार है। यह तो बिना अधिकार के बाप बन गए और वापस दादा भी बनते हैं! इसका कब पार आएगा? कुछ समझना चाहिए।

रिलेटिव में, तो जोड़ना

यह तो 'रिलेटिव' सगाईयाँ हैं। यदि 'रियल' सगाई हो न, तब तो हमारा ज़िद पर अड़ना काम का है कि जब तक नहीं सुधरेगी, तब तक मैं अपनी ज़िद पर अड़ा रहूँगा। लेकिन यह तो रिलेटिव! रिलेटिव मतलब एक घंटा यदि पत्नी के साथ जमकर लड़ाई हो जाए तो दोनों को डायवोर्स का विचार आ जाता है, फिर उस विचारबीज का पेड़ बनता है। आपको यदि वाइफ की ज़रूरत हो तो जब वह फाड़े तो आपको सिलते जाना है। तभी यह रिलेटिव संबंध टिकेगा, नहीं तो टूट जाएगा। बाप के साथ भी रिलेटिव संबंध है। लोग तो रियल सगाई मानकर बाप के साथ ज़िद पर अड़ जाते हैं। वह सुधरे नहीं, तब तक क्या ज़िद पर अड़े रहें? घनचक्कर, ऐसे करते-करते, सुधरते-सुधरते तो बूढ़ा मर जाएगा। उससे तो उसकी सेवा कर, और बेचारा बैर बाँधकर जाए उससे अच्छा तो उसे शांति से मरने दे न! उसके सींग उसे भारी। किसी के बीस-बीस फुट लंबे सींग होते हैं। उसमें आपको क्या भार? जिसके हों उसे भार।

आपको अपना फ़र्ज़ निभाना है इसीलिए ज़िद पर मत अड़ना, तुरंत बात का हल ला दो। इसके बावजूद भी सामनेवाला व्यक्ति बहुत लड़े तो कहना कि मैं तो पहले से ही बेवकूफ हूँ, मुझे तो ऐसा आता ही नहीं है। ऐसा कह दिया तो वह आपको छोड़ देगा। चाहे जिस रास्ते छूट जाओ

और मन में ऐसा मत मान बैठना कि सब चढ़ बैठेंगे तो क्या करूँगा? वे क्या चढ़ बैठेंगे? चढ़ बैठने की किसी के पास शक्ति ही नहीं है। ये सब कर्म के उदय से लट्टू नाच रहे हैं। इसलिए जैसे-तैसे करके आज का शुक्रवार बिना क्लेश किए बिता दो, कल की बात कल देख लेंगे। दूसरे दिन कोई पटाखा फूटने का हुआ तो कैसे भी उसे ढँक देना, फिर देख लेंगे। ऐसे दिन बिताने चाहिए।

वह सुधरा हुआ कब तक टिके?

हर एक बात में हम सामनेवाले के साथ एडजस्ट हो जाएँ तो कितना आसान हो जाएगा। हमें साथ में क्या ले जाना है? कोई कहेगा कि भाई उसे सीधा करो। अरे, उसे सीधा करने जाएगा तो तू टेढ़ा हो जाएगा। इसलिए वाइफ को सीधा करने मत जाना, जैसी हो उसे करेक्ट कहना। आप उसके साथ हमेशा का साथ हो तो अलग बात है। यह तो एक जन्म के बाद जाने कहाँ बिखर पड़ेंगे। दोनों के मरणकाल अलग, दोनों के कर्म अलग। कुछ लेना भी नहीं और देना भी नहीं! यहाँ से तो किसके यहाँ जाएगी, उसकी क्या खबर? आप सीधी करो और अगले जन्म में जाएगी किसी और के भाग्य में!

प्रश्नकर्ता : उसके साथ कर्म बंधे होंगे तो दूसरे जन्म में मिलेंगे तो सही न?

दादाश्री : मिलेंगे, लेकिन दूसरी तरह से मिलेंगे। किसी की औरत बनकर हमारे यहाँ बात करने आएगी। कर्म के नियम हैं न! यह तो ठौर नहीं और ठिकाना भी नहीं। कोई ही पुण्यशाली मनुष्य ऐसे होते हैं कि जो कुछ जन साथ में रहें। देखो न, नेमिनाथ भगवान, राजुल के साथ नौ जन्मों तक साथ ही साथ थे न! ऐसा हो तो बात अलग है। यह तो दूसरे जन्म का ही ठिकाना नहीं है। अरे, इस जन्म में ही चले जाते हैं न! उसे डायवोर्स कहते हैं न? इसी जन्म में दो पति करती है, तीन पति करती है!

एडजस्ट हो जाएँ, तब भी सुधरे

इसलिए आपको उन्हें सीधा नहीं करना है। वे आपको सीधा न करें। जैसा मिला वही सोने का। प्रकृति किसी की, कभी भी सीधी नहीं हो

सकती। कुत्ते की दुम टेढ़ी की टेढ़ी ही रहती है, इसलिए आप सँभलकर चलना। जैसी हो वैसी भले ही हो, 'एडजस्ट एवरीव्हेर'।

धमकाने की जगह पर आप नहीं धमकाओ, तो वाइफ अधिक सीधी रहती है। जो गुस्सा नहीं करता उसका ताप बहुत सख्त होता है। ये हम किसीको कभी भी डाँटते नहीं हैं, फिर भी हमारा ताप बहुत लगता है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर वह सीधी हो जाएगी?

दादाश्री : सीधा होने का मार्ग पहले से यही है। वह कलियुग के लोगों को पुसाता नहीं हैं, लेकिन उसके बगैर छुटकारा भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : मगर वह मुश्किल बहुत है।

दादाश्री : ना, ना वह मुश्किल नहीं है, वही आसान है। गाय के सींग गाय को भारी।

प्रश्नकर्ता : हमें भी वह मारती है न?

दादाश्री : किसी दिन लग जाता है। वह सींग मारने आए तो ऐसे खिसक जाते हैं, वैसे यहाँ पर भी खिसक जाना है! यह तो मुश्किल कहाँ आती है? मेरी शादी की हुई और मेरी वाइफ। अरे, नहीं है वाइफ और ये हसबैन्ड ही नहीं तो फिर वाइफ होती होगी? यह तो अनाड़ी के खेल हैं! आर्यप्रजा कहाँ रही है आजकल?

सुधारने के बदले सुधरने की ज़रूरत

प्रश्नकर्ता : 'खुद की भूल है' ऐसा स्वीकारकर पत्नी को सुधार नहीं सकते?

दादाश्री : सुधारने के लिए खुद ही सुधरने की ज़रूरत है। किसीको सुधारा ही नहीं जा सकता है। जो सुधारने के प्रयत्नवाले हैं, वे सब अहंकारी हैं। खुद सुधरा मतलब सामनेवाला सुधर ही जाएगा। मैंने ऐसे भी देखे हैं कि जो बाहर सब सुधारने निकले होते हैं और घर में उनकी वाइफ के सामने आबरू नहीं होती। मदर के सामने आबरू नहीं होती। ये किस तरह

के लोग हैं? पहले तू सुधर। मैं सुधारूँ, मैं सुधारूँ वह गलत इगोइज़म है। अरे! तेरा ही तो ठिकाना नहीं, फिर तू क्या सुधारनेवाला है? पहले खुद समझदार होने की ज़रूरत है। 'महावीर' महावीर होने का ही प्रयत्न करते थे और उसका इतना प्रभाव पड़ा है! पच्चीस सौ साल होने पर भी उनका प्रभाव जाता नहीं है। हम किसीको सुधारते नहीं हैं।

किसे सुधारने का अधिकार?

आपको सुधारने का अधिकार कितना है? जिसमें चैतन्य है, उसे सुधारने का आपको क्या अधिकार है? यह कपड़ा मैला हो गया हो तो उसे हमें साफ करने का अधिकार है। क्योंकि वहाँ सामने से किसी भी तरह का रिएक्शन नहीं है। और जिसमें चैतन्य है, वह तो रिएक्शनवाला है, उसे आप क्या सुधारोगे? जहाँ खुद की ही प्रकृति नहीं सुधरती, वहाँ दूसरे की क्या सुधारनी? खुद ही लट्टू है। ये सब टोप्स हैं। क्योंकि वे प्रकृति के अधीन है। पुरुष हुआ नहीं। पुरुष होने के बाद ही पुरुषार्थ उत्पन्न होता है। यह तो पुरुषार्थ देखा ही नहीं है।

व्यवहार निभाना, एडजस्ट होकर

प्रश्नकर्ता : व्यवहार में रहना है तो एडजस्ट एकपक्षीय तो नहीं होना चाहिए न?

दादाश्री : व्यवहार तो उसे कहते हैं कि 'एडजस्ट' हो जाएँ यानी कि पड़ोसी भी कहें कि, 'सब घर में झगड़े हैं, परंतु इस घर में झगड़ा नहीं है।' उसका व्यवहार सबसे अच्छा माना जाता है। जिसके साथ रास नहीं आए, वहीं पर शक्ति विकसित करनी है, रास आए वहाँ तो शक्ति है ही। नहीं रास आए वह तो कमज़ोरी है। मुझे सबके साथ कैसे रास आ जाता है? जितने एडजस्टमेन्ट्स लेंगे उतनी शक्तियाँ बढ़ेंगी और अशक्तियाँ टूटती जाएँगी। सच्ची समझ तो, दूसरी सभी समझ को ताले लगेंगे तभी आएगी।

'ज्ञानी' तो, यदि सामनेवाला टेढ़ा हो तब भी उसके साथ 'एडजस्ट' हो जाते हैं। 'ज्ञानीपुरुष' को देखकर चलो तो सभी तरह के 'एडजस्टमेन्ट्स' करने आ जाएँगे। उसके पीछे साइन्स क्या कहता है कि वीतराग हो जाओ,

राग-द्वेष मत करो। यह तो अंदर कुछ आसक्ति रह जाती है, इसलिए मार पड़ती है। इस व्यवहार में एकपक्षीय, निःस्पृह हो जाएँ तो टेढ़े कहलाएँगे। जब हमें ज़रूरत हो, तब सामनेवाला टेढ़ा हो फिर भी उसे मना लेना पड़ता है। स्टेशन पर मज़दूर चाहिए तो वह आनाकानी कर रहा हो, तब भी उसे चार आने कम-ज़्यादा करके भी मना लेना पड़ता है, और नहीं मनाओगे तो वह बैग आपके सिर पर ही डालेगा न?

'डोन्ट सी लॉज़, प्लीज़ सेटल' (कानून मत देखना, कृपया समाधान करो), सामनेवाले को 'सेटलमेन्ट' लेने के लिए कहना, 'आप ऐसा करो, वैसा करो', ऐसा कहने के लिए टाइम ही कहाँ होता है? सामनेवाले की सौ भूलें हों, तब भी हमें तो खुद की ही भूल कहकर आगे निकल जाना है। इस काल में लॉ (कानून) तो देखा जाता होगा? यह तो अंतिम स्तर पर आ गया है। जहाँ देखो वहाँ दौड़ादौड़ और भागम्भाग। लोग उलझ गए हैं। घर जाए तो वाइफ चिल्लाती है, बच्चे चिल्लाते हैं, नौकरी पर जाए तो सेठ चिल्लाता है, गाड़ी में जाए तो भीड़ में धक्के खाता है, कहीं भी चैन नहीं है। चैन तो चाहिए न? कोई लड़ने लगे तो हमें उसके ऊपर दया रखनी चाहिए कि अहोहो! इसे कितनी अधिक बेचैनी होगी कि वह लड़ पड़ता है! बेचैन हो जाते हैं, वे सब कमज़ोर हैं।

प्रश्नकर्ता : बहुत बार ऐसा होता है कि एक समय में दो लोगों के साथ एक ही बात पर 'एडजस्टमेन्ट' लेना होता है, तो एक ही समय में सभी ओर किस तरह ले सकते हैं?

दादाश्री : दोनों के साथ लिया जा सकता है। अरे, सात लोगों के साथ भी लेना हो, तब भी लिया जा सकता है। एक पूछे, 'मेरा क्या किया?' तब कहें, 'हाँ भाई, तेरे कहे अनुसार करूँगा। दूसरे को भी ऐसा कहेंगे, 'आप कहोगे वैसा करूँगा।' 'व्यवस्थित' के बाहर होनेवाला नहीं है, इसलिए चाहे जैसे झगड़ा खड़ा मत करना।'

यह तो सही-गलत कहने से भूत परेशान करते हैं। हमें तो दोनों को एक जैसा कर देना है। इसे अच्छा कहा इसलिए दूसरा गलत हो गया, इसलिए फिर वह परेशान करता है। पर दोनों का मिक्स्चर कर डालें इससे फिर असर नहीं रहेगा। एडजस्ट ऐवरीव्हेर की हमने खोज की है। सही

कह रहा हो उसके साथ और गलत कह रहा हो उसके साथ एडजस्ट हो। हमें कोई कहे, 'आपमें अक्ल नहीं है', तो हम उसके साथ तुरंत एडजस्ट हो जाएँगे और उसे कहेंगे कि 'यह तो पहले से ही नहीं थी! तू अभी कहाँ खोजने आया है? तुझे तो आज उसका पता चला, लेकिन मैं तो बचपन से ही जानता हूँ।' ऐसा कहें तो झंझट मिट गई न? फिर वह हमारे पास अक्ल ढूँढने आएगा ही नहीं। ऐसा नहीं करें तो 'अपने घर' कब पहुँच पाएँगे?

हम यह सरल और सीधा रास्ता बता देते हैं और ये टकराव क्या रोज़-रोज़ होते हैं? वह तो जब अपने कर्म का उदय हो तब होता है, उतना ही हमें एडजस्ट करना है। घर में लीला (पत्नी) के साथ झगड़ा हुआ हो तो झगड़ा होने के बाद लीला को होटल में ले जाकर, खाना खिलाकर खुश कर देना, अब ताँता नहीं रहना चाहिए।

एडजस्टमेन्ट को हम न्याय कहते हैं। आग्रह-दुराग्रह, वह कोई न्याय नहीं कहलाता। किसी भी प्रकार का आग्रह न्याय नहीं है। हम किसी का आग्रह नहीं पकड़ते। जिस पानी से मूँग गलें उससे गला लें, अंत में गटर के पानी से भी गला लें!!

डाकू मिल जाए और उसके साथ एडजस्ट नहीं होंगे तो वे मारेंगे। उसके बदले हम निश्चित करें कि उसके साथ एडजस्ट होकर काम लेना है। फिर उसे पूछे कि भाई तेरी क्या इच्छा है? देख भाई हम तो यात्रा करने निकले हैं। ऐसे उसके साथ एडजस्ट हो जाते हैं।

यह बाँद्रा की खाड़ी बदबू मारे तो उसे क्या लड़ने जाते हैं? वैसे ही ये मनुष्य बदबू मारते हैं, उन्हें कुछ कहने जाना चाहिए? बदबू मारनेवाले सभी खाड़ियाँ कहलाते हैं और सुगंधी आए वे बाग़ कहलाते हैं। जो-जो बदबू मारते हैं, वे सब कहते हैं कि आप हमारे प्रति वीतराग रहो।

यह एडजस्ट एवरीव्हेर नहीं होगा तो पागल हो जाओगे सब। सामनेवाले को छेड़ते रहोगे, उससे ही वे पागल होते हैं। इस कुत्ते को एक बार छेड़ें, दूसरी बार, तीसरी बार छेड़ें तब तक वह हमारी आबरू रखता है, लेकिन फिर बहुत छेड़छाड़ करें तो वह भी काट लेता है। वह भी समझ

जाता है कि यह रोज़ छेड़ता है, यह नालायक है, बेशर्म है। यह बात समझने जैसी है। कुछ भी झंझट करना नहीं है, एडजस्ट एवरीव्हेर।

नहीं तो व्यवहार की गुत्थियाँ रोकती हैं

पहले यह व्यवहार सीखना है। व्यवहार की समझ के बिना तो लोग तरह-तरह की मार खाते हैं।

प्रश्नकर्ता : अध्यात्म में तो आपकी बात के बारे में कुछ कहना ही नहीं है। परंतु व्यवहार में भी आपकी बात टॉप की बात है।

दादाश्री : ऐसा है न, कि व्यवहार में टोप का समझे बिना कोई मोक्ष में गया नहीं है, चाहे जितना बारह लाख का आत्मज्ञान हो, लेकिन व्यवहार समझे बिना कोई मोक्ष में गया नहीं। क्योंकि व्यवहार छुड़वानेवाला है न? वह न छोड़े तो आप क्या करोगे? आप शुद्धात्मा हो ही, परंतु व्यवहार छोड़े तब न? आप व्यवहार को उलझाते रहते हो। झटपट निबेड़ा लाओ न!

इन भैया से कहा हो कि 'जा, दुकान से आइस्क्रीम ले आ।' लेकिन वह आधे रास्ते से ही वापस आ जाए। आप पूछो, 'क्यों?' तो वह कहे, 'रास्ते में गधा मिल गया इसलिए, अपशुकन हो गया।' अब इसे ऐसा उल्टा ज्ञान हुआ है, उसका आपको *निकाल* करना चाहिए न? उसे समझाना चाहिए कि 'भाई, गधे में भगवान रहे हुए हैं, इसलिए कोई अपशुकन नहीं होता। तू गधे का तिरस्कार करेगा तो उसमें रहे हुए भगवान को पहुँचता है, उससे तुझे भयंकर दोष लगता है। वापस ऐसा नहीं होना चाहिए।' इस तरह से यह उल्टा ज्ञान हुआ है। इसके आधार पर एडजस्ट नहीं हो सकते।

काउन्टरपुली-एडजस्टमेन्ट की रीति

हमें पहले अपना मत नहीं रखना चाहिए। सामनेवाले से पूछना चाहिए कि इस बारे में आपका क्या कहना है? सामनेवाला अपना पकड़कर रखे तो हमें अपना छोड़ देना चाहिए। हमें तो इतना ही देखना है कि किस रास्ते सामनेवाले को दुःख न हो। अपना अभिप्राय सामनेवाले पर थोपना

नहीं है। सामनेवाले का अभिप्राय हमें लेना है। हम तो सबके अभिप्राय लेकर 'ज्ञानी' हुए हैं। मैं मेरा अभिप्राय किसी पर थोपने जाऊँ तो मैं ही कच्चा पड़ जाऊँगा। अपने अभिप्राय से किसीको दुःख नहीं होना चाहिए। तेरे रिवोल्युशन अठारह सौ हों और सामनेवाले के छह सौ हों, और तू तेरा अभिप्राय उस पर थोपने जाए तो सामनेवाले का इंजन टूट जाएगा। उसके सभी गियर बदलने पड़ेंगे।

प्रश्नकर्ता : रिवॉल्युशन मतलब क्या?

दादाश्री : यह विचारों की जो स्पीड है, वह हर एक की अलग होती है। कुछ हुआ हो तब वह एक मिनट में तो कितना ही दिखा देता है, उसके सभी पर्याय एट-ए-टाइम दिखा देता है। ये बड़े-बड़े प्रेसिडेन्टों को मिनट के बारह सौ-बारह सौ रिवॉल्युशन्स घूमते हैं। तब हमारे पाँच हज़ार होते हैं। महावीर के लाख रिवॉल्युशन्स घूमते थे।

यह मतभेद पड़ने का कारण क्या है? आपकी वाइफ के सौ रिवॉल्युशन्स हों और आपके पाँच सौ रिवॉल्युशन्स हों और आपको बीच में काउन्टरपुली डालना नहीं आता इसलिए चिनगारियाँ उड़ती हैं, झगड़े होते हैं। अरे! कई बार तो इंजन भी टूट जाता है। रिवॉल्युशन समझे आप? अगर मज़दूर से आप बात करो तो आपकी बात उसे पहुँचेगी नहीं। उसके रिवॉल्युशन पचास होते हैं और आपके पाँच सौ होते हैं, किसी के हज़ार होते हैं, किसी के बारह सौ होते हैं। जैसा जिसका डेवेलपमेन्ट हो उस अनुसार रिवॉल्युशन्स होते हैं। बीच में काउन्टरपुली डालो तभी उसे आपकी बात पहुँचेगी। काउन्टरपुली मतलब आपको बीच में पट्टा डालकर अपने रिवॉल्युशन्स कम कर देने पड़ेंगे। मैं हरएक व्यक्ति के साथ काउन्टरपुली डाल देता हूँ। सिर्फ अहंकार निकाल देने से काम हो जाएगा ऐसा नहीं है, काउन्टरपुली भी हरएक के साथ डालनी पड़ती है। इसीलिए तो हमारा किसी के साथ मतभेद ही नहीं होता न! हम समझते हैं कि इस व्यक्ति के इतने ही रिवॉल्युशन्स हैं। इसलिए उस अनुसार मैं काउन्टरपुली लगा देता हूँ। हमें तो छोटे बच्चों के साथ भी बहुत रास आता है। क्योंकि हम उनके साथ चालीस रिवॉल्युशन्स कर देते हैं इसलिए उसे मेरी बात पहुँचती है, नहीं तो वह मशीन टूट जाए।

प्रश्नकर्ता : कोई भी, सामनेवाले के लेवल पर आए तभी बात होती है?

दादाश्री : हाँ, उसके रिवॉल्युशन्स पर आए तभी बात होती है। यह आपके साथ बातचीत करते हुए हमारे रिवॉल्युशन्स कहीं के कहीं जाकर आते हैं! पूरे वर्ल्ड में घूम आते हैं। आपको काउन्टरपुली डालना नहीं आता, तो उसमें कम रिवॉल्युशनवाले इंजन का क्या दोष? वह तो आपका दोष कि आपको 'काउन्टरपुली' डालना नहीं आता।

उल्टा कहने से कलह हुई...

प्रश्नकर्ता : पति का भय, भविष्य का भय, एडजस्टमेन्ट लेने नहीं देता है। वहाँ पर 'हम उसे सुधारनेवाले कौन?' वह याद नहीं रहता, और सामनेवाले को चेतावनी के रूप में बोल देते हैं।

दादाश्री : वह तो 'व्यवस्थित' का उपयोग करे, 'व्यवस्थित' फिट हो जाए तो कोई परेशानी हो ऐसा नहीं है। फिर कुछ पूछने जैसा ही नहीं रहेगा। पति आए तब थाली और पाटा रखकर कहना कि चलिए भोजन के लिए। उनकी प्रकृति बदलनेवाली नहीं है। जो प्रकृति आप देखकर, पसंद करके, शादी करके लाईं, वह प्रकृति अंत तक देखनी है। तब क्या पहले दिन नहीं जानती थीं कि यह प्रकृति ऐसी ही है? उसी दिन अलग हो जाना था न? मुँह क्यों लगाया अधिक?

इस किच-किच से संसार में कोई फायदा नहीं होता, नुकसान ही होता है। किच-किच यानी कलह, इसलिए भगवान ने उसे कषाय कहा है।

जैसे-जैसे आप दोनों के बीच में प्रोब्लम बढ़ें, वैसे-वैसे अलग होता जाता है। प्रोब्लम सोल्व हो जाएँ फिर अलग नहीं रहता। जुदाई से दुःख है। और सभी को प्रोब्लम खड़े होते हैं। आपको अकेले को होते हैं ऐसा नहीं है। जितनों ने शादी की है उन्हें प्रोब्लम खड़े हुए बगैर रहते नहीं।

कर्म के उदय से झगड़े चलते रहते हैं, मगर जीभ से उल्टा बोलना बंद करो। बात पेट में ही रखो, घर में या बाहर बोलना बंद कर दो।

अहो! व्यवहार का मतलब ही...

प्रश्नकर्ता : प्रकृति न सुधरे, परंतु व्यवहार तो सुधरना चाहिए न?

दादाश्री : व्यवहार तो लोगों को आता ही नहीं। व्यवहार कभी आया होता न, अरे, आधे घंटे के लिए भी आया होता तो भी बहुत हो गया! व्यवहार तो समझे ही नहीं हैं। व्यवहार मतलब क्या? *उपलक* (सतही, ऊपर ऊपर से, सुपरफ्लुअस)! व्यवहार का मतलब सत्य नहीं है। यह तो व्यवहार को सत्य ही मान लिया है। व्यवहार में सत्य मतलब रिलेटिव सत्य। यहाँ के नोट सच्चे हों या झूठे हों दोनों 'वहाँ' के स्टेशन पर काम नहीं आते। इसलिए छोड़ न इसे, और 'अपना' काम निकाल ले। व्यवहार मतलब दिया हुआ वापस करना, वह। अभी कोई कहे कि, 'चंदूलाल में अक्ल नहीं है।' तो आप समझ जाना कि यह दिया हुआ वापस आया! यदि यह जो समझोगे तो वह व्यवहार कहलाएगा। आजकल व्यवहार किसी में है ही नहीं। जिसके लिए व्यवहार, व्यवहार है; उसका निश्चय, निश्चय है।

...और सम्यक् कहने से कलह शम जाता है

प्रश्नकर्ता : किसी ने जान-बूझकर यह वस्तु फेंक दी, तो वहाँ पर क्या एडजस्टमेन्ट लेना चाहिए?

दादाश्री : यह तो फेंक दिया, लेकिन बच्चा फेंक दे तब भी आपको 'देखते' रहना है। बाप बच्चे को फेंक दे तो आपको देखते रहना है। तब क्या आपको पति को फेंक देना चाहिए? एक को तो अस्पताल जाना पड़ा, अब वापस दो अस्पताल खड़े करने हैं? और फिर जब उसका चलेगा तब वह हमें पछाड़ देगा, फिर तीन अस्पताल खड़े हो जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : तो फिर कुछ कहना ही नहीं चाहिए?

दादाश्री : कहो, लेकिन सम्यक् कहना, यदि बोलना आए तो। नहीं तो कुत्ते की तरह भौंकते रहने का अर्थ क्या? इसलिए सम्यक् कहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : सम्यक् मतलब किस तरह का?

दादाश्री : 'ओहोहो! आपने इस बच्चो को क्यों फेंका? क्या कारण है उसका?' तब वह कहे कि, 'जान-बूझकर मैं कोई थोड़े फेंकूँगा? वह तो मेरे हाथ में से छटक गया और गिर पड़ा।'

प्रश्नकर्ता : वह तो, उसने गलत बोला न?

दादाश्री : वे झूठ बोले, वह आपको नहीं देखना है। झूठ बोलें या सच बोलें वह उसके अधीन है, वह आपके अधीन नहीं है। वह उसकी मरज़ी में आए ऐसा करें। उसे झूठ बोलना हो या आपको खत्म करना हो, वह उसके ताबे में है। रात को आपकी मटकी में ज़हर डाल दे तो आप तो खत्म ही हो जाओगी न! इसलिए जो हमारे ताबे में नहीं है वह हमें नहीं देखना है। सम्यक् कहना आए तो काम का है कि भाई इससे आपको क्या फायदा हुआ? तो वह अपने आप कबूल करेगा। सम्यक् कहना आता नहीं और आप पाँच सेर का दोगे तो वह दस सेर का देगा!

प्रश्नकर्ता : कहना नहीं आए तो फिर क्या करना चाहिए? चुप बैठना चाहिए?

दादाश्री : मौन रहो और देखती रहो कि क्या हो रहा है? सिनेमा में बच्चों को पटकते हैं, तब क्या करती हो आप? कहने का अधिकार है सबका, लेकिन कलह नहीं बढ़े उस तरह से कहने का अधिकार है। बाकी, जो कहने से कलह बढ़े वह तो मूर्ख का काम है।

टकोर, अहंकारपूर्वक नहीं करते

प्रश्नकर्ता : व्यवहार में कोई गलत कर रहा हो उसे टकोर तो करनी पड़ती है। उससे उसे दु:ख होता है, तो किस तरह उसका *निकाल* करें?

दादाश्री : व्यवहार में टकोर करनी पड़ती है, परंतु उसमें अहंकार सहित होता है, इसलिए उसका प्रतिक्रमण करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : टकोर नहीं करें तो वह सिर पर चढ़ता है?

दादाश्री : टोकना तो पड़ता है, लेकिन कहना आना चाहिए। कहना

नहीं आए, व्यवहार नहीं आए, तब अहंकार सहित टकोर होती है। इसलिए बाद में उसका प्रतिक्रमण करना चाहिए। आप सामनेवाले को टोको तब सामनेवाले को बुरा तो लगेगा, परंतु उसका प्रतिक्रमण करते रहोगे तब फिर छह महीने, बारह महीने में वाणी ऐसी निकलेगी कि सामनेवाले को मीठी लगेगी। अभी तो टेस्टेड वाणी चाहिए, अन्टेस्टेड वाणी बोलने का अधिकार नहीं है। इस तरह से प्रतिक्रमण करोगे तो चाहे कैसा भी होगा, फिर भी सीधा हो जाएगा।

यह अबोला तो बोझा बढ़ाए

प्रश्नकर्ता : अबोला रखकर, बात को टालने से उसका *निकाल* हो सकता है?

दादाश्री : नहीं हो सकता। आपको तो सामनेवाला मिले तो 'कैसे हो, कैसे नहीं', ऐसा कहना चाहिए। सामनेवाला ज़रा शोर मचाए तो आपको ज़रा धीरे रहकर समभाव से *निकाल* करना चाहिए। उसका *निकाल* तो करना ही पड़ेगा न, कभी न कभी? बोलना बंद करोगे उससे क्या *निकाल* हो गया? उससे *निकाल* नहीं होता है, इसीलिए तो अबोला खड़ा होता है। अबोला मतलब बोझा, जिसका *निकाल* नहीं हुआ उसका बोझा। तुरंत उसे खड़ा रखकर कहना चाहिए, 'खड़े रहो न, मेरी कोई भूल हो तो मुझे कहो। मेरी बहुत भूलें होती हैं। आप तो बहुत होशियार, पढ़े-लिखे, इसलिए आपकी नहीं होतीं, लेकिन मैं पढ़ा-लिखा कम हूँ इसलिए मेरी बहुत भूलें होती हैं।' ऐसा कहने पर वह खुश हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : ऐसा करने से वह नरम नहीं पड़े तो क्या करें?

दादाश्री : नरम नहीं पड़ें तो आपको क्या करना है? आपको तो कहकर छूट जाना है, फिर क्या उपाय? कभी न कभी किसी दिन नरम पड़ेगा। डाँटकर नरम करो तो वह उससे कुछ नरम होगा नहीं। आज नरम दिखेगा, लेकिन वह मन में *नोंध* रख छोड़ेगा और जब आप नरम होंगे उस दिन वह सब वापस निकालेगा। यानी जगत् बैरवाला है। नियम ऐसा है कि बैर रखे, अंदर परमाणु संग्रह करके रखे, इसलिए आपको पूरा केस ही हल कर देना है।

प्रकृति के अनुसार एडजस्टमेन्ट...

प्रश्नकर्ता : हम सामनेवाले को अबोला तोड़ने का कहें कि 'मेरी भूल हो गई, अब माफ़ी माँगता हूँ।' फिर भी उसका दिमाग़ अधिक चढ़े तो क्या करें?

दादाश्री : तब आप कहना बंद कर देना। उसे ऐसा कोई उल्टा ज्ञान हो चुका है कि 'बहुत नमे नादान'। वहाँ फिर दूर रहना चाहिए। फिर जो हिसाब हो, वही ठीक। परंतु जितने सरल हों न, वहाँ तो हल ला देना चाहिए। घर में कौन-कौन सरल हैं और कौन-कौन टेढ़े हैं, क्या आप इतना नहीं समझते?

प्रश्नकर्ता : सामनेवाला सरल नहीं हो तो उसके साथ हमें व्यवहार तोड़ डालना चाहिए?

दादाश्री : नहीं तोड़ना चाहिए। व्यवहार तोड़ने से टूटता नहीं है। व्यवहार तोड़ने से टूटे ऐसा है भी नहीं। इसलिए वहाँ आपको मौन रहना चाहिए कि किसी दिन चिढ़ेगा तब फिर अपना हिसाब पूरा हो जाएगा। आप मौन रखें तब किसी दिन वह चिढ़े और खुद ही बोले कि आप बोलते नहीं, कितने दिनों से चुपचाप फिरते हो! ऐसे चिढ़े यानी हमारा काम हो जाएगा। अब क्या करें फिर? यह तो तरह-तरह का लोहा होता है, हमें सब पहचान में आते हैं। कुछ को बहुत गरम करें तो मुड़ जाता है। कुछ को भट्ठी में रखना पड़ता है फिर जल्दी से दो हथौड़े मारे कि सीधा हो जाता है। ये तो तरह-तरह के लोहे हैं! इसमें आत्मा, वह आत्मा है, परमात्मा है और लोहा, वह लोहा है। ये सभी धातु हैं।

सरलता से भी सुलझ जाए

प्रश्नकर्ता : हमें घर में किसी वस्तु का ध्यान नहीं रहता हो, घरवाले हमें ध्यान रखो, ध्यान रखो कहते हों, फिर भी न रहे तो उस समय क्या करें?

दादाश्री : कुछ भी नहीं, घरवाले कहें, 'ध्यान रखो, ध्यान रखो।' तब आप कहना कि 'हाँ, रखूँगा।' आपको ध्यान रखने का निश्चय करना

है। फिर भी ध्यान नहीं रहा और कुत्ता घुस गया, तब कहो कि 'मुझे ध्यान नहीं रहता।' उसका हल तो लाना पड़ेगा न? हमें खुद को भी किसी ने ध्यान रखने का सौंपा हो और हम ध्यान रखें, फिर भी नहीं रहा तो कह देते हैं कि 'भाई यह नहीं रह सका हमसे।'

ऐसा है न, 'हम बड़ी उम्र के हैं', ऐसा ध्यान नहीं रहे तब काम होगा। बालक जैसी अवस्था हो तो समभाव से *निकाल* अच्छा होता है। हम तो बालक जैसे हैं, इसलिए जैसा होता है हम वैसा कह देते हैं, ऐसे भी कह देते हैं और वैसे भी कह देते हैं, बहुत बड़प्पन क्या करना?

जिसे कसौटी हो, वे पुण्यवान कहलाते हैं! इसलिए उकेल लाना, झक नहीं पकड़नी है। आपको अपने आप अपना दोष कह देना चाहिए। नहीं तो वे कहते हो तब आपको खुश होना चाहिए कि 'ओहोहो! आप मेरा दोष जान गए! बहुत अच्छा किया! आपकी बुद्धि हम नहीं जानते थे।'

...सामनेवाले का समाधान कराओ न?

कोई भूल होगी, तो सामनेवाला कहता होगा न? इसलिए भूल खत्म कर डालो न! इस जगत् में कोई जीव किसीको तकलीफ़ नहीं दे सकता, ऐसा स्वतंत्र है, और तकलीफ़ देते हैं वह पूर्व की दख़ल की हुई थी इसलिए। उस भूल को मिटा दो फिर हिसाब रहेगा नहीं।

कोई 'लाल झंडी' दिखाए तो समझ जाना कि इसमें आपकी ही कोई भूल है। यानी आपको उसे पूछना चाहिए कि भाई 'लाल झंडी' क्यों दिखा रहे हो? तब वह कहे कि, 'आपने ऐसा क्यों किया था?' तब उससे माफ़ी माँग लेना और कहना कि 'अब तू हरी झंडी दिखाएगा न?' तब वह हाँ कहेगा।

हमें कोई लाल झंडी दिखाता ही नहीं। हम तो सभी की हरी झंडी देखते हैं, उसके बाद आगे चलते हैं। कोई एक व्यक्ति भी निकलते समय यदि लाल झंडी दिखाए तो उसे पूछते हैं कि भाई तू क्यों लाल झंडी दिखा रहा है? तब वह कहे कि आप तो उस तारीख को जानेवाले थे, लेकिन पहले क्यों जा रहे हैं? तब हम उसे समझाते हैं कि, 'यह काम आ पड़ा

इसीलिए मजबूरन जाना पड़ रहा है!' तब वह सामने से कहेगा कि तब तो आप जाओ, जाओ, कोई परेशानी नहीं है।

यह तो तेरी ही भूल के कारण लोग लाल झंडी दिखाते हैं। लेकिन यदि तू उसका खुलासा करे तो जाने देंगे। लेकिन यह तो कोई लाल झंडी दिखाए तब फिर मूर्ख शोर मचा देता है, 'जंगली, जंगली, बेअक्ल, लाल झंडी दिखाता है?' ऐसे डाँटता है। अरे, यह तो तूने नया खड़ा किया। कोई लाल झंडी दिखाता है अर्थात् 'देयर इज़ समथिंग रोंग।' कोई ऐसे ही लाल झंडी नहीं दिखाता।

झगड़ा, रोज़ तो कैसे पुसाए?

दादाश्री : घर में झगड़े होते हैं?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : माइल्ड होते हैं या सचमुच में होते हैं?

प्रश्नकर्ता : सचमुच में भी होते हैं, परंतु दूसरे दिन भूल जाते हैं।

दादाश्री : भूल नहीं जाओ तो करोगे क्या? भूल जाएँ तो भी वापस झगड़ा होता है न? यदि भूलते नहीं तो वापस झगड़ा कौन करता? बड़े-बड़े बंगलों में रहते हैं, पाँच लोग रहते हैं, फिर भी झगड़ा करते हैं। कुदरत खाने-पीने का देती है, तब भी लोग झगड़ा करते हैं! ये लोग झगड़े, क्लेश, कलह करने में सूरमा हैं।

जहाँ लड़ाई-झगड़े हैं, वह अंडरडेवेलप्ड प्रजा है। सार निकालना आता नहीं, इसलिए लड़ाई-झगड़े होते हैं।

जितने मनुष्य हैं उतने अलग-अलग धर्म हैं। लेकिन खुद के धर्म का मंदिर बनाए किस तरह? बाकी, धर्म तो हरएक के अलग हैं। उपाश्रय में सामायिक करते हैं, वह भी हरएक की अलग-अलग होती हैं। अरे, कितने तो पीछे बैठे-बैठे कंकड़ मारा करते हैं, वे भी उनकी सामायिक ही करते हैं न? इसमें धर्म रहा नहीं, मर्म रहा नहीं। यदि धर्म भी रहा होता तो घर में झगड़े नहीं होते। होते तो भी महीने में एकाध बार होते। अमावस

महीने में एक दिन ही आती है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : ये तो तीसों दिन अमावस। झगड़े में क्या मिलता होगा?

प्रश्नकर्ता : नुकसान मिलता है।

दादाश्री : घाटे का व्यापार तो कोई करता ही नहीं न! कोई नहीं कहता कि नुकसान का व्यापार करो! कुछ तो नफा कमाते होंगे न?

प्रश्नकर्ता : झगड़े में आनंद आता होगा!

दादाश्री : यह दूषमकाल है इसलिए शांति रहती नहीं है, वह जला हुआ दूसरे को जलाए तब उसे शांति होती है। कोई आनंद में हो, वह उसे अच्छा नहीं लगता, इसलिए पलीता दाग़कर वह जाए, तब उसे शांति होती है। ऐसा जगत् का स्वभाव है। बाकी, जानवर भी विवेकवाले होते हैं, वे झगड़ते नहीं हैं। कुत्ते भी खुद के मुहल्लेवाले हों उनके साथ अंदर-अंदर नहीं झगड़ते हैं। बाहर के मुहल्लेवाले आएँ तब सब साथ मिलकर उनके साथ लड़ते हैं। जब कि ये मूर्ख अंदर-अंदर लड़ते हैं। ये लोग विवेकशून्य हो गए हैं।

'झगड़ाप्रूफ' हो जाने जैसा है

प्रश्नकर्ता : हमें झगड़ा नहीं करना हो, हम कभी भी झगड़ा ही नहीं करते हों फिर भी घर में सब सामने से रोज़ झगड़े करते रहें तो वहाँ क्या करना चाहिए?

दादाश्री : आपको झगड़ाप्रूफ हो जाना चाहिए। झगड़ाप्रूफ होंगे तभी इस संसार में रह पाएँगे। हम आपको झगड़ाप्रूफ बना देंगे। झगड़ा करनेवाला भी ऊब जाए, ऐसा हमारा स्वरूप होना चाहिए। वर्ल्ड में कोई भी हमें डिप्रेस न कर सके ऐसा होना चाहिए। हमारे झगड़ाप्रूफ हो जाने के बाद झंझट ही नहीं न? लोगों को झगड़े करने हों, गालियाँ देनी हो तब भी हर्ज नहीं और फिर भी बेशर्म नहीं कहलाएँगे, बल्कि जागृति बहुत बढ़ेगी।

बैरबीज में से झगड़ों का उद्भव

पहले जो झगड़े किए थे, उनके बैर बँधते हैं और वे आज झगड़े के रूप में चुकाए जाते हैं। झगड़ा हो, उसी घड़ी बैर का बीज पड़ जाता है, वह अगले भव में उगेगा।

प्रश्नकर्ता : तो वह बीज किस तरह से दूर हो?

दादाश्री : धीरे-धीरे समभाव से *निकाल* करते रहो तो दूर होगा। बहुत भारी बीज पड़ा हो तो देर लगेगी, शांति रखनी पड़ेगी। अपना कुछ भी कोई ले नहीं लेता। खाने का दो टाइम मिलता है, कपड़े मिलते हैं, फिर क्या चाहिए?

भले ही कमरे को ताला लगाकर चला जाए, लेकिन आपको दो टाइम खाने का मिलता है या नहीं मिलता, उतना ही देखना है। आपको बंद करके जाए, फिर भी कुछ नहीं, आप सो जाना। पूर्वभव के बैर ऐसे बँधे हुए होते हैं कि ताले में बंद करके जाता है। बैर और वह भी नासमझी से बँधा हुआ। समझवाला हो तो हम समझ जाएँ कि यह समझवाला है, तब भी हल आ जाए। अब नासमझीवाला हो वहाँ किस तरह हल आए। इसलिए वहाँ बात छोड़ देनी चाहिए।

ज्ञान से, बैरबीज छूटे

अब बैर सब छोड़ देने हैं। इसीलिए कभी 'हमारे' पास से स्वरूपज्ञान प्राप्त कर लेना ताकि सभी बैर छूट जाएँ। इसी भव में ही सब बैर छोड़ देने हैं, हम आपको रास्ता दिखाएँगे। संसार में लोग ऊबकर मौत क्यों ढूँढते हैं? ये परेशानियाँ पसंद नहीं हैं, इसलिए। बात तो समझनी पड़ेगी न? कब तक मुश्किल में पड़े रहोगे? यह तो कीड़े-मकोड़ों जैसा जीवन हो गया है। निरी तरफड़ाहट, तरफड़ाहट और तरफड़ाहट। मनुष्य में आने के बाद फिर तरफड़ाट क्यों हो? जो ब्रह्मांड का मालिक कहलाए उसकी यह दशा! सारा जगत् तरफड़ाहट में है और तरफड़ाहट में न हो तो मूर्छा में होता है। इन दोनों के अलावा बाहर जगत् नहीं है। और तू ज्ञानघन आत्मा हो गया तो दख़ल गया।

जैसा अभिप्राय वैसा असर

प्रश्नकर्ता : ढोल बज रहा हो तो, चिढ़नेवाले को चिढ़ क्यों होती है?

दादाश्री : वह तो माना कि 'पसंद नहीं है' इसलिए। यह ढोल बज रहा हो तो आप कहना कि 'अहोहो! ढोल बहुत अच्छा बज रहा है!' इसलिए फिर अंदर कुछ नहीं होगा। 'यह खराब है' ऐसा अभिप्राय दिया तो अंदर सारी मशीनरी बिगड़ जाती है। अपने को तो नाटकीय भाषा में कहना है कि 'बहुत अच्छा ढोल बजाया।' इससे अंदर छूता नहीं।

यह 'ज्ञान' मिला है इसलिए सब 'पेमेन्ट' किया जा सकता है। विकट संयोगों में तो ज्ञान बहुत हितकारी है, ज्ञान का 'टेस्टिंग' हो जाता है। ज्ञान की रोज़ 'प्रैक्टिस' करने जाएँ तो कुछ 'टेस्टिंग' नहीं होता। वह तो एकबार विकट संयोग आ जाए तो सब 'टेस्टेड' हो जाता है।

यह सद्विचारणा, कितनी अच्छी

हम तो इतना जानते हैं कि झगड़ने के बाद वाइफ के साथ व्यवहार ही नहीं रखना हो तो अलग बात है। परंतु वापस बोलना है तो फिर बीच की सारी ही भाषा गलत है। हमें तो यह लक्ष्य में ही होता है कि दो घंटे बाद वापस बोलना है, इसलिए उसके साथ किच-किच नहीं करें। यह तो, यदि आपको अभिप्राय वापस बदलना नहीं हो तो अलग बात है। यदि अपना अभिप्राय नहीं बदलें तो अपना किया हुआ खरा है। वापस यदि वाइफ के साथ बैठनेवाले ही न हों तो झगड़ना ठीक है। लेकिन यह तो कल वापस साथ में बैठकर भोजन करनेवाले हो, तो फिर कल नाटक किया उसका क्या? वह विचार करना पड़ेगा न? ये लोग तिल सेक-सेककर बोते हैं, इसलिए सारी मेहनत बेकार जाती है। जब झगड़े हो रहे हों, तब लक्ष्य में रहना चाहिए कि ये कर्म नाच नचा रहे हैं। फिर उस 'नाच' का ज्ञानपूर्वक हल लाना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : दादा, यह तो झगड़ा करनेवाले दोनों व्यक्तियों को समझना चाहिए न?

दादाश्री : ना, यह तो 'सब अपना-अपना सँभालो।' आप सुधरेंगे तो सामनेवाला सुधरेगा। यह तो विचारणा है, और एक घड़ी बाद साथ में बैठना है तो कलह क्यों? शादी की है तो कलह क्यों? आप बीते कल को भुला चुके हो और हमें तो सभी वस्तु 'ज्ञान' में हाज़िर होती हैं। जब कि यह तो सद्विचारणा है और 'ज्ञान' न हो उसे भी काम आए। यह अज्ञान से मानता है कि वह चढ़ बैठेगी। कोई हमें पूछे तो हम कहेंगे कि 'तू भी लट्टू और वह भी लट्टू तो किस तरह चढ़ बैठेगी? वह कोई उसके बस में है?' वह तो 'व्यवस्थित' के बस में है और वाइफ चढ़कर कहाँ ऊपर बैठनेवाली है? आप ज़रा झुक जाओ तो उस बेचारी के मन का अरमान भी पूरा हो जाएगा कि अब पति मेरे काबू में है। यानी संतोष होगा उसे।

शंका, वह भी लड़ाई-झगड़े का कारण

घर में अधिकतर लड़ाई-झगड़े अभी शंका से खड़े हो जाते हैं। यह कैसा है कि शंका से स्पंदन उठते हैं और स्पंदनों के विस्फोट होते हैं। और यदि निःशंक हो जाए न तो विस्फोट अपने आप शांत हो जाएँगे। पति-पत्नी दोनों शंकावाले हो जाएँ तो फिर विस्फोट किस तरह शांत होंगे? एक को तो निःशंक होना ही पड़ेगा। माँ-बाप के लड़ाई-झगड़ों से बच्चों के संस्कार बिगड़ते हैं। बच्चों के संस्कार नहीं बिगड़ें, इसलिए दोनों को समझकर समाधान लाना चाहिए। यह शंका निकालेगा कौन? अपना 'ज्ञान' तो संपूर्ण निःशंक बनाए ऐसा है। आत्मा की अनंत शक्तियाँ हैं।

ऐसी वाणी को निबाह लें

यह तिपाई लगे तो उसे गुनहगार नहीं मानते, लेकिन दूसरा कोई मारे तो उसे गुनहगार मानते हैं। कुत्ता काटे नहीं और खाली भौंकता रहे तो हम उसे चला लेते हैं न! यदि मनुष्य हाथ नहीं उठाए और केवल भौंके तो निभा नहीं लेना चाहिए? भौंकना यानी टु स्पीक। बार्क यानी भौंकना। 'यह पत्नी बहुत भौंकती रहती है' ऐसा बोलते हैं न? ये वकील भी कोर्ट में नहीं भौंकते? वह जज दोनों को भौंकते हुए देखता रहता है। ये वकील निर्लेपता से भौंकते हैं न? कोर्ट में तो आमने-सामने 'आप ऐसे हो, आप वैसे हो, आप हमारे मुवक्किल पर ऐसे झूठे आरोप लगा रहे हो' ऐसे भौंकते

हैं। हमें ऐसा लगता है कि ये दोनों बाहर निकलकर मारामारी करेंगे, परंतु बाहर निकलने के बाद देखें तो दोनों साथ में बैठकर आराम से चाय पी रहे होते हैं!

प्रश्नकर्ता : वह ड्रामेटिक लड़ना कहलाएगा न?

दादाश्री : ना। वह तोतामस्ती कहलाती है। ड्रामेटिक तो 'ज्ञानीपुरुष' के अलावा किसीको आता नहीं है। तोते मस्ती करते हैं तो हम घबरा जाते हैं कि ये अभी मर जाएँगे, लेकिन नहीं मरते। वे तो यों ही चोंच मारा करते हैं। किसीको लगे नहीं ऐसे चोंच मारते हैं।

हम वाणी को रिकार्ड कहते हैं न? रिकार्ड बजा करती हो कि चंदू में अक्ल नहीं, चंदू में अक्ल नहीं। तब आप भी गाने लगना कि चंदू में अक्ल नहीं है।

ममता के पेच खोलें किस तरह?

पूरे दिन काम करते-करते भी पति के प्रतिक्रमण करते रहना चाहिए। एक दिन में छह महीने का बैर धुल जाएगा और आधा दिन हो तो मानो न तीन महीने तो कम हो जाएँगे। शादी से पहले पति के साथ ममता थी? ना। तो ममता कब से बंधी? शादी के समय मंडप में आमने-सामने बैठे, तब उसने निश्चित किया कि ये मेरे पति आए। ज़रा मोटे हैं, और काले हैं। इसके बाद उसने भी निश्चित किया कि ये मेरी पत्नी आई। तब से 'मेरा-मेरा' के जो पेच घुमाए, वे चक्कर घूमते ही रहते हैं। पंद्रह वर्षों की यह फिल्म है, उसे 'नहीं हैं मेरे, नहीं हैं मेरे' करोगी तब वे पेच खुलेंगे और ममता टूटेगी। यह तो शादी हुई तब से अभिप्राय खड़े हुए, प्रेजुडिस खड़ा हुआ कि 'ये ऐसे हैं, वैसे हैं।' उससे पहले कुछ था? अब तो आपको मन में निश्चित करना है कि, 'जो है, वो यही है।' और आप खुद पसंद करके लाए हैं। अब क्या पति बदला जा सकता है?

सभी जगह फँसाव! कहाँ जाएँ?

जिसका कोई रास्ता नहीं उसे क्या कहा जाए? जिसका रास्ता नहीं हो उसके पीछे रोना-धोना नहीं करते। यह अनिवार्य जगत् है। घर में पत्नी

का क्लेशवाला स्वभाव पसंद नहीं हो, बड़े भाई का स्वभाव पसंद नहीं हो, इस तरफ पिताजी का स्वभाव पसंद नहीं हो, इस तरह के संग में मनुष्य फँस जाए तब भी रहना पड़ता है। कहाँ जाए पर? इस फँसाव से चिढ़ मचती है, लेकिन जाए कहाँ? चारों तरफ बाड़ है। समाज की बाड़ होती है। 'समाज मुझे क्या कहेगा?' सरकार की भी बाड़ें होती हैं। यदि परेशान होकर जलसमाधि लेने जुहू के किनारे जाए तो पुलिसवाले पकड़ेंगे। 'अरे भाई, मुझे आत्महत्या करने दे न चैन से, मरने दे न चैन से।' तब वह कहेगा, 'ना, मरने भी नहीं दिया जा सकता। यहाँ तो आत्महत्या करने के प्रयास का गुनाह किया इसलिए तुझे जेल में डालते हैं।' मरने भी नहीं देते और जीने भी नहीं देते, इसका नाम संसार! इसलिए रहो न चैन से... और आराम से सो नहीं जाएँ? ऐसा यह अनिवार्यतावाला जगत्! मरने भी नहीं दे और जीने भी नहीं दे।

इसलिए जैसे-तैसे करके एडजस्ट होकर टाइम बिता देना चाहिए ताकि उधार चुक जाए। किसी का पच्चीस वर्ष का, किसी का पंद्रह वर्ष का, किसी का तीस वर्ष का, ज़बरदस्ती हमें उधार पूरा करना पड़ता है। नहीं पसंद हो तब भी उसी के उसी कमरे में साथ में रहना पड़ता है। यहाँ बिस्तर मेमसाहब का और यहाँ बिस्तर भाईसाहब का। मुँह टेढ़े फिराकर सो जाएँ तब भी विचार में तो मेमसाहब को भाईसाहब ही आते हैं न? चारा ही नहीं है। यह जगत् ही ऐसा है। उसमें भी सिर्फ पति को ही वे पसंद नहीं हैं ऐसा नहीं है, उन्हें भी पति पसंद नहीं होते! इसलिए इसमें मज़े लेने जैसा नहीं है।

इस संसार के झंझट में विचारशील को पुसाता नहीं है। जो विचारशील नहीं है, उसे तो यह झंझट है उसका भी पता नहीं चलता। वह मोटा बहीखाता कहलाता है। जैसे कि कोई कान से बहरा आदमी हो, उसके सामने उसकी चाहे जितनी गुप्त बातें करें, उसमें क्या परेशानी है? ऐसा अंदर भी बहरा होता है सब इसलिए उसे यह जंजाल पुसाता है, बाकी जगत् में मज़े ढूँढने जाता है तो इसमें तो भाई कोई मज़ा होता होगा?

पोलम्पोल कब तक ढँकनी?

यह तो सारा बनावटी जगत् है! और घर में कलह करके, रोकर

और फिर मुँह धोकर बाहर निकलता है!! हम पूछें, 'कैसे हो चंदूभाई?' तब वह कहे, 'बहुत अच्छा हूँ।' अरे, तेरी आँख में तो पानी है, मुँह धोकर आया है। लेकिन आँख तो लाल दिखती है न? इसके बजाय तो कह डाल न कि मेरे यहाँ यह दुःख है। ये तो सभी ऐसा समझते हैं कि दूसरे के वहाँ दुःख नहीं है। मेरे यहाँ ही दुःख है। ना, अरे सभी रोए हैं। हर कोई घर से रोकर मुँह धोकर बाहर निकले हैं। यह भी एक आश्चर्य है! मुँह धोकर क्यों निकलते हो? धोए बगैर निकलो तो लोगों को पता चले कि इस संसार में कितना सुख है! मैं रोता हुआ बाहर निकलूँ, तू रोता हुआ बाहर निकले, सभी रोते हुए बाहर निकलें तब फिर पता चल जाएगा कि यह जगत् पोल ही है। छोटी उम्र में पिताजी मर गए तो शमशान में रोते-रोते गए! वापस आकर नहाए, फिर कुछ भी नहीं!! नहाने का इन लोगों ने सिखलाया। नहला-धुलाकर चोखा कर देते हैं! ऐसा यह जगत् है! सभी मुँह धोकर बाहर निकले हुए हैं, सब पक्के ठग। उसके बदले तो खुला किया होता तो अच्छा।

हमारे 'महात्माओं' में से कुछ महात्मा खुला कर देते हैं कि 'दादा, आज तो पत्नी ने मुझे मारा।' इतनी अधिक सरलता किस कारण से आई? अपने ज्ञान के कारण आई। 'दादा' को तो सारी ही बातें कही जा सकती हैं। ऐसी सरलता आई, वहीं से ही मोक्ष जाने की निशानी हुई। ऐसी सरलता होती नहीं है न? मोक्ष में जाने के लिए सरल ही होना है। यह बाहर तो पति छीट्-छीट् किया करता है। पत्नी की मार खुद खा रहा हो, फिर भी बाहर कहता है कि, 'ना, ना, वह तो मेरी बेटी को मार रही थी!' अरे, मैंने खुद तुझे मार खाते हुए देखा था न? उसका क्या अर्थ? मीनिंगलेस। इससे तो सच सच कह दे न! आत्मा को कहाँ मारनेवाली है? हम आत्मा हैं, मारेगी तो देह को मारेगी। अपने आत्मा का तो कोई अपमान ही नहीं कर सकता। क्योंकि 'आपको' वह देखेगी तो अपमान करेगी न? देखे बिना किस तरह अपमान करेगी? देह को तो यह भैंस नहीं मार जाती? वहाँ नहीं कहते कि इस भैंस ने मुझे मारा? उस भैंस से तो घर की पत्नी बड़ी नहीं है? उसमें क्या? किस की आबरू जानेवाली है? आबरू है ही कहाँ? इस जगत् में कितने जीव रहते हैं? कोई कपड़े पहनता है? आबरूवाले कपड़े पहनते ही नहीं। जिसकी आबरू नहीं है, वे कपड़े पहनकर आबरू

ढँका करते हैं, जहाँ से फटे, वहाँ सिलते रहते हैं। कोई देख जाएगा, कोई देख जाएगा! अरे, सिल-सिलकर कितने दिन तक आबरू रखेगा? सिली हुई आबरू रहती नहीं है। आबरू तो जहाँ नीति है, प्रमाणिकता है, दया है, लगाव है, ऑब्लाइजिंग नेचर है, वहाँ है।

... यों फँसाव बढ़ता गया

यह रोटी और सब्ज़ी के लिए शादी की। पति समझे कि मैं कमाकर लाऊँगा, लेकिन यह खाना कौन बनाकर देगा? पत्नी समझती है कि मैं रोटी बनाती तो हूँ, लेकिन कमाकर कौन देगा? ऐसा करके दोनों ने शादी की, और सहकारी मंडली बनाई। फिर बच्चे भी होंगे ही। एक लौकी का बीज बोया, फिर लौकी लगती रहती है या नहीं लगती रहती? बेल के पत्ते-पत्ते पर लौकी लगती है। वैसे ही ये मनुष्य भी लौकी की तरह उगते रहते हैं। लौकी की बेल ऐसा नहीं बोलती कि ये मेरी लौकियाँ हैं। ये मनुष्य अकेले ही बोलते हैं कि ये मेरी लौकियाँ हैं। यह बुद्धि का दुरुपयोग किया, बुद्धि पर निर्भर रही इसलिए मनुष्य जाति निराश्रित कहलाई। दूसरे कोई जीव बुद्धि पर निर्भर नहीं हैं। इसलिए वे सब आश्रित कहलाते हैं। आश्रित को दु:ख नहीं होता। इन्हें ही सारा दु:ख होता है।

ये विकल्पी सुखों के लिए भटका करते हैं, लेकिन पत्नी सामना करे तब उस सुख का पता चलता है कि यह संसार भोगने जैसा नहीं है। लेकिन यह तो तुरंत ही मूर्छित हो जाता है। मोह का इतना सारा मार खाता है, उसका भान भी नहीं रहता।

बीवी रूठी हुई हो तब तक 'या अल्लाह परवरदिगार' करता है और बीवी बोलने आई तब फिर मियाँभाई तैयार! फिर अल्लाह और बाकी सब एक तरफ रह जाता है! कितनी उलझन! ऐसे कोई दु:ख मिट जानेवाले हैं? घड़ीभर तू अल्लाह के पास जाए तो क्या दु:ख मिट जाएगा? जितना समय वहाँ रहेगा उतना समय अंदर सुलगता बंद हो जाएगा ज़रा, लेकिन फिर वापस कायम की सिगड़ी सुलगती ही रहेगी। निरंतर प्रकट अग्नि कहलाती है, घड़ीभर भी सुख नहीं होता! जब तक शुद्धात्मा स्वरूप प्राप्त नहीं होता, खुद की दृष्टि में 'मैं शुद्ध स्वरूप हूँ', ऐसा भान नहीं होता तब

तक सिगड़ी सुलगती ही रहेगी। शादी में भी बेटी का ब्याह करवा रहे हों तब भी अंदर सुलग रहा होता है! निरंतर संताप रहा करता है। संसार यानी क्या? जंजाल। यह देह लिपटा हुआ है, वह भी जंजाल है! जंजाल को तो भला शौक होता होगा? उसका शौक होता है, वह भी आश्चर्य है न! मछली पकड़ने का जाल अलग और यह जाल अलग! मछली के जाल में से काट-कूटकर निकला भी जा सकता है, लेकिन इसमें से निकला ही नहीं जा सकता। ठेठ अर्थी निकलती है तब निकला जाता है।

...उसे तो 'लटकती सलाम!'

इसमें सुख नहीं, वह समझना तो पड़ेगा न? भाई अपमान करें, मेमसाहब भी अपमान करें, बच्चे अपमान करें! यह तो सारा नाटकीय व्यवहार है, बाकी इनमें से कोई साथ में थोड़े ही आनेवाला हैं?

आप खुद शुद्धात्मा और यह सारा व्यवहार उपलक है यानी कि सुपरफ्लुअस रहना है। खुद 'होम डिपार्टमेन्ट' में रहना है और 'फॉरिन' में 'सुपरफ्लुअस' रहना है। 'सुपरफ्लुअस' यानी तन्मयाकार वृत्ति नहीं, ड्रामेटिक, वह। सिर्फ यह 'ड्रामा' ही करना है। 'ड्रामा' में नुकसान हुआ तब भी हँसना और नफा हुआ तब भी हँसना। 'ड्रामा' में दिखावा भी करना पड़ता है, नुकसान हुआ हो तो उसका दिखावा करना पड़ता है। मुँह पर बोलते भी हैं कि बहुत नुकसान हुआ, लेकिन भीतर तन्मयाकार नहीं हों। हमें 'लटकती सलाम' रखनी है। कई लोग नहीं कहते कि भाई, मुझे तो इसके साथ 'लटकती सलाम' जैसा संबंध है। उसी तरह सारे जगत् के साथ रहना है। जिसे 'लटकती सलाम' पूरे जगत् के साथ आ गई, वह ज्ञानी हो गया। इस देह के साथ भी 'लटकती सलाम'! हम निरंतर सभी के साथ 'लटकती सलाम' रखते हैं, फिर भी सब कहते हैं कि, 'आप हम पर बहुत अच्छा भाव रखते हैं।' मैं व्यवहार सभी करता हूँ लेकिन आत्मा में रहकर।

प्रश्नकर्ता : बहुत बार बड़ा लड़ाई-झगड़ा घर में हो जाता है। तब क्या करें?

दादाश्री : समझदार मनुष्य हो न तो लाख रुपये दें तब भी लड़ाई-झगड़ा नहीं करे, और यह तो बिना पैसे लड़ाई-झगड़ा करता है, तो वह

अनाड़ी नहीं तो क्या है? भगवान महावीर को कर्म खपाने के लिए साठ मील चलकर अनार्य क्षेत्र में जाना पड़ा था, और आज के लोग पुण्यवान इसलिए घर बैठे अनार्य क्षेत्र है! कैसे धन्य भाग्य! यह तो अत्यंत लाभदायक है कर्म खपाने के लिए, यदि सीधा रहे तो।

एक घंटे का गुनाह, दंड ज़िंदगी पूरी

एक घंटे नौकर को, बच्चे को या पत्नी को झिड़का हो-धमकाया हो, तो वह फिर पति बनकर या सास बनकर आपको सारी ज़िंदगी कुचलते रहेंगे! न्याय तो चाहिए या नहीं चाहिए? यह भुगतने का है। आप किसीको दु:ख दोगे तो दु:ख आपके लिए पूरी ज़िंदगी का आएगा। एक ही घंटा दु:ख दो तो उसका फल पूरी ज़िंदगी मिलेगा। फिर शोर मचाते हो कि, 'पत्नी मुझे ऐसा क्यों करती है?' पत्नी को ऐसा होता है कि, 'पति के साथ मुझसे ऐसा क्यों होता है?' उसे भी दु:ख होता है, लेकिन क्या हो? फिर मैंने उनसे पूछा कि 'पत्नी आपको ढूँढ लाई थी या आप पत्नी को ढूँढ लाए थे?' तब वह कहता है कि 'मैं ढूँढ लाया था।' तब उसका क्या दोष बेचारी का? ले आने के बाद उल्टा निकले, उसमें वह क्या करे? कहाँ जाए फिर? कुछ पत्नियाँ तो पति को मारती भी हैं। पतिव्रता स्त्री को तो ऐसा सुनने से भी पाप लगता है कि पत्नी ऐसे पति को मारती है।

प्रश्नकर्ता : जो पुरुष मार खाए तो वह स्त्री जैसा कहलाएगा न?

दादाश्री : ऐसा है, मार खाना कोई पुरुष की कमज़ोरी नहीं है। लेकिन उसके ये ऋणानुबंध ऐसे होते हैं, पत्नी दु:ख देने के लिए ही आई होती है, वह हिसाब चुकाएगी ही।

पगला अहंकर, तो लड़ाई-झगड़ा करवाए

संसार में लड़ाई-झगड़े की बात ही नहीं करनी, वह तो रोग कहलाता है। लड़ना वह अहंकार है, खुला अहंकार है, वह पागल अहंकार कहलाता है। मन में ऐसा मानता है कि 'मेरे बिना चलेगा नहीं।' किसीको डाँटने में तो अपने को उल्टा बोझा लगता है, निरा सिर पक जाता है। लड़ने का किसीको शौक होता होगा?

घर में सामनेवाला पूछे, सलाह माँगे तो ही ज़वाब देना चाहिए। यदि बिना पूछे सलाह देने बैठ जाए तो उसे भगवान ने अहंकार कहा है। पति पूछे कि 'ये प्याले कहाँ रखने हैं?' तो पत्नी ज़वाब देती है कि 'फलाँ जगह पर रख दो।' तो आप वहाँ रख देना। अगर उसके बजाय कहो कि 'तुझे अक्ल नहीं, तू कहाँ रखने को कह रही है?' उस पर पत्नी कहे कि 'अपनी अक्ल से रखो।' इसका कहाँ पार आए? यह संयोगों का टकराव है। इसलिए लट्टू खाते समय, उठते समय टकराया ही करते हैं। फिर लट्टू टकराते हैं, छिल जाते हैं और खून निकलता है। यह तो मानसिक खून निकलता है न! वो खून निकलता हो तब तो अच्छा, पट्टी लगाएँ तो रुक जाता है। इस मानसिक घाव पर तो पट्टियाँ भी नहीं लगतीं कोई।

ऐसी वाणी बोलने जैसी नहीं है

घर में किसी से कुछ कहना, अहंकार का यह सबसे बड़ा रोग है। अपना-अपना हिसाब लेकर ही आए हैं सभी! हर एक की अपनी दाढ़ी उगती है, हमें किसी से कहना नहीं पड़ता कि दाढ़ी क्यों नहीं उगाता? वह तो उसे उगती ही है। सब सबकी आँखों से देखते हैं, सब सबके कानों से सुनते हैं। यह दख़ल करने की क्या ज़रूरत है? एक अक्षर भी बोलना मत। इसलिए हम यह 'व्यवस्थित' का ज्ञान देते हैं। अव्यवस्थित कभी भी होता ही नहीं है। जो अव्यवस्थित दिखता है, वह भी 'व्यवस्थित' ही है। इसलिए बात ही समझनी है। कभी पतंग गोता खाए तब डोरी खींच लेनी है। डोरी अब अपने हाथ में है। जिसके हाथ में डोरी नहीं है उसकी पतंग गोता खाए, तो वह क्या करे? डोरी हाथ में है नहीं और शोर मचाता है कि मेरी पतंग ने गोता खाया।

घर में एक अक्षर भी बोलना बंद कर दो। 'ज्ञानी' के अलावा अन्य किसीको एक शब्द भी नहीं बोलना चाहिए। क्योंकि 'ज्ञानी' की वाणी कैसी होती है? परेच्छानुसार होती है, दूसरों की इच्छा के आधार पर वे बोलते हैं। उन्हें किसलिए बोलना पड़ता है? उनकी वाणी तो दूसरों की इच्छा पूर्ण होने के लिए निकलती है। और दूसरे तो बोलें उससे पहले तो सबका अदंर से हिल जाता है, भयंकर पाप लगता है, ज़रा-सा भी बोलना नहीं चाहिए। ज़रा-सा भी बोले तो वह किच-किच कहलाता है। बोल तो किसे

कहते हैं कि सुनते रहने का मन हो, डाँटें तब भी वह सुनना अच्छा लगे। ये तो ज़रा बोले, उससे पहले ही बच्चे कहते हैं कि 'चाचा अब किच-किच करनी रहने दो। बिना काम के दख़ल कर रहे हो।' डाँटा हुआ कब काम का? पूर्वग्रह नहीं हो तो। पूर्वग्रह मतलब मन में याद होता ही है कि कल इसने ऐसा किया था और ऐसे झगड़ा था, इसलिए यह ऐसा ही है। घर में झगड़े उसे भगवान ने मूर्ख कहा है। किसीको दुःख दें, तो भी नर्क जाने की निशानी है।

संसार निभाने के संस्कार-कहाँ?

मनुष्य के अलावा दूसरा कोई पतिपना नहीं करता। अरे, आजकल तो डायवॉर्स लेते हैं न? वकील से कहते हैं कि, 'तुझे हज़ार, दो हज़ार रुपये दूँगा, मुझे डायवॉर्स दिलवा दे।' तब वकील कहेगा कि 'हाँ, दिलवाा दूँगा।' अरे! तू ले ले न डायवॉर्स, दूसरों को क्या दिलवाने निकला है?

पहले के समय की एक बुढ़िया की बात है। वे चाचाजी की तेरहवीं कर रही थीं। 'तेरे चाचा को यह भाता था, वह भाता था।' ऐसा कर-करके चारपाई पर वस्तुएँ रखती जाती थी। तब मैंने कहा, 'चाची! आप तो चाचा के साथ रोज़ लड़ती थीं। चाचा भी आपको बहुत बार मारते थे। तब यह क्या?' तब चाची ने कहा, 'लेकिन तेरे चाचा जैसे पति मुझे फिर नहीं मिलेंगे।' ये अपने हिन्दुस्तान के संस्कार!

पति कौन कहलाता है? संसार को निभाए उसे। पत्नी कौन कहलाती है? संसार को निभाए उसे। संसार को तोड़ डाले उसे पत्नी या पति कैसे कहा जाए? उसने तो अपने गुणधर्म ही खो दिए, ऐसा कहलाएगा न? वाइफ पर गुस्सा आए तो यह मटकी थोड़े ही फेंक दोगे? कुछ तो कप-रकाबी फेंक देते हैं और फिर नये ले आते हैं! अरे, नये लाने थे तो फोड़े किसलिए? क्रोध में अंध बन जाता है और हिताहित का भान भी खो देता है।

ये लोग तो पति बन बैठे हैं। पति तो ऐसा होना चाहिए कि पत्नी सारा दिन पति का मुँह देखती रहे।

प्रश्नकर्ता : शादी से पहले बहुत देखते हैं।

दादाश्री : वह तो जाल डालती है। मछली ऐसा समझती है कि यह बहुत अच्छे दयालु व्यक्ति है, इसलिए मेरा काम हो गया। लेकिन एक बार खाकर तो देख, काँटा फँस जाएगा। यह तो फँसाववाला है सब।

इसमें प्रेम जैसा कहाँ रहा?

घरवालों के साथ नफा हुआ कब कहलाता है कि घरवालों को अपने ऊपर प्रेम आए, अपने बिना अच्छा नहीं लगे और कब आएँगे, कब आएँगे? ऐसा रहा करे।

लोग शादी करते हैं लेकिन प्रेम नहीं है। यह तो मात्र विषयासक्ति है। प्रेम हो तो चाहे जितना भी आपस में विरोधाभास आए, फिर भी प्रेम नहीं जाता। जहाँ प्रेम नहीं होता, वह आसक्ति कहलाती है। आसक्ति मतलब संडास! प्रेम तो पहले इतना सारा था कि पति परदेश गया हो और वह वापस न आए तो सारी ज़िंदगी उसका चित्त उसीमें रहता, दूसरा कोई याद ही नहीं आता था। आज तो दो साल पति न आए तो दूसरा पति कर लेती है, इसे प्रेम कहेंगे? यह तो संडास है। जैसे संडास बदलते हैं वैसे! जो *गलन* है, वह संडास कहलाता है। प्रेम में तो अर्पणता होती है।

प्रेम मतलब लगनी लगे वह और वह सारा दिन याद आया करे। शादी दो रूप में परिणमित होती है, कभी आबादी में जाती है तो कभी बरबादी में जाती है। जो प्रेम बहुत उफने, वह फिर बैठ जाता है। जो उफने वह आसक्ति है। इसीलिए जहाँ उफान हो, उससे दूर रहना। लगनी तो आंतरिक होनी चाहिए। बाहर का बक्सा बिगड़ जाए, सड़ जाए फिर भी प्रेम उतने का उतना ही रहे। यह तो हाथ जल गया हो और आप कहो कि, 'ज़रा धुलवा दो।' तो पति कहेगा कि 'ना, मुझसे नहीं देखा जाता।' अरे, उन दिनों तो हाथ सहलाया करता था, और आज क्यों ऐसा? यह घृणा कैसे चले? जहाँ प्रेम है वहाँ घृणा नहीं, और जहाँ घृणा है वहाँ प्रेम नहीं। संसारी प्रेम भी ऐसा होना चाहिए कि जो एकदम कम न हो जाए और एकदम बढ़ न जाए। नोर्मेलिटी में होना चाहिए। ज्ञानी का प्रेम तो कभी कम-ज़्यादा नहीं होता। वह प्रेम तो अलग ही होता है। उसे परमात्मप्रेम कहा जाता है।

नोर्मेलिटी, सीखने जैसी

प्रश्नकर्ता : व्यवहार में 'नोर्मेलिटी' की पहचान क्या है?

दादाश्री : सब कहें कि, 'तू देर से उठती है, देर से उठती है', तो नहीं समझ जाना चाहिए कि यह नोर्मेलिटी खो गई है? रात को ढाई बजे उठकर तू घूमने लगे तो सब नहीं कहेंगे कि 'इतनी जल्दी क्यों उठती है?' इसे भी नोर्मेलिटी खो डाली कहेंगे। नोर्मेलिटी तो, सभी के साथ एडजस्ट हो जाए, ऐसी है। खाने में भी नोर्मेलिटी चाहिए, यदि पेट में अधिक डाला हो तो नींद आती रहती है। हमारी खाने-पीने की सारी नोर्मेलिटी आप देखना। सोने की, उठने की, सब में ही हमारी नोर्मेलिटी होती है। खाने बैठते हैं और थाली में पीछे से दूसरी मिठाई रख जाएँ तो मैं अब उसमें से थोड़ा-सा ले लेता हूँ। मैं मात्रा नहीं बदलने देता। मैं जानता हूँ कि यह दूसरा आया, इसलिए सब्ज़ी निकाल डालो। आपको इतना सब करने की ज़रूरत नहीं है। यदि देर से उठ पाती हो तो आपको तो बोलते रहना कि 'नोर्मेलिटी में नहीं रहा जाता।' इसलिए आपको तो अंदर खुद को ही टोकना है कि 'जल्दी उठना चाहिए।' वह टोकना फायदा करेगा। इसे ही पुरुषार्थ कहा है। रात को रटती रहो कि 'जल्दी उठना है, जल्दी उठना है।' अगर ज़बरदस्ती जल्दी उठने का प्रयत्न करे, उससे तो दिमाग बिगड़ेगा।

...शक्तियाँ कितनी 'डाउन' गई?

प्रश्नकर्ता : 'पति ही परमात्मा है' वह क्या गलत है?

दादाश्री : आज के पतियों को परमात्मा मानें तो वे पागल होकर घूमें ऐसे हैं!

एक पति अपनी पत्नी से कहता है, 'तेरे सिर पर अँगारे रखकर उस पर रोटियाँ सेक।' मूल तो बंदर छाप और ऊपर से दारू पिलाओ, तो उसकी क्या दशा होगी?

पुरुष तो कैसा होता है? ऐसे तेजस्वी पुरुष होते हैं कि जिनसे हज़ारों स्त्रियाँ काँपें। ऐसे देखते ही काँप उठें। आज तो पति ऐसे हो गए

हैं कि कोई उसकी पत्नी का हाथ पकड़े तो उसे विनती करता है 'अरे, छोड़ दे। मेरी बीवी है, बीवी है।' 'घनचक्कर, इसमें तू उससे विनती कर रहा है? कैसा घनचक्कर पैदा हुआ है?' उसे तो मार, उसका गला पकड़ और काट खा। ऐसे उसके पैर पड़ रहा है! वह छोड़ दे, ऐसी जात नहीं है। तब वह, 'पुलिस, पुलिस, बचाओ, बचाओ।' करता है। 'अरे! तू पति होकर 'पुलिस, पुलिस' क्या कर रहा है? पुलिस का क्या करेगा? तू जीवित है या मरा हुआ है? पुलिस की मदद लेनी हो तो तू पति मत बनना।

घर का मालिक 'हाफ राउन्ड' चलेगा ही नहीं, वह तो 'ऑल राउन्ड' चाहिए। कलम, कड़छी, बरछी, तैरना, तस्करी और विवाद करना ये छहों। छः कलाएँ नहीं आतीं तो वह मनुष्य नहीं। चाहे जितना गया-बीता मनुष्य हो तब भी उसके साथ एडजस्ट होना आए, दिमाग खिसके नहीं, तब काम का! भड़कने से चलेगा नहीं।

जिसे खुद अपने पर विश्वास है उसे इस जगत् में सभीकुछ मिले ऐसा है, लेकिन यह विश्वास ही नहीं आता न! कुछ लोगों को तो यह भी विश्वास उड़ गया होता है कि 'यह वाइफ साथ में रहेगी या नहीं रहेगी? पाँच साल निभेगा या नहीं निभेगा?' 'अरे, यह भी विश्वास नहीं?' विश्वास टूटा मतलब खत्म। विश्वास में तो अनंत शक्ति है। भले ही अज्ञानता में विश्वास हो। 'मेरा क्या होगा?' हुआ कि खत्म! इस काल में लोग हकबका गए हैं और कोई दौड़ता-दौड़ता आ रहा हो और उसे पूछे कि, 'तेरा नाम क्या है?' तो वह हकबका जाता है।

भूल के अनुसार भूलवाला मिले

प्रश्नकर्ता : मैं वाइफ के साथ बहुत एडजस्ट होने जाता हूँ, लेकिन हुआ नहीं जाता।

दादाश्री : सब हिसाबवाला है! टेढ़े पेच और टेढ़ा नट, वहाँ सीधा नट घुमाएँ तो किस तरह चले? आपको ऐसा होता है कि यह स्त्री जाति ऐसी क्यों? लेकिन स्त्री जाति तो आपका 'काउन्टर वेट' है। जितना अपना टेढ़ापन उतनी टेढ़ी। इसीलिए तो सब 'व्यवस्थित' है, ऐसा कहा है न?

प्रश्नकर्ता : सभी हमें सीधा करने आए हों, ऐसा लगता है।

दादाश्री : तो सीधा करना ही चाहिए आपको। सीधा हुए बिना दुनिया चलेगी नहीं न? सीधे नहीं होंगे तो बाप किस तरह बनोगे? सीधा होगा तो बाप बनेगा।

शक्तियाँ खिलानेवाला चाहिए

यानी स्त्रियों का दोष नहीं है, स्त्रियाँ तो देवियों जैसी हैं। स्त्रियों और पुरुषों में, वे तो आत्मा ही हैं, केवल पेकिंग का फर्क है। डिफरन्स ऑफ पेकिंग। स्त्री, वह एक प्रकार का 'इफेक्ट' है, इसलिए आत्मा पर स्त्री का 'इफेक्ट' बरतता है। उसका 'इफेक्ट' अपने ऊपर नहीं पड़े, तब सही है। स्त्री, वह तो शक्ति है। इस देश में कैसी-कैसी स्त्रियाँ राजनीति में हो चुकी है! और इस धर्मक्षेत्र में जो स्त्री पड़ी, वह तो कैसी होती है? इस क्षेत्र से जगत् का कल्याण ही कर डाले। स्त्री में तो जगत् कल्याण की शक्ति भरी पड़ी है। उसमें खुद का कल्याण करके और दूसरों का कल्याण करने की शक्ति है।

प्रतिक्रमण से, हिसाब सब छूटें

प्रश्नकर्ता : कुछ लोग स्त्री से ऊबकर घर से भाग छूटते हैं, वह कैसा है?

दादाश्री : ना, भगोड़े क्यों बनें? आप परमात्मा हैं। आपको भगोड़ा बनने की क्या ज़रूरत है? आपको उसका समभाव *से निकाल* कर देना है।

प्रश्नकर्ता : *निकाल* करना है, तो किस तरह से होता है? मन में भाव करना कि यह पूर्व का आया है?

दादाश्री : इतने से *निकाल* नहीं होता। *निकाल* मतलब तो सामनेवाले को फोन करना पड़ता है, उसके आत्मा को खबर देनी पड़ती है। उस आत्मा के पास, हमने भूल की है ऐसा कबूल-एक्सेप्ट करना पड़ता है। मतलब बड़ा प्रतिक्रमण करना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : सामनेवाला व्यक्ति अपना अपमान करे तब भी हमें उसका प्रतिक्रमण करना चाहिए?

दादाश्री : अपमान करे तो ही प्रतिक्रमण करना है, आपको मान दे तब नहीं करना है। प्रतिक्रमण करोगे तो सामनेवाले पर द्वेषभाव तो होगा ही नहीं, ऊपर से उस पर आपका अच्छा असर पड़ेगा। आपके साथ द्वेषभाव नहीं होगा, वह तो समझो कि पहला स्टेप है, लेकिन फिर उसे खबर भी पहुँचती है।

प्रश्नकर्ता : उसके आत्मा को पहुँचता है?

दादाश्री : हाँ, ज़रूर पहुँचता है। फिर वह आत्मा उसके *पुद्गल* को भी धकेलता है कि, 'भाई, फोन आया तेरा।' यह जो अपना प्रतिक्रमण है, वह अतिक्रमण के ऊपर है, क्रमण पर नहीं।

प्रश्नकर्ता : बहुत प्रतिक्रमण करने पड़ेंगे?

दादाश्री : जितनी स्पीड में आपको मकान बनाना हो उतने कारीगर बढ़ाना। ऐसा है न, कि इन बाहर के लोगों के साथ आपके प्रतिक्रमण नहीं होंगे तो चलेगा, लेकिन अपने आसपास के और नज़दीक के, घर के लोग हैं, उनके प्रतिक्रमण अधिक करने हैं। घरवालों के लिए मन में भाव रखना है कि 'मेरे साथ जन्म लिया है, साथ में रहते हैं तो किसी दिन ये मोक्षमार्ग पर आएँ।'

...तो संसार अस्त हो

जिसे 'एडजस्ट' होने की कला आ गई, वह दुनिया में से मोक्ष की ओर मुड़ा। 'एडजस्टमेन्ट' हुआ उसका नाम ज्ञान। जो 'एडजस्टमेन्ट' सीख गया वह तर गया। जो भुगतना है वह तो भुगतना ही होगा, लेकिन 'एडजस्टमेन्ट' आए उसे परेशानी नहीं आती, हिसाब साफ हो जाता है। सीधे के साथ तो हरकोई एडजस्ट हो जाता है, लेकिन टेढ़े-कठिन-कड़क के साथ में, सबके ही साथ एडजस्ट होना आया तो काम हो गया। मुख्य वस्तु एडजस्टमेन्ट है। 'हाँ' से मुक्ति है। हमने 'हाँ' कहा फिर भी 'व्यवस्थित' के बाहर कुछ होनेवाला है? लेकिन 'ना' कहा तो महा उपाधी।

घर में पति-पत्नी दोनों निश्चय करें कि मुझे 'एडजस्ट' होना है तो दोनों का हल आए। वे ज़्यादा खींचे तो 'आपको' एडजस्ट हो जाना है, तो हल आएगा। एक व्यक्ति का हाथ दु:खता था, लेकिन वह दूसरे को नहीं बताता था, लेकिन दूसरे हाथ से हाथ दबाकर, दूसरे हाथ से एडजस्ट किया। ऐसे एडजस्ट हो जाएँगे तो हल आएगा। मतभेद से तो हल नहीं आता। मतभेद पसंद नहीं, फिर भी मतभेद पड़ जाते हैं न? सामनेवाला अधिक खींचा-तानी करे तो आप छोड़ देना और ओढ़कर सो जाना, यदि नहीं छोड़ेंगे, दोनों खींचते रहेंगे तो दोनों को ही नींद नहीं आएगी और सारी रात बिगड़ेगी। व्यवहार में, व्यापार में, भागीदारी में कैसा सँभालते हैं, तो इस संसार की भागीदारी में हमें नहीं सँभाल लेना चाहिए? संसार तो झगड़े का संग्रहस्थान है। किसी के यहाँ दो आने, किसी के यहाँ चवन्नी और किसे के यहाँ सवा रुपये तक पहुँच जाता है।

यहाँ घर पर 'एडजस्ट' होना आता नहीं और आत्मज्ञान के शास्त्र पढ़ने बैठते हैं! अरे रख न एक तरफ! पहले यह सीख ले। घर में 'एडजस्ट' होना तो कुछ आता नहीं है। ऐसा है यह जगत्! इसलिए काम निकाल लेने जैसा है।

'ज्ञानी' छुड़वाएँ, संसारजाल से

प्रश्नकर्ता : इस संसार के सभी बहीखाते खोटवाले लगते हैं, फिर भी किसी समय नफेवाले क्यों लगते हैं?

दादाश्री : जो बहीखाते खोटवाले लगते हैं, उनमें से कभी यदि नफेवाला लगे तो बाकी कर लेना। यह संसार दूसरे किसी से खड़ा नहीं हुआ है। गुणा ही हुए हैं। मैं जो रकम आपको दिखाऊँ उससे भाग कर डालना, इससे फिर कुछ बाकी नहीं रहेगा। इस तरह से पढ़ाई की जा सके तो पढ़ो, नहीं तो 'दादा की आज्ञा मुझे पालनी ही है, संसार का भाग (डिवाइड) लगाना ही है।' ऐसा निश्चित किया कि तबसे भाग हुआ ही समझो।

बाकी ये दिन किस तरह गुज़ारने वह भी मुश्किल हो गया है। पति आए और कहेगा कि 'मेरे हार्ट में दु:ख रहा है।' बच्चे आएँ और कहेंगे

कि 'मैं नापास हो गया हूँ।' 'पति को हार्ट में दु:ख रहा है' ऐसा कहे तो उसे विचार आता है कि 'हार्ट फेल' हो गया तो क्या होगा? चारों ओर से विचार घेर लेते हैं, चैन नहीं लेने देते।

'ज्ञानीपुरुष' इस संसारजाल से छूटने का रास्ता दिखाते हैं, मोक्ष का मार्ग दिखाते हैं और रास्ते पर ला देते हैं और आपको लगता है कि 'हम इस *उपाधी* में से छूट गए!'

ऐसी भावना से छुड़वानेवाले मिलते ही हैं

यह सब परसत्ता है। खाते हैं, पीते हैं, बच्चों की शादियाँ करवाते हैं वह सब परसत्ता है। अपनी सत्ता नहीं है। ये सभी कषाय अंदर बैठे हैं। उनकी सत्ता है। 'ज्ञानीपुरुष' 'मैं कौन हूँ?' उसका ज्ञान देते हैं तब इन कषायों से, इस जंजाल में से छुटकारा होता है। यह संसार छोड़ने से या धक्के मारने से छूटे ऐसा नहीं है, इसलिए ऐसी कोई भावना करो कि इस संसार में से छूटा जाए तो अच्छा। अनंत जन्मों से छूटने की भावना हुई है, लेकिन मार्ग का जानकार चाहिए या नहीं चाहिए? मार्ग दिखानेवाले 'ज्ञानीपुरुष' चाहिए।

जैसे चिकनी पट्टी शरीर पर चिपकाई हो, तो उसे उखाड़ें फिर भी वह उखड़ती नहीं। बाल को साथ में खींचकर उखड़ती है, उसी तरह यह संसार चिकना है। 'ज्ञानीपुरुष' दवाई दिखाएँ तब वह उखड़ता है। यह संसार छोड़ने से छूटे ऐसा नहीं है। जिसने संसार छोड़ा है, त्याग लिया है, वह उसके कर्म के उदय ने छुड़वाया है। हर किसीको उसके उदयकर्म के आधार पर त्यागधर्म या गृहस्थधर्म मिला होता है। समकित प्राप्त हो, तभी से सिद्धदशा प्राप्त होती है।

यह सब आप चलाते नहीं हैं। क्रोध-मान-माया-लोभ कषाय चलाते हैं। कषायों का ही राज है। 'खुद कौन है?' उसका भान हो तब कषाय जाते हैं। क्रोध हो तब पछतावा होता है, लेकिन भगवान का बताया हुआ प्रतिक्रमण करना नहीं आए तो क्या फायदा होगा? प्रतिक्रमण करने आएँ तो छुटकारा होगा।

ये कषाय चैन से घड़ीभर भी बैठने नहीं देते। बेटे की शादी के

समय मोह ने घेर लिया हुआ होता है। तब मूर्छा होती है। बाकी कलेजा तो सारा दिन चाय की तरह उबल रहा होता है! तब भी मन में होता है कि 'मैं' तो जेठानी हूँ न! यह तो व्यवहार है, नाटक करना है। यह देह छूटी इसलिए दूसरी जगह नाटक करना है। ये रिश्ते सच्चे नहीं हैं, ये तो संसारी ऋणानुबंध हैं। हिसाब पूरा हो जाने के बाद बेटा माँ-बाप के साथ नहीं जाता है।

'इसने मेरा अपमान किया!' छोड़ो न! अपमान तो निगल जाने जैसा है। पति अपमान करे तब याद आना चाहिए कि यह तो मेरे ही कर्म का उदय है और पति तो निमित्त है, निर्दोष है। और मेरे कर्म के उदय बदलें, तब पति 'आओ-आओ' करता है। इसलिए आपको मन में समता रखकर निबेड़ा ला देना है। यदि मन में हो कि 'मेरा दोष नहीं है फिर भी मुझे ऐसा क्यों कहा?' इससे फिर रात को तीन घंटे जगती है और फिर थककर सो जाती है।

जो भगवान के *ऊपरी* हुए, उनका काम हो गया और पत्नी के *ऊपरी* बन बैठे, वे सब मार खाकर मर गए। *ऊपरी* बने, तभी मार खाता है। लेकिन भगवान क्या कहते हैं? 'हमारा *ऊपरी* बने तो हम खुश होते हैं। हमने तो बहुत दिन *ऊपरीपन* भोगा, अब आप हमारे *ऊपरी* बनो तो अच्छा।'

'ज्ञानीपुरुष' जो समझ देते हैं, उस समझ से छुटकारा होता है। समझ के बिना क्या हो सकता है? वीतराग धर्म ही सर्व दुःखों से मुक्ति देता है।

घर में तो सुंदर व्यवहार कर डालना चाहिए। 'वाइफ' के मन में ऐसा होना चाहिए कि ऐसा पति नहीं मिलेगा कभी और पति के मन में ऐसा होना चाहिए कि ऐसी 'वाइफ' भी कभी नहीं मिलेगी!! ऐसा हिसाब ला दें तब आप सही!!!

[६]

व्यापार, धर्म समेत

जीवन किसलिए खर्च हुए?

दादाश्री : यह व्यापार किसलिए करते हो?

प्रश्नकर्ता : पैसे कमाने के लिए।

दादाश्री : पैसा किसके लिए?

प्रश्नकर्ता : उसकी खबर नहीं।

दादाश्री : यह किसके जैसी बात है? मनुष्य सारा दिन इंजन चलाया करे, लेकिन किसलिए? कुछ नहीं। इंजन को पट्टा नहीं दें, उसके जैसा है। जीवन किसलिए जीना है? केवल कमाने के लिए ही? जीव मात्र सुख को ढूँढता है। 'सर्व दुःखों से मुक्ति कैसे हो', यह जानने के लिए ही जीना है।

विचारणा करनी, चिंता नहीं

प्रश्नकर्ता : व्यापार की चिंता होती है, बहुत अड़चनें आती हैं।

दादाश्री : चिंता होने लगे कि समझना कि कार्य बिगड़नेवाला है। ज़्यादा चिंता नहीं हो तो समझना कि कार्य बिगड़नेवाला नहीं है। चिंता कार्य के लिए अवरोधक है। चिंता से तो व्यापार की मौत आती है। जिसमें चढ़ाव-उतार हो उसका नाम ही व्यापार, पूरण-गलन है वह। पूरण हुआ उसका गलन हुए बगैर रहता ही नहीं। इस पूरण-गलन में अपनी कोई मिल्कियत नहीं है और जो अपनी मिल्कियत है, उसमें से कुछ भी पूरण-गलन होता नहीं है, ऐसा साफ व्यवहार है। यह आपके घर में आपके बीवी-

बच्चे सभी पार्टनर्स हैं न?

प्रश्नकर्ता : सुख-दु:ख भुगतने में भी हैं।

दादाश्री : आप अपने बीवी-बच्चों के अभिभावक कहलाते हो। सिर्फ अभिभावक को ही क्यों चिंता करनी? और घरवाले तो बल्कि कहते हैं कि आप हमारी चिंता मत करना।

प्रश्नकर्ता : चिंता का स्वरूप क्या है? जन्म हुआ तब तो थी नहीं और आई कहाँ से?

दादाश्री : जैसे-जैसे बुद्धि बढ़ती है वैसे-वैसे संताप बढ़ता है। जब जन्म होता है तब बुद्धि होती है? व्यापार के लिए सोचने की ज़रूरत है। लेकिन उससे आगे गए तो बिगड़ जाता है। व्यापार के बारे में दस-पंद्रह मिनट सोचना होता है, फिर उससे आगे जाओ और विचारों का चक्कर चलने लगे, वह नोर्मेलिटी से बाहर गया कहलाता है, तब उसे छोड़ देना। व्यापार के विचार तो आते हैं, लेकिन उन विचारों में तन्मयाकार होकर वे विचार लम्बे चलें तो फिर उसका ध्यान उत्पन्न होता है और उससे चिंता होती है। वह बहुत नुकसान करती है।

चुकाने की नीयत में चोखे रहो

प्रश्नकर्ता : व्यापार में बहुत घाटा हुआ है तो क्या करूँ? व्यापार बंद करूँ या दूसरा करूँ? क़र्ज़ बहुत हो गया है।

दादाश्री : रूई बाज़ार का नुकसान, कभी किराने की दुकान लगाने से पूरा नहीं होता। व्यापार में से हुआ नुकसान व्यापार में से ही पूरा होता है, नौकरी में से नहीं होता। कॉन्ट्रैक्ट का नुकसान, कभी पान की दुकान से पूरा होता है? जिस बाज़ार में घाव लगा हो, उस बाज़ार में ही घाव भरता है, वहाँ पर ही उसकी दवाई होती है।

हमें भाव ऐसा रखना चाहिए कि मुझसे किसी भी जीव को किंचित् मात्र भी दु:ख न हो। हमें एक शुद्ध भाव रखना चाहिए कि सभी उधार चुका देना है, ऐसी यदि चोखी नीयत होगी तो सारा उधार कभी न कभी

चुकता हो जाएगा। लक्ष्मी तो ग्यारहवाँ प्राण है। इसलिए किसी की लक्ष्मी अपने पास नहीं रहनी चाहिए। अपनी लक्ष्मी किसी के पास रहे तो उसमें परेशानी नहीं है। परंतु ध्येय निरंतर वही रहना चाहिए कि मुझे पाई-पाई चुका देनी है, ध्येय लक्ष्य में रखकर फिर आप खेल खेलो। खेल खेलो लेकिन खिलाड़ी मत बन जाना, खिलाड़ी बने कि आप खत्म हो जाओगे।

...जोखिम समझकर, निर्भय रहना

हरएक व्यापार उदय-अस्तवाला होता है। मच्छर बहुत हों तब भी सारी रात सोने नहीं देते और दो हों तब भी सारी रात सोने नहीं देते! इसलिए आप कहना, 'हे मच्छरमय दुनिया! दो ही सोने नहीं देते तो सभी आओ न!' ये सब जो नफा-नुकसान हैं, वे मच्छर कहलाते हैं।

नियम कैसा रखना? हो सके तब तक समुद्र में उतरना नहीं, परंतु उतरने की बारी आ गई तो फिर डरना मत। जब तक डरेगा नहीं तब तक अल्लाह तेरे पास हैं। तू डरा कि अल्लाह कहेंगे कि 'जा औलिया के पास!' भगवान के वहाँ रेसकॉर्स या कपड़े की दुकान में फर्क नहीं है, लेकिन आपको यदि मोक्ष में जाना हो तो इस जोखिम में मत उतरना। इस समुद्र में प्रवेश करने के बाद निकल जाना अच्छा।

हम व्यापार किस तरह करते हैं, वह पता है? व्यापार की स्टीमर को समुद्र में तैरने के लिए छोड़ने से पहले पूजाविधि करवाकर स्टीमर के कान में फूँक मारते हैं, 'तुझे जब डूबना हो तब डूबना, हमारी इच्छा नहीं है।' फिर छह महीने में डूबे या दो वर्ष में डूबे, तब हम 'एडजस्टमेन्ट' ले लेते हैं कि छह महीनें तो चला। व्यापार मतलब इस पार या उस पार। आशा के महल निराशा लाए बगैर रहते नहीं हैं। संसार में वीतराग रहना बहुत मुश्किल है। वह तो हमारी ज्ञानकला और बुद्धिकला ज़बरदस्त हैं, उससे रहा जा सकता है।

ग्राहकी के भी नियम हैं

प्रश्नकर्ता : दुकान में ग्राहक आएँ, इसलिए मैं दुकान जल्दी खोलता हूँ और देर से बंद करता हूँ, यह ठीक है न?

दादाश्री : आप ग्राहक को आकर्षित करनेवाले कौन? आपको तो दुकान जिस समय लोग खोलते हों, उसी समय खोलनी। लोग सात बजे खोलते हों, और आप साढ़े नौ बजे खोलें तो वह गलत कहलाएगा। लोग जब बंद करें तब आपको भी बंद करके घर चले जाना चाहिए। व्यवहार क्या कहता है कि लोग क्या करते हैं, वह देखो। लोग सो जाएँ तब आप भी सो जाओ। रात को दो बजे तक अंदर घमासान मचाते रहो, वह किसके जैसी बात! खाना खाने के बाद सोचते हो कि किस तरह पचेगा? उसका फल सुबह मिल ही जाता है न? ऐसा ही सब जगह व्यपार में है।

प्रश्नकर्ता : दादा, अभी दुकान में ग्राहकी बिल्कुल नहीं है तो क्या करूँ?

दादाश्री : यह 'इलेक्ट्रिसिटी' जाए, तब आप 'इलेक्ट्रिसिटी कब आएगी, कब आएगी' ऐसा करो तो जल्दी आ जाती है? वहाँ आप क्या करते हो?

प्रश्नकर्ता : एक-दो बार फोन करते हैं या खुद कहने जाते हैं।

दादाश्री : सौ बार फोन नहीं करते?

प्रश्नकर्ता : ना।

दादाश्री : जब यह लाइट गई तब हम तो चैन से गा रहे थे और फिर अपने आप ही आ गई न?

प्रश्नकर्ता : मतलब हमें निःस्पृह हो जाना है?

दादाश्री : निःस्पृह होना भी गुनाह है और सस्पृह होना भी गुनाह है। 'लाइट आए तो अच्छा', ऐसा रखना है, सस्पृह-निःस्पृह रहने को कहा है। 'ग्राहक आएँ तो अच्छा', ऐसा रखना है, बेकार भाग-दौड़ मत करना। रेग्युलारिटी और भाव नहीं बिगाड़ना, वह 'रिलेटिव' पुरुषार्थ है। ग्राहक नहीं आएँ तो अकुलाना नहीं और एक दिन ग्राहकों के झुंड पर झुंड आएँ तब सबको संतोष देना। यह तो एक दिन ग्राहक नहीं आएँ तो नौकरों को सेठ धमकाता रहता है। तब अगर आप उनकी जगह पर होंगे तो क्या होगा?

वह बेचारा नौकरी करने आता है और आप उसे धमकाते हो, तो वह बैर बाँधकर सहन कर लेगा। नौकर को धमकाना मत, वह भी मनुष्यजाति है। उसे घर पर बेचारे को दुःख और यहाँ आप सेठ बनकर धमकाओ तब वह बेचारा कहाँ जाए? बेचारे पर ज़रा दयाभाव तो रखो!

यह तो ग्राहक आए तो शांति से और प्रेम से उसे माल देना। ग्राहक नहीं हों, तब भगवान का नाम लेना। यह तो ग्राहक नहीं हों, तब इधर देखता है और उधर देखता है। अंदर अकुलाता रहता है, 'आज खर्च सिर पर पड़ेगा। इतना नुकसान हो गया', ऐसा चक्कर चलाता है, चिढ़ता है और नौकर को धमकाता भी है। ऐसे आर्तध्यान और रौद्रध्यान करता रहता है! जो ग्राहक आते हैं, वह 'व्यवस्थित' के हिसाब से जो ग्राहक आनेवाला हो वही आता है, उसमें अंदर चक्कर मत चलाना। दुकान में ग्राहक आए तो पैसे का लेन-देन करना, लेकिन कषाय मत करना, पटाकर काम करना है। यदि पत्थर के नीचे हाथ आ जाए तो हथौड़ा मारते हो? ना, वहाँ तो अगर दब जाए तो पटाकर निकाल लेते हो। उसमें कषाय का उपयोग करो तो बैर बँधेगा और एक बैर में से अनंत हो जाते हैं। इस बैर से ही जगत् खड़ा है, यही मूल कारण है।

प्रामाणिकता, भगवान का लाइसेन्स

प्रश्नकर्ता : आजकल प्रामाणिकता से व्यापार करने जाएँ तो ज़्यादा मुश्किलें आती हैं, ऐसा क्यों?

दादाश्री : प्रामाणिकता से काम किया तो एक ही मुश्किल आएगी, परंतु अप्रामाणिक रूप से काम करोगे तो दो प्रकार की मुश्किलें आएँगी। प्रामाणिकता की मुश्किल में से तो छूटा जा सकेगा, परंतु अप्रामाणिकता में से छूटना मुश्किल है। प्रामाणिकता, वह तो भगवान का बड़ा 'लाइसेन्स' है, उस पर कोई ऊँगली नहीं उठा सकता। आपको वह 'लाइसेन्स' फाड़ डालने का विचार आता है?

...नफा-नुकसान में, हर्ष-शोक क्या?

व्यापार में मन बिगड़े तब भी नफा ६६,६१६ होगा और मन नहीं

बिगड़े तब भी नफा ६६,६१६ ही रहेगा, तो कौन-सा व्यापार करना चाहिए?

हमारे बड़े-बड़े व्यापार चलते हैं, लेकिन व्यापार का कागज़ 'हमारे' ऊपर नहीं आता। क्योंकि व्यापार का नफा और व्यापार का नुकसान भी हम व्यापार के खाते में ही डालते हैं। यदि मैं नौकरी कर रहा होता और जितनी पगार मिलती, तो उतने ही पैसे मैं घर में देता हूँ। बाकी का नफा भी व्यापार का और नुकसान भी व्यापार के खाते में।

पैसों का बोझा रखने जैसा नहीं है। बैंक में जमा हुए तब चैन की साँस ली, फिर जाएँ तब दुःख होता है। इस जगत् में कहीं भी चैन की साँस लेने जैसा नहीं है। क्योंकि 'टेम्परेरी' है।

व्यापार में हिताहित

व्यापार कौन-सा अच्छा कि जिसमें हिंसा न समाती हो, किसीको अपने व्यापार से दुःख न हो। यह तो किराने का व्यापार हो तो एक सेर में से थोड़ा निकाल लेते हैं। आजकल तो मिलावट करना सीख गए हैं। उसमें भी खाने की वस्तुओं में मिलावट करे तो जानवर में, चौपयों में जाएगा। चार पैरवाला हो जाए, फिर गिरे तो नहीं न? व्यापार में धर्म रखना, नहीं तो अधर्म प्रवेश कर जाएगा।

प्रश्नकर्ता : अब व्यापार कितना बढ़ाना चाहिए?

दादाश्री : व्यापार इतना करना कि आराम से नींद आए, जब उसे धकेलना चाहें तब वह धकेला जा सके, ऐसा होना चाहिए। जो आनेवाली नहीं हो, उस परेशानी को को नहीं बुलाना नहीं चाहिए।

ब्याज लेने में आपत्ति?

प्रश्नकर्ता : शास्त्रों में ब्याज लेने का निषेध नहीं है न?

दादाश्री : हमारे शास्त्रों ने ब्याज पर आपत्ति नहीं उठाई है, परंतु सूदखोर हो गया तो नुकसानदायक है। सामनेवाले को दुःख न हो तब तक ब्याज लेने में परेशानी नहीं है।

किफ़ायत, तो 'नोबल' रखनी

घर में किफ़ायत कैसी चाहिए? बाहर खराब न दिखे, ऐसी मितव्ययता होनी चाहिए। किफ़ायत रसोई में नहीं घुसनी चाहिए, उदार किफ़ायत होनी चाहिए। रसोई में किफ़ायत घुसे तो मन बिगड़ जाता है, कोई मेहमान आए तो भी मन बिगड़ जाता है कि चावल खर्च हो जाएँगे! कोई बहुत उड़ाऊ हो तो उसे हम कहते हैं कि 'नोबल' किफ़ायत करो।

[७]

ऊपरी का व्यवहार

अन्डरहैन्ड की तो रक्षा करनी चाहिए

प्रश्नकर्ता : दादा, सेठ मुझसे बहुत काम लेते हैं और तनख्वाह बहुत कम देते हैं और ऊपर से धमकाते हैं।

दादाश्री : ये हिन्दुस्तान के सेठ, ये तो पत्नी को भी धोखा देते हैं। परंतु अंत में अर्थी निकलती है, तब तो वे ही धोखा खाते हैं। हिन्दुस्तान के सेठ नौकर का तेल निकालते रहते हैं, चैन से खाने भी नहीं देते, नौकर की तनख्वाह काट लेते हैं। पहले इन्कम टैक्सवाले काट लेते तब वहाँ वे सीधे हो जाते थे, लेकिन आज तो इन्कम टैक्सवाले का भी ये लोग काट लेते हैं!

जगत् तो प्यादों को, अन्डरहैन्ड को धमकाए ऐसा है। अरे, साहब को धमका न, वहाँ आप जीत जाओ तो काम का! जगत् का ऐसा व्यवहार है। जब कि भगवान ने एक ही व्यवहार कहा था कि तेरे 'अंडर' में जो आया उसका तू रक्षण करना। जिन्होंने अंडरहैन्ड का रक्षण किया, वे भगवान बने हैं। मैं छोटा था तब से ही अन्डरहैन्ड का रक्षण करता था।

अभी यहाँ कोई नौकर चाय की ट्रे लेकर आए और वह गिर जाए तब सेठ उसे धमकाते हैं कि 'तेरे हाथ टूटे हुए हैं? दिखता नहीं है?' अब वह तो नौकर रहा बेचारा। वास्तव में नौकर कभी कुछ तोड़ता नहीं है, वह तो 'रोंग बिलीफ़' से ऐसा लगता है कि नौकर ने तोड़ा। वास्तव में तोड़नेवाला दूसरा ही है। अब वहाँ निर्दोष को दोषी ठहराते हैं, नौकर फिर उसका फल देता है, किसी भी जन्म में।

प्रश्नकर्ता : तो उस समय तोड़नेवाला कौन हो सकता है?

दादाश्री : हम जब 'ज्ञान' देते हैं उस समय वे सारे खुलासे कर देते हैं। यह तोड़नेवाला कौन, चलानेवाला कौन, वह सब 'सॉल्व' कर देते हैं। अब वहाँ वास्तव में क्या करना चाहिए? भ्राँति में भी क्या अवलंबन लेना चाहिए? नौकर तो 'सिन्सियर' है, वह तोड़े ऐसा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : चाहे कितना भी 'सिन्सियर' हो, लेकिन नौकर के हाथों टूट गया तो परोक्ष रूप से वह ज़िम्मेदार नहीं है?

दादाश्री : ज़िम्मेदार है! लेकिन वह कितना ज़िम्मेदार है, वह समझ लेना चाहिए। सबसे पहले उसे पूछना चाहिए कि 'तू जला तो नहीं न?' जल गया हो तो दवाई लगाना। फिर धीरे से कहना चाहिए कि अब तेज़ी से मत चलना आगे से।

सत्ता का दुरुपयोग, तो...

यह तो सत्तावाला अपने से नीचेवालों को कुचलता रहता है। जो सत्ता का दुरुपयोग करता है, वह सत्ता चली जाती है और ऊपर से मनुष्य जन्म नहीं आता। एक घंटा ही यदि अपनी सत्ता में आए हुए व्यक्ति को धमकाया जाए तो सारी ज़िंदगी का आयुष्य बंध जाता है। विरोध करनेवाले को धमकाएँ तो बात अलग है।

प्रश्नकर्ता : सामनेवाला टेढ़ा हो तो उसके साथ वैसा ही नहीं होना चाहिए?

दादाश्री : सामनेवाले व्यक्ति का हमें नहीं देखना चाहिए, वह उसकी ज़िम्मेदारी है, यदि लुटेरे सामने आ जाएँ और आप लुटेरे बनो तो ठीक है, लेकिन वहाँ तो सबकुछ दे देते हो न? निर्बल के आगे सबल बनो उसमें क्या है? सबल होकर निर्बल के आगे निर्बल हो जाओ तो सही।

ये ऑफिसर घर पर पत्नी के साथ लड़कर आते हैं और ऑफिस में असिस्टेन्ट का तेल निकाल देते हैं। अरे, असिस्टेन्ट तो गलत हस्ताक्षर

करवाकर ले जाएगा तो तेरी क्या दशा होगी? असिस्टेन्ट की तो खास ज़रूरत है।

हम असिस्टेन्ट को बहुत सँभालते हैं क्योंकि उसके कारण तो अपना सब काम चलता है। कुछ तो सर्विस में, सेठ को आगे लाने के लिए खुद को समझदार दिखलाते हैं। सेठ कहें कि बीस प्रतिशत लेना। तब सेठ के सामने समझदार दिखने के लिए पच्चीस प्रतिशत लेता है। किसलिए ये पाप की गठरियाँ बाँधता है?

[८]

कुदरत के वहाँ गेस्ट

कुदरत, जन्म से ही हितकारी

इस संसार में जितने भी जीव हैं वे कुदरत के गेस्ट हैं, प्रत्येक चीज़ कुदरत आपके पास तैयार करके भेजती है। यह तो आपको *कढ़ापा* (कुढ़न, क्लेश) –*अजंपा* (बेचैनी, अशांति, घबराहट) रहा करता है, क्योंकि सही समझ नहीं है और ऐसा लगता है कि 'मैं करता हूँ'। यह भ्राँति है। बाकी किसी से इतना सा भी नहीं हो सकता।

यहाँ जन्म होने से पहले, हमारे बाहर निकलने से पहले लोग सारी तैयारियाँ करके रखते हैं! भगवान की सवारी आ रही है! जन्म लेने से पहले बालक को चिंता करनी पड़ती है कि बाहर निकलने के बाद मेरे दूध का क्या होगा? वह तो दूध की कुँडियाँ आदि सब तैयार ही होता है। डॉक्टर, दाईयाँ तैयार होते हैं। और दाई न हो तो नाईन भी होती ही है। लेकिन कुछ न कुछ तैयारी तो होती ही है, फिर जैसे 'गेस्ट' हों! 'फर्स्ट क्लास' के हों उसकी तैयारियाँ अलग, 'सेकिन्ड क्लास' की अलग और 'थर्ड क्लास' की अलग, सब क्लास तो हैं न? यानी कि आप सभी तैयारियों के साथ आए हैं। तो फिर हाय-हाय और अजंपा किसलिए करते हो?

जिनके 'गेस्ट' हों, उनके वहाँ पर विनय कैसा होना चाहिए? मैं आपके यहाँ 'गेस्ट' होऊँ तो मुझे 'गेस्ट' की तरह विनय नहीं रखना चाहिए? आप कहो कि 'आपको यहाँ नहीं सोना है, वहाँ सोना है', तो मुझे वहाँ सो जाना चाहिए। दो बजे खाना आए तो भी मुझे शांति से खा लेना चाहिए। जो परोसे वह आराम से खा लेना पड़ता है, वहाँ शोर नहीं मचा सकते। क्योंकि 'गेस्ट' हूँ। अब यदि 'गेस्ट' रसोई में जाकर कढ़ी हिलाने लगे तो

कैसा कहलाए? घर में दख़ल करने जाओगे तो आपको कौन खड़ा रखेगा? बासुंदी तेरे थाली में रखें तो खा लेना, वहाँ ऐसा मत कहना कि 'हम मीठा नहीं खाते।' जितना परोसा जाए उतना आराम से खाना। खारा परोसे तो खारा खा लेना। बहुत नहीं भाए तो थोड़ा खाना, परंतु खाना ज़रूर! 'गेस्ट' के सभी नियम पालना। 'गेस्ट' को राग-द्वेष नहीं करने होते हैं, 'गेस्ट' राग-द्वेष कर सकते हैं? वे तो विनय में ही रहते हैं न?

हम तो 'गेस्ट' के तौर पर ही रहते हैं, हमारे लिए सभी वस्तुएँ आती हैं। जिनके वहाँ 'गेस्ट' के तौर पर रहें, उन्हें परेशान नहीं करना चाहिए। हमें सारी चीज़ें घर बैठे मिल जाती हैं, याद करते ही हाज़िर हो जाती हैं और हाज़िर नहीं हो तो हमें परेशानी भी नहीं। क्योंकि वहाँ 'गेस्ट' बने हैं। किसके वहाँ? कुदरत के घर पर! कुदरत की मर्ज़ी न हो तो हम समझें कि हमारे हित में है और मर्ज़ी उसकी हो तो भी हमारे हित में है। हमारे हाथ में करने की सत्ता हो, तो एक तरफ दाढ़ी उगे और दूसरी तरफ दाढ़ी नहीं उगे तो हम क्या करें? हमारे हाथ में करने का होता तो सब घोटाला ही हो जाता। यह तो कुदरत के हाथों में है। उसकी कहीं भी भूल नहीं होती, सब पद्धति अनुसार का ही होता है। देखो चबाने के दाँत अलग, छीलने के दाँत अलग, खाने के दाँत अलग। देखो, कितनी सुंदर व्यवस्था है! जन्म लेते ही पूरा शरीर मिलता है, हाथ, पैर, नाक, कान, आँखें सबकुछ मिलता है, लेकिन मुँह में हाथ डालो तो दाँत नहीं मिलते हैं, तब कोई भूल हो गई होगी कुदरत की? ना, कुदरत समझती है कि जन्म लेकर तुरंत उसे दूध पीना है, दूसरा आहार पचेगा नहीं, माँ का दूध पीना है, यदि दाँत देंगे तो वह काट लेगा! देखो कितनी सुंदर व्यवस्था की हुई है! जैसे-जैसे ज़रूरत पड़ती है, वैसे-वैसे दाँत निकलते जाते हैं। पहले चार आते हैं, फिर धीरे-धीरे दूसरे आते हैं और इन बूढ़ों के दाँत गिर जाते हैं तो फिर वापस नहीं आते हैं।

कुदरत सभी तरह से रक्षण करती है। राजा की तरह रखती है। परंतु अभागे को रहना नहीं आता, तब क्या हो?

पर दख़लंदाज़ी से दुःख मोल लिए

रात को हाँडवा पेट में डालकर सो जाता है न? फिर खर्राटें गरड़-

गरड़ बुलवाता है! घनचक्कर, अंदर पता लगा न, क्या चल रहा है? तब कहे कि, 'उसमें मी काय करूँ?' और कुदरत का कैसा है? पेट में पाचक रस, 'बाइल' पड़ता है, दूसरी चीज़ें पड़ती है, सुबह 'ब्लड' 'ब्लड' की जगह, 'यूरिन' 'यूरिन' की जगह, 'संडास' 'संडास' के स्थान पर पहुँच जाता है। कैसा पद्धति अनुसार सुंदर व्यवस्था की हुई है! कुदरत अंदर कितना बड़ा काम करती है! यदि डॉक्टर को एक दिन यह अंदर का पचाने का काम सौंपा हो तो वह मनुष्य को मार डाले! अंदर में पाचक रस डालना, 'बाइल' डालना, आदि डॉक्टर को सौंपा हो तो डॉक्टर क्या करेगा? भूख नहीं लगती इसलिए आज ज़रा पाचक रस ज़्यादा डालने दो। अब कुदरत का नियम कैसा है कि पाचक रस ठेठ मरते दम तक चलें उस अनुसार डालती है। अब ये उस दिन, रविवार के दिन पाचकरस ज़्यादा डाल देता है, इसलिए बुधवार को अंदर बिल्कुल पचेगा ही नहीं, क्योंकि बुधवार के हिस्से का भी रविवार को डाल दिया।

कुदरत के हाथ में कितनी अच्छी बाज़ी है! और एक आपके हाथ में व्यापार आया, और उसमें भी व्यापार आपके हाथ में तो है ही नहीं। आप सिर्फ मान बैठे हो कि मैं व्यापार करता हूँ, इसलिए झूठी हाय-हाय, हाय-हाय करते हो। दादर से सेन्ट्रल टेक्सी में जाना हुआ, तब वह मन में टकरा जाएगी-टकरा जाएगी करके डर जाता है। अरे! कोई बाप भी टकरानेवाला नहीं है। तू अपनी तरह से आगे देखकर चल। तेरा फ़र्ज़ कितना? तुझे आगे देखकर चलना है, इतना ही। वास्तव में तो वह भी तेरा फ़र्ज़ नहीं है। कुदरत तेरे पास से वह भी करवाती है। लेकिन आगे देखता नहीं है और दख़ल करता है। कुदरत तो इतनी अच्छी है! यह अंदर इतना बड़ा कारखाना चलता है तो बाहर नहीं चलेगा? बाहर तो कुछ चलाने को है ही नहीं। क्या चलाना है?

प्रश्नकर्ता : कोई जीव उल्टा करे, तो वह भी उसके हाथ में सत्ता नहीं है?

दादाश्री : ना, सत्ता नहीं है, लेकिन उल्टा हो वैसा भी नहीं है, लेकिन उसने उल्टे-सुल्टे भाव किए इसलिए यह उल्टा हो गया। खुद ने कुदरत के इस संचालन में दख़ल दी है, नहीं तो ये कौए, कुत्ते ये

जानवर कैसे हैं? अस्पताल नहीं चाहिए, कोर्ट नहीं चाहिए, वे लोग झगड़े कैसे सुलझा देते हैं? दो साँड लड़ते हैं, बहुत लड़ते हैं, लेकिन अलग होने के बाद वे क्या कोर्ट ढूँढने जाते हैं? दूसरे दिन देखें तो आराम से दोनों घूम रहे होते हैं! और इन मूर्खों के कोर्ट होते हैं, अस्पताल होते हैं, तब भी वे दुःखी, दुःखी और दुःखी! ये लोग रोज़ अपना रोना रोते हैं, इन्हें अकर्मी कहें या सकर्मी कहें? ये चिड़िया, कबूतर, कुत्ते सब कितने सुंदर दिखते हैं! वे क्या सर्दी में *वसाणुं* (जड़ी-बूटी डालकर बनाई गई मिठाई) खाते होंगे? और ये मूर्ख वसाणुं खाकर भी सुंदर नहीं दिखते, बदसूरत दिखते हैं। इस अहंकार के कारण सुंदर व्यक्ति भी बदसूरत दिखता है। इसीलिए कोई भूल रह जाती है, ऐसा विचार नहीं करना चाहिए?

...फिर भी कुदरत, सदा मदद में रही

प्रश्नकर्ता : शुभ रास्ते पर जाने के विचार आते हैं, लेकिन वे टिकते नहीं और फिर अशुभ विचार आते हैं, वे क्या हैं?

दादाश्री : विचार क्या हैं? आगे जाना हो, तो भी विचार काम करते हैं और पीछे जाना हो तो भी विचार काम करते हैं। खुदा की तरफ जाने के रास्ते पर आगे जाते हो और वापस मुड़ते हो, उसके जैसा होता है। एक मील आगे जाओ और एक मील पीछे जाओ, एक मील आगे जाओ और वापस मोड़ो... एक ही तरह के विचार रखना अच्छा। पीछे जाना है मतलब पीछे जाना और आगे जाना है मतलब आगे जाना। आगे जाना हो उसे भी कुदरत 'हेल्प' करती है और पीछे जाना हो उसे भी कुदरत 'हेल्प' करती है। 'नेचर' क्या कहता है? 'आई विल हेल्प यू'। तुझे जो काम करना हो, चोरी करनी हो तो 'आई विल हेल्प यू'। कुदरत की तो बहुत बड़ी 'हेल्प' है, कुदरत की 'हेल्प' से तो यह सब चलता है! लेकिन तू निश्चित नहीं करता कि मुझे क्या करना है? यदि तू निश्चित करे तो कुदरत तुझे 'हेल्प' करने के लिए तैयार ही है। 'फर्स्ट डिसाइड' कि मुझे इतना करना है, फिर उसे निश्चयपूर्वक सुबह में पहले याद करना चाहिए। आपके निश्चय के प्रति आपको 'सिन्सियर' रहना चाहिए, तो कुदरत आपके पक्ष में 'हेल्प' करेगी। आप कुदरत के 'गेस्ट' हो।

इसलिए बात को समझो। कुदरत तो 'आई विल हेल्प यू' कहती है। भगवान कुछ आपकी 'हेल्प' नहीं करते। भगवान बेकार नहीं बैठे हैं। यह तो कुदरत की सब रचना है और वह भगवान की सिर्फ हाज़िरी से ही रचा गया है।

प्रश्नकर्ता : हम कुदरत के 'गेस्ट' हैं या 'पार्ट ऑफ नेचर' हैं?

दादाश्री : 'पार्ट ऑफ नेचर' भी हैं और 'गेस्ट' भी हैं। हम भी 'गेस्ट' के तौर पर रहना पसंद करते हैं। चाहे जहाँ बैठो, तब भी आपको हवा मिलती रहेगी, पानी मिलता रहेगा और वह भी 'फ्री ऑफ कॉस्ट'! जो अधिक क़ीमती है, वह 'फ्री ऑफ कॉस्ट' मिलता रहता है। कुदरत को जिसकी क़ीमत है, उसकी इन मनुष्यों को क़ीमत नहीं है। और जिसकी कुदरत के पास क़ीमत नहीं (जैसे कि हीरे), उसकी हमारे लोगों को बहुत क़ीमत है।

[९]

मनुष्यपन की क़ीमत

क़ीमत तो, सिन्सियारिटी और मॉरेलिटी की

पूरे जगत् का 'बेसमेन्ट' 'सिन्सियारिटी' और 'मॉरेलिटी' दो पर ही है। वे दोनों सड़ जाएँ तो सब गिर जाता है। इस काल में यदि 'सिन्सियारिटी' और 'मॉरेलिटी' हों, तो वह बहुत बड़ा धन कहलाता है। हिन्दुस्तान में वह धन ढेरों था, लेकिन अब इन लोगों ने वह सब फॉरिन में एक्सपोर्ट कर दिया है, और फॉरिन से बदले में क्या इम्पोर्ट किया, वह आप जानते हो? वे ये एटिकेट के भूत घुस गए! उसके कारण ही इन बेचारों को चैन नहीं पड़ता। हमें उस एटिकेट के भूत की क्या ज़रूरत है? जिनमें नूर नहीं हैं, उनके लिए वह है। हम तो तीर्थंकरी नूरवाले लोग हैं, ऋषिमुनियों की संतान हैं! तेरे फटे हुए कपड़े हों, फिर भी तेरा नूर तुझे कह देगा कि 'तू कौन है?'

प्रश्नकर्ता : 'सिन्सियारिटी' और 'मॉरेलिटी' का एक्ज़ेक्ट अर्थ समझाइए।

दादाश्री : 'मॉरेलिटी' का अर्थ क्या है? खुद के हक़ का और सहज मिल जाए, वह सभी भोगने की छूट है। यह सबसे अंतिम मॉरेलिटी का अर्थ है। मॉरेलिटी तो बहुत गूढ़ है, उस पर तो शास्त्र के शास्त्र लिखे जा सकते हैं। लेकिन इस अंतिम अर्थ पर से आप समझ जाओ।

और 'सिन्सियारिटी' तो जो मनुष्य दूसरों के प्रति 'सिन्सियर' नहीं रहता, वह खुद अपने लिए 'सिन्सियर' नहीं रहता। किसीको थोड़ा भी 'इनसिन्सियर' नहीं होना चाहिए, उससे खुद की 'सिन्सियारिटी' टूटती है।

'सिन्सियारिटी' और 'मॉरैलिटी' - इस काल में ये दो वस्तुएँ हों तो बहुत हो गया। अरे! एक हो फिर भी वह ठेठ मोक्ष तक ले जाएगा। परंतु उसे पकड़ लेना चाहिए। और जब-जब अड़चन पड़े, तब-तब 'ज्ञानीपुरुष' के पास आकर खुलासा कर जाना चाहिए कि यह 'मॉरैलिटी' है या यह 'मॉरैलिटी' नहीं है।

'ज्ञानीपुरुष का *राजीपा* (गुरुजनों की कृपा और प्रसन्नता)' और खुद की 'सिन्सियारिटी' इन दोनों के गुणा से सारे कार्य सफल हो सकें, ऐसा है।

'इनसिन्सियारिटी' से भी मोक्ष

कोई बीस प्रतिशत 'सिन्सियारिटी' और अस्सी प्रतिशत 'इनसिन्सियारिटी'वाला मेरे पास आए और पूछे कि 'मुझे मोक्ष में जाना है और मुझमें तो यह माल है तो क्या करना चाहिए?' तब मैं उसे कहूँगा कि, 'सौ प्रतिशत 'इनसिन्सियर' हो जा, फिर मैं तुझे दूसरा रास्ता दिखाऊँगा कि जो तुझे मोक्ष में ले जाएगा।' यह अस्सी प्रतिशत का कर्ज़ है, इसकी कब भरपाई करेगा? इससे तो एक बार दिवाला निकाल दे। 'ज्ञानीपुरुष' का एक ही वाक्य पकड़े तब भी वह मोक्ष में जाए। पूरे 'वर्ल्ड' के साथ 'इनसिन्सियर' रहा होगा उसका मुझे एतराज नहीं है, लेकिन एक यहाँ 'सिन्सियर' रहा तो वह तुझे मोक्ष में ले जाएगा! सौ प्रतिशत 'इनसिन्सियारिटी', वह भी एक बड़ा गुण है, वह मोक्ष में ले जाएगा, क्योंकि भगवान का संपूर्ण विरोधी हो गया। भगवान के संपूर्ण विरोधी को मोक्ष में ले जाए बिना छुटकारा ही नहीं! या तो भगवान का भक्त मोक्ष में जाता है या तो भगवान का संपूर्ण विरोधी मोक्ष में जाता है! इसीलिए मैं नादार को तो दिखाता हूँ कि सौ प्रतिशत 'इनसिन्सियर' हो जा, फिर मैं तुझे दूसरा दिखाऊँगा, जो तुझे ठेठ मोक्ष तक ले जाएगा। दूसरा पकड़ाऊँगा तभी काम होगा।

[१०]

आदर्श व्यवहार

अंत में, व्यवहार आदर्श चाहिए

आदर्श व्यवहार के बिना कोई मोक्ष में नहीं गया। जैन व्यवहार, वह आदर्श व्यवहार नहीं है। वैष्णव व्यवहार, वह आदर्श व्यवहार नहीं है। मोक्ष में जाने के लिए आदर्श व्यवहार की ज़रूरत पड़ेगी।

आदर्श व्यवहार मतलब किसी जीव को किंचित् मात्र दु:ख नहीं हो, वह। घरवाले, बाहरवाले, अड़ोसी-पड़ोसी किसीको भी आप से दु:ख नहीं हो वह आदर्श व्यवहार कहलाता है।

जैन व्यवहार का *अभिनिवेश* (अपने मत को सही मानकर पकड़े रखना) करने जैसा नहीं है। वैष्णव व्यवहार का *अभिनिवेश* करने जैसा नहीं है। सारा *अभिनिवेश* व्यवहार है। भगवान महावीर का आदर्श व्यवहार होता था। आदर्श व्यवहार हो मतलब जो दुश्मन को भी नहीं अखरे। आदर्श व्यवहार मतलब मोक्ष में जाने की निशानी। जैन या वैष्णव गच्छ में से मोक्ष नहीं है। हमारी आज्ञाएँ आपको आदर्श व्यवहार की तरफ ले जाती हैं। वे संपूर्ण समाधि में रखें वैसी हैं। आधि-व्याधि-उपाधी में समाधि रहे ऐसा है। बाहर सारा 'रिलेटिव' व्यवहार है और यह तो 'साइन्स' है। साइन्स मतलब रियल!

आदर्श व्यवहार से अपने से किसीको दु:ख नहीं होता, अपने से किसीको दु:ख नहीं हो, उतना ही देखना है। फिर भी अपने से किसीको दु:ख हो जाए तो तुरंत ही प्रतिक्रमण कर लेना। हमसे कुछ उनकी भाषा में नहीं जाया जा सकता। यह जो व्यवहार में पैसों के लेन-देन आदि व्यवहार हैं, वह तो सामान्य रिवाज है, उसे हम व्यवहार नहीं कहते,

किसीको दु:ख नहीं होना चाहिए, यह देखना है, और दु:ख हुआ हो तो प्रतिक्रमण कर लेना, उसका नाम आदर्श व्यवहार।

हमारा आदर्श व्यवहार होता है। हमसे किसीको अड़चन हो, ऐसा नहीं होता। किसी के खाते में हमारी अड़चन जमा नहीं होती। हमें कोई अड़चन दे और हम भी अड़चन दें तो हम में और आपमें फर्क क्या? हम सरल हैं, सामनेवाले को आँटी में डालकर सरल रहते हैं। इसलिए सामनेवाला समझता है कि, 'दादा अभी कच्चे हैं।' हाँ, कच्चे होकर छूट जाना बेहतर, परंतु पक्के होकर उसकी जेल में जाना गलत, ऐसा तो किया जाता होगा? हमें हमारे भागीदार ने कहा कि, 'आप बहुत भोले हैं।' तब मैंने कहा कि, 'मुझे भोला कहनेवाला ही भोला है।' तब उन्होंने कहा कि, 'आपको बहुत लोग छल जाते हैं।' तब मैंने कहा कि, 'हम जान-बूझकर छले जाते हैं।'

हमारा संपूर्ण आदर्श व्यवहार होता है। जिनके व्यवहार में कोई भी कमी होगी, वह मोक्ष के लिए पूरा लायक हुआ नहीं कहा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी के व्यवहार में दो व्यक्तियों के बीच भेद होता है?

दादाश्री : उनकी दृष्टि में भेद ही नहीं होता, वीतरागता होती है। उनके व्यवहार में भेद होता है। एक मिलमालिक और उसका ड्राइवर यहाँ आए, तो सेठ को सामने बिठाऊँगा और ड्राइवर को मेरे पास बिठाऊँगा, इससे सेठ का पारा उतर जाएगा! और प्रधानमंत्री आएँ तो मैं खड़ा होकर उनका स्वागत करूँगा और उन्हें बिठाऊँगा, उनका व्यवहार नहीं चूकूँगा। उन्हें तो विनयपूर्वक ऊपर बिठाऊँगा, और उन्हें यदि मेरे पास से ज्ञान ग्रहण करना हो, तो मेरे सामने नीचे बिठाऊँगा, नहीं तो ऊँचे बिठाऊँगा। लोकमान्य को व्यवहार कहा है और मोक्षमान्य को निश्चय कहा है। इसलिए लोकमान्य व्यवहार को उसी रूप में एक्सेप्ट करना पड़ता है। हम उठकर उन्हें नहीं बुलाएँ तो उन्हें दु:ख होगा, उसकी जोखिमदारी हमारी कहलाएगी।

प्रश्नकर्ता : जो बड़े हों, उन्हें पूज्य मानना चाहिए?

दादाश्री : बड़े मतलब उम्र में बड़े हों ऐसा नहीं, फिर भी माँजी

बड़े हों तो उनका विनय रखना चाहिए और जो ज्ञानवृद्ध हुए हों, वे पूज्य माने जाते हैं।

सत्संग में से हम घर समय पर जाते हैं। यदि रात को बारह बजे दरवाज़ा खटखटाएँ तो वह कैसा दिखेगा? घरवाले मुँह पर बोलेंगे कि 'कभी भी आएँगे तो चलेगा।' परंतु उनका मन तो छोड़ेगा नहीं न? वह तो तरह-तरह का दिखाएगा। हमसे उन्हें ज़रा-सा भी दु:ख कैसे दिया जाए? यह तो नियम कहलाता है और नियम के आधीन तो रहना ही पड़ेगा। इसी तरह दो बजे उठकर 'रियल' की भक्ति करें तो कोई कुछ बोलता है? ना, कोई नहीं पूछता।

शुद्ध व्यवहार : सद्व्यवहार

प्रश्नकर्ता : शुद्ध व्यवहार किसे कहना चाहिए? सद्व्यवहार किसे कहना चाहिए?

दादाश्री : 'स्वरूप' का ज्ञान प्राप्त होने के बाद ही शुद्ध व्यवहार शुरू होता है, तब तक सद्व्यवहार होता है।

प्रश्नकर्ता : शुद्ध व्यवहार और सद्व्यवहार में फर्क क्या है?

दादाश्री : सद्व्यवहार अहंकार सहित होता है और शुद्ध व्यवहार निरहंकारी होता है। शुद्ध व्यवहार संपूर्ण धर्मध्यान देता है और सद्व्यवहार अल्प अंश में धर्मध्यान देता है।

जितना शुद्ध व्यवहार होता है, उतना शुद्ध उपयोग रहता है। शुद्ध उपयोग मतलब 'खुद' ज्ञाता-दृष्टा होता है, लेकिन देखें क्या? तब कहे, शुद्ध व्यवहार को देखो। शुद्ध व्यवहार में निश्चय, शुद्ध उपयोग होता है।

कृपालुदेव ने कहा है: '*गच्छमत नी जे कल्पना ते नहीं सद्व्यवहार।*'

सभी संप्रदाय, वे कल्पित बातें हैं। उनमें सद्व्यवहार भी नहीं है तो फिर वहाँ शुद्ध व्यवहार की बात ही क्या करनी? शुद्ध व्यवहार, वह निरहंकारी पद है, शुद्ध व्यवहार स्पर्धा रहित है। हम यदि स्पर्धा में उतरें तो राग-द्वेष होंगे। हम तो सभी से कहते हैं कि आप जहाँ हो वहीं ठीक हो। और आपको कोई कमी हो तो यहाँ हमारे पास आओ। हमारे यहाँ

तो प्रेम की ही बरसात होती है। कोई द्वेष करता हुआ आए फिर भी प्रेम देंगे।

क्रमिक मार्ग मतलब शुद्ध व्यवहारवाले होकर शुद्धात्मा बनो और अक्रम मार्ग मतलब पहले शुद्धात्मा बनकर फिर शुद्ध व्यवहार करो। शुद्ध व्यवहार में व्यवहार सभी होता है, लेकिन उसमें वीतरागता होती है। एक-दो जन्मों में मोक्ष जानेवाले हों, वहाँ से शुद्ध व्यवहार की शुरूआत होती है।

शुद्ध व्यवहार स्पर्श नहीं करे, उसका नाम 'निश्चय'। व्यवहार उतना पूरा करना कि निश्चय को स्पर्श नहीं करे, फिर व्यवहार चाहे किसी भी प्रकार का हो।

चोखा व्यवहार और शुद्ध व्यवहार में फर्क है। व्यवहार चोखा रखे वह मानवधर्म कहलाता है और शुद्ध व्यवहार तो मोक्ष में ले जाता है। बाहर या घर में लड़ाई-झगड़ा न करे वह चोखा व्यवहार कहलाता है। और आदर्श व्यवहार किसे कहा जाता है? खुद की सुगंधी फैलाए वह।

आदर्श व्यवहार और निर्विकल्प पद, वे दोनों प्राप्त हो जाएँ तो फिर बचा क्या? इतना तो पूरे ब्रह्मांड को बदलकर रख दे।

आदर्श व्यवहार से मोक्षार्थ सधे

दादाश्री : तेरा व्यवहार कैसा करना चाहता है?

प्रश्नकर्ता : संपूर्ण आदर्श।

दादाश्री : बूढ़ा होने के बाद आदर्श व्यवहार हो, वह किस काम का? आदर्श व्यवहार तो जीवन की शुरूआत से होना चाहिए।

'वर्ल्ड' में एक ही मनुष्य आदर्श व्यवहारवाला हो तो उससे पूरा 'वर्ल्ड' बदल जाए, ऐसा है।

प्रश्नकर्ता : आदर्श व्यवहार किस तरह होता है?

दादाश्री : आपको (महात्माओं को) जो निर्विकल्प पद प्राप्त हुआ है तो उसमें रहने से आदर्श व्यवहार अपने आप आएगा। निर्विकल्प पद प्राप्त होने के बाद कोई दख़ल होती नहीं है, फिर भी आपसे दख़ल हो

जाए तो आप मेरी आज्ञा में नहीं हैं, हमारी पाँच आज्ञा आपको भगवान महावीर जैसी स्थिति में रखें, ऐसी हैं। व्यवहार में हमारी आज्ञा आपको बाधक नहीं है, आदर्श व्यवहार में रखें, ऐसी है। 'यह' ज्ञान तो व्यवहार को कम्प्लीट आदर्श बनाए, ऐसा है। मोक्ष किसका होगा? आदर्श व्यवहारवाले का। और 'दादा' की आज्ञा वह आदर्श व्यवहार लाती है। ज़रा-सी भी किसी की भूल आए तो वह आदर्श व्यवहार नहीं है। मोक्ष कोई 'गप्प' नहीं है, वह हकीकत स्वरूप है। मोक्ष कोई वकीलों का खोजा हुआ नहीं है। वकील तो 'गप्प' में से खोज लें, वैसा यह नहीं है, यह तो हकीकत स्वरूप है।

एक भाई मुझे एक बड़े आश्रम में मिले। मैंने उनसे पूछा कि, 'यहाँ कहाँ से आप?' तब उन्होंने कहा कि, 'मैं इस आश्रम में पिछले दस सालों से रह रहा हूँ।' तब मैंने उनसे कहा कि, 'आपके माँ-बाप गाँव में बहुत गरीब हालत में अंतिम अवस्था में दु:खी हो रहे हैं।' तब उन्होंने कहा कि, 'उसमें मैं क्या करूँ? मैं उनका करने जाऊँ तो मेरा धर्म करने का रह जाएगा।' इसे धर्म कैसे कहा जाए? धर्म तो उसका नाम कि जो माँ-बाप, भाई सबके साथ व्यवहार रखे। व्यवहार आदर्श होना चाहिए। जो व्यवहार खुद के धर्म को धिक्कारे, माँ-बाप के संबंध को ठुकराए, उसे धर्म कैसे कहा जाएगा? अरे! मन में दी गई गाली या अँधेरे में किए गए कृत्य, वे सब भयंकर गुनाह हैं! वह समझता है कि, 'मुझे कौन देखनेवाला है, और कौन इसे जाननेवाला है?' अरे, यह नहीं है पोपाबाई का राज! यह तो भयंकर गुनाह है। इन सबको अँधेरे की भूलें ही परेशान करती हैं।

व्यवहार आदर्श होना चाहिए। यदि व्यवहार में अत्यधिक सतर्क हुए तो कषायी हो जाते हैं। यह संसार तो नाव है, और नाव में चाय-नाश्ता सब करना है, लेकिन समझना है कि इससे किनारे तक जाना है।

इसलिए बात को समझो। 'ज्ञानीपुरुष' के पास तो बात को केवल समझनी ही है, करना कुछ भी नहीं है। और जो समझकर उसमें समा गया तो हो गया वीतराग!

जय सच्चिदानंद

मूल गुजराती शब्दों के समानार्थी शब्द

पोतापणुं : मैं हूँ और मेरा है–ऐसा आरोपण, मेरापन

शाता : सुख–परिणाम

अशाता : दुःख–परिणाम

पुद्‌गल : जो पूरण और गलन होता है

पूरण–गलन : चार्ज होना–डिस्चार्ज होना

लागणी : भावुकतावाला प्रेम, लगाव

निकाल : निपटारा

तांता : तंत

भोगवटा : सुख–दुःख का असर

ऊपरी : बॉस, वरिष्ठ मालिक

उपाधि : बाहर से आनेवाले दुःख

राजीपा : गुरुजनों की कृपा और प्रसन्नता

संवरपूर्वक निर्जरा : दोबारा कर्म बीज नहीं डलें और कर्म फल पूरा हो जाए

आँटी : गाँठ पड़ जाए उस तरह से उलझा हुआ

गेड़ : अच्छी तरह समझ में आना

ऊपरी : बॉस, वरिष्ठ मालिक

कल्प : कालचक्र

गोठवणी : सेटिंग, प्रबंध, व्यवस्था

नोंध : अत्यंत राग अथवा द्वेष सहित लम्बे समय तक याद रखना, नोट करना

धौल : हथेली से मारना

नियाणां	: अपना सारा पुण्य लगाकर किसी एक वस्तु की कामना करना
सिलक	: राहखर्च, पूँजी
तायफ़ा	: फज़ीता
उपलक	: सतही, ऊपर ऊपर से, सुपरफ्लुअस
कढ़ापा	: कुढ़न, क्लेश
अजंपा	: बेचैनी, अशांति, घबराहट
राजीपा	: गुरजनों की कृपा और प्रसन्नता
सिलक	: जमापूंजी
पोतापणुं	: मैं हूँ और मेरा है, ऐसा आरोपण, मेरापन
लागणी	: भावुकतावाला प्रेम, लगाव
वसाणुं	: जड़ी-बूटी डालकर बनाई गई मिठाई
अभिनिवेश	: अपने मत को सही मानकर पकड़े रखना
तरंग	: शेखचिल्ली जैसी कल्पनाएँ
आरे	: कालचक्र का बारहवाँ हिस्सा
चलण	: वर्चस्व, सत्ता

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

शुद्धात्मा के प्रति प्रार्थना

(प्रतिदिन एक बार बोलें)

हे अंतर्यामी परमात्मा! आप प्रत्येक जीवमात्र में बिराजमान हो, वैसे ही मुझ में भी बिराजमान हो। आपका स्वरूप ही मेरा स्वरूप है। मेरा स्वरूप शुद्धात्मा है।

हे शुद्धात्मा भगवान! मैं आपको अभेद भाव से अत्यंत भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

अज्ञानतावश मैंने जो जो ★★ दोष किये हैं, उन सभी दोषों को आपके समक्ष ज़ाहिर करता हूँ। उनका हृदयपूर्वक बहुत पश्चाताप करता हूँ और आपसे क्षमा याचना करता हूँ। हे प्रभु ! मुझे क्षमा करो, क्षमा करो, क्षमा करो और फिर से ऐसे दोष नहीं करूँ, ऐसी आप मुझे शक्ति दो, शक्ति दो, शक्ति दो।

हे शुद्धात्मा भगवान! आप ऐसी कृपा करो कि हमें भेदभाव छूट जाये और अभेद स्वरूप प्राप्त हो। हम आप में अभेद स्वरूप से तन्मयाकार रहें।

★★ जो जो दोष हुए हों, वे मन में ज़ाहिर करें।

प्रतिक्रमण विधि

प्रत्यक्ष दादा भगवान की साक्षी में, देहधारी (जिसके प्रति दोष हुआ हो, उस व्यक्ति का नाम) के मन-वचन-काया के योग, भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म से भिन्न ऐसे हे शुद्धात्मा भगवान, आपकी साक्षी में, आज दिन तक मुझसे जो जो ★★ दोष हुए हैं, उसके लिए क्षमा माँगता हूँ। हृदयपूर्वक बहुत पश्चाताप करता हूँ। मुझे क्षमा करें। और फिर से ऐसे दोष कभी भी नहीं करूँ, ऐसा दृढ़ निश्चय करता हूँ। उसके लिए मुझे परम शक्ति दीजिए, शक्ति दीजिए, शक्ति दीजिए।

★★ क्रोध-मान-माया-लोभ, विषय-विकार, कषाय आदि से किसी को भी दु:ख पहुँचाया हो, उस दोषो को मन में याद करें।

प्राप्तिस्थान

दादा भगवान परिवार

अडालज : त्रिमंदिर संकुल, सीमंधर सिटी, अहमदाबाद- कलोल हाईवे,
पोस्ट : अडालज, जि.-गांधीनगर, गुजरात - 382421.
फोन : (079) 39830100, E-mail : info@dadabhagwan.org

अहमदाबाद : दादा दर्शन, ५, ममतापार्क सोसाइटी, नवगुजरात कॉलेज के पीछे, उस्मानपुरा, अहमदाबाद-380014. फोन : (079) 27540408

राजकोट : त्रिमंदिर, अहमदाबाद-राजकोट हाईवे, तरघड़िया चोकड़ी (सर्कल), पोस्ट : मालियासण, जि.-राजकोट. फोन : 9274111393

भुज : त्रिमंदिर, हिल गार्डन के पीछे, एयरपोर्ट रोड. फोन : (02832) 290123

गोधरा : त्रिमंदिर, भामैया गाँव, एफसीआई गोडाउन के सामने, गोधरा (जि.-पंचमहाल). फोन : (02672) 262300

वडोदरा : दादा मंदिर, १७, मामा की पोल-मुहल्ला, रावपुरा पुलिस स्टेशन के सामने, सलाटवाड़ा, वडोदरा. फोन : (0265) 2414142

मुंबई	: 9323528901	**दिल्ली**	: 9310022350
कोलकता	: 033-32933885	**चेन्नई**	: 9380159957
जयपुर	: 9351408285	**भोपाल**	: 9425024405
इन्दौर	: 9893545351	**जबलपुर**	: 9425160428
रायपुर	: 9425245616	**भिलाई**	: 9827481336
पटना	: 9431015601	**अमरावती**	: 9823127601
बेंगलूर	: 9590979099	**हैदराबाद**	: 9989877786
पूना	: 9860797920	**जलंधर**	: 9463542571

U.S.A. : Dada Bhagwan Parivar (USA) +1 877-505 (DADA) 3232
Dada Bhagwan Vignan Institute : Dr. Bachu Amin,
100, SW Redbud Lane, Topeka, Kansas 66606
Tel : +1 785 271 0869, Email : bamin@cox.net

U.K.	: +44 7956 476 253	**UAE**	: +971 557316937
Kenya	: +254 722 722 063	**Singapore**	: +65 81129229
Australia	: +61 421127947	**NZ**	: +64 21 0376434

Website : www.dadabhagwan.org

आप्तवाणी लाई है युग परिवर्तन

''यह युग परिवर्तन हो रहा है। धर्म का युग परिवर्तन हो रहा है। उसीके बारे में ये पुस्तकें हैं। वर्ना यह आप्तवाणी - ३ तो अहोहोहो.... हो गई है बात! पहली और दूसरी आप्तवाणियों में तो शास्त्रों का वर्णन किया है। यानी कि इस जगत् का वर्णन किया है और तीसरी और चौथी में आत्मा के बारे में स्पष्टीकरण दिया है। अभी तो और सब जो आएँगी वे अलग ही प्रकार की आएँगी। पहली और दूसरी में तो 'जगत् क्या है, हमें क्या लेना-देना', वह बताना चाहते हैं और इस तीसरी आप्तवाणी ने आत्मा के स्पष्टीकरण दिए है। इसीलिए तो सब तरफ चर्चा हो रही है न! ''

- दादाश्री

आत्मविज्ञानी 'ए. एम. पटेल' के भीतर प्रकट हुए

दादा भगवानना असीम जय जयकार हो

ISBN 978-93-82128-09-0

9 789382 128090

Printed in India

₹70